॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

वह व्यक्ति उठ खड़ा हुआ। चारों ओर आपकी जय-जयकार होने लगी। आपने वहाँ एकत्र लोगोंको भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। इस प्रकार आपने अपने अनेक चमत्कारपूर्ण कार्योंसे बहुतसे लोगोंको भगवद्भक्तिपूर्ण जीवन जीनेकी प्रेरणा दी।

श्रीपदारथजी

श्रीपदारथजी महाराज बड़े ही उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे। श्रीहरिभक्तिको आप समस्त पदार्थोंका सार और सन्तोंको भगवान्का प्रतिनिधि मानते थे। सन्तोंमें ही नहीं, अपितु सन्तवेषमें भी आपकी बड़ी निष्ठा थी। एक बार एक ठग किसी सन्तसेवी वणिक्के यहाँ सन्तवेषमें रहने लगा, थोड़े ही दिनमें वह वणिक्-परिवारका विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मौका पाकर वह वणिक्का सारा माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गया। वणिक्-पत्नीके जब देखा कि तिजोरी खुली है और सारी धन-सम्पत्ति गायब है, तो वह चीख-चीखकर रोने-चिल्लाने लगी। उसका रोना-चिल्लाना सुनकर राजकर्मचारियोंने ठगका पीछा किया। जब ठगको अपने बचनेका कोई उपाय न सूझा तो वह आपके ही घरमें घुस आया। उसे राजकर्मचारियोंके भयसे भयभीत देखकर आपको कुछ दालमें तो काला लगा, पर सन्तवेषके प्रति निष्ठा होनेके कारण उसे अपने घरमें छिपा लिया और राजकर्मचारियोंके वापस चले जानेके बाद उससे सारी घटना सच-सच बतानेको कहा। समस्त वस्तुस्थितिसे अवगत होनेपर आपने वणिक्का सारा धन उसके घर भिजवा दिया और ठगको भगवान्का चरणामृत एवं प्रसाद दिया, जिससे उसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। इस प्रकार आपने अनेक कुमार्ग-गामियोंको भगवद्भक्ति-पथका पथिक बना दिया।

श्रीविमलानन्दजी

श्रीविमलानन्दजी महाराज बड़े ही सिद्ध महापुरुष थे। नामके अनुरूप ही आपका हृदय बड़ा ही निर्मल था और आपके सम्पर्कमें आनेवाले प्राणी भी मनकी दुर्वासनाओंसे मुक्त हो जाया करते थे। आपके विषयमें यह कथा बहुत ही प्रसिद्ध है—

किसी नगरमें एक वणिक् रहता था, उसकी युवा कन्या अतीव लावण्यमयी थी। एक दिन वहाँके राजाकी दृष्टि उस कन्यापर पड़ी। वह राजा स्वभावसे ही विषयी और लम्पट था, अतः उसने उस कन्याको पकड़ लानेके लिये अपने कर्मचारियों को भेज दिया। बेचारा वणिक् क्या करता! राजहठ और सत्तामदके समक्ष उसका वश ही क्या था! फिर भी किसी-न-किसी प्रकार धर्मरक्षा तो करनी ही थी। निदान, निरुपाय होकर वह आपकी शरणमें आया और सारी घटना बताकर रक्षा करनेकी प्रार्थना की। आपने उसे सान्त्वना दी और रक्षाका आश्वासन दे दिया। उधर जब राजाके कर्मचारी वणिक्के घरके पास पहुँचे तो सब-के-सब अन्धे हो गये, किसी प्रकार गिरते-पड़ते राजाके पास पहुँचे और सारी घटना सुनायी, परंतु वासनाके अन्धे अविवेकी राजाको कर्मचारियोंकी बातोंसे ज्ञान न हुआ और वह स्वयं वणिक्के यहाँके लिये चला। जब वह वणिक्के घरके पास पहुँचा तो उस दुष्टकी भी वही दुर्गति हुई। नेत्रोंकी ज्योतिके जानेपर उसकी आँखोंपर चढ़ा वासनाका परदा भी हट गया और अपनी भूलका बोध हुआ। जब उसे ज्ञात हुआ कि श्रीविमलानन्दजी महाराजने इस वणिक्की रक्षाका आश्वासन दे रखा है तो उसे सन्तकी शक्तिका भान हुआ और वह सीधा आकर आपके चरणोंमें गिर पड़ा तथा अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी। आपने कृपा करके न केवल उसे क्षमा कर दिया, अपितु उसके जीवनकी दिशा भगवान् और भगवद्भक्तिकी ओर कर दी। इस प्रकार आपने अपने उपदेशोंसे बहुतसे भगवद्विमुखोंका कल्याण किया।

सच्चे सन्त

जतीराम रावल्य स्याम खोजी सँतसीहा।
दल्हा पद्म मनोरत्थ राँक द्यौगू जप जीहा॥
जाड़ा चाचा गुरू सवाई चाँदा नापा।
पुरुषोत्तम सों साच चतुर कीता मन कौ जिहि मेट्यो आपा॥
मति सुंदर धीधांगश्रम संसार नाच नाहिन नचे।
करुना छाया भक्ति फल ए कलिजुग पादप रचे॥ ९७॥

श्रीभगवान्‌ने इन भक्तोंको वृक्षरूप रचा। इन सन्तरूपी वृक्षोंमें इनकी करुणा ही छाया है और इनकी भक्ति ही फल है। इनके ये नाम हैं—श्रीजतीरामजी, श्रीरावल्यजी, श्रीस्यामजी, श्रीखोजीजी, सन्त श्रीसीहाजी, श्रीदल्हाजी, श्रीपद्मजी, श्रीमनोरथजी, श्रीराँका-बाँकाजी, श्रीद्यौगूजी, जो जिह्वासे निरन्तर भगवन्नाम जप किया करते थे। श्रीजाड़ाजी, श्रीचाचा गुरुजी, श्रीसवाईजी, श्रीचाँदाजी, श्रीनापाजी, भगवान् पुरुषोत्तमके सच्चे भक्त श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीचतुरजी, श्रीकीताजी, जिन्होंने अपने मनका अहं सर्वथा मिटा डाला था—इन सभी भक्तोंकी बुद्धि बड़ी सुन्दर थी। ये संसाररूपी रंगमंचपर श्रमरूपी धीङ्-धाङ् आदि मृदंगके तालपर नहीं नचे॥ ९७॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके पावन चरित इस प्रकार वर्णित हैं—

श्रीखोजीजी

श्रीखोजीजी मारवाड़-राज्यान्तर्गत पालड़ी गाँवके निवासी थे। आप जन्मजात वैराग्यवान् और भगवदनुरागी होनेके कारण बचपनसे ही गृहकार्यमें उदासीन और भगवद्भजन तथा साधुसंगमें रमे रहते थे। इससे आपके भाइयोंकी आपसे नहीं पटती थी और वे लोग आपको निकम्मा ही मानते थे। एक बार आपके गाँवमें एक सन्तमण्डली आयी हुई थी, आप रात-दिन सन्तों की सन्निधिमें रहकर कथावार्ता और सत्संगमें लगे रहते थे। थोड़े समयके लिये भी आपका घर जाना न होता था। इसी बीच दुर्भाग्यसे एक दिन अचानक आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। जब सारे और्ध्वदैहिक कार्य सम्पन्न हो गये तो भाइयोंने आपसे कहा कि पिताजीके अस्थिकलशको गंगाजीमें प्रवाहित कर आओ, जिससे तुम भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाओ। घरसे गंगाजी बहुत दूर थीं, इसीलिये भाइयोंने जान-बूझकर आपके जिम्मे यह कठिन कार्य लगाया था। इसपर आपने कहा—वैष्णवजन भगवन्नामका जहाँ उच्चारण करते हैं, वहाँ गंगाजीसहित सारे तीर्थ स्वयं प्रकट हो जाते हैं। भाइयोंने सोचा कि गृहकार्यसे उदासीन रहनेवाले ये पिताके अस्थिकलशको भी आलस्य-वश गंगाजी नहीं ले जा रहे हैं तो जबर्दस्ती भेजा। आपने सन्तोंको साथ लिया और भगवन्नामकीर्तन करते हुए अस्थिकलश लेकर गंगाजीको चल दिये। मार्गमें आपको स्वर्णकलश लिये कुछ दिव्य नारियाँ दिखायी दीं। जब आप उनके समीपसे गुजरने लगे तो वे पूछने लगीं—'भक्तवर! आप कहाँ जा रहे हैं?' आपने कहा—'मैं पिताजीके अस्थिकलशको श्रीगंगाजीमें प्रवाहित करने जा रहा हूँ।' उन दिव्य नारियोंने कहा—'हम गंगा-यमुना आदि नदियाँ ही हैं, हम आपके ही निमित्त जल भरकर ले आयी हैं। आप अपने पिताजीके अस्थिकलशका यहीं विसर्जन कर दीजिये और स्वयं स्नानकर घर चले जाइये।' आपने ऐसा ही किया और भाइयोंकी प्रतीतिके लिये एक कलश जल भी लेते गये।

श्रीखोजीजीका गुरुप्रदत्त नाम श्रीचतुरदास था, गुरुके मनके भावकी खोज करनेके कारण श्रीगुरुदेवजीने

इन्हें 'श्रीखोजीजी' की उपाधि प्रदान की। इस सम्बन्धमें कथा है कि एक बार आपके श्रीगुरुदेव लघुशंका करने गये, आप उनके हाथ-पैरकी शुद्धिके लिये जल लिये खड़े थे। श्रीगुरुदेव जब आपके पास आये तो हँसने लगे। आपने बड़ी विनम्रतासे पूछा—'गुरुदेव! आपके हँसनेका क्या कारण है, सेवकसे कोई भूल हो गयी है क्या?' इसपर गुरुदेव बोले—'अरे! तू कैसा शिष्य है, जो गुरुके मनकी बात नहीं जान सकता! जा, जब मेरे मनकी बात जान लेना तभी मेरे पास आना।'

श्रीगुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार आप गुरु-चरणोंका स्पर्शकर वहाँसे चल दिये। आपने बहुत-से सन्तों-महात्माओंसे गुरुदेवके मनकी बात पूछी पर कोई भी उत्तर देनेमें सक्षम न हुआ। अन्तमें एक दिन आपकी भेंट श्रीकबीरदासजीसे हो गयी, उनके समक्ष भी आपने बड़ी ही विनम्रतापूर्वक यही प्रश्न रखा। श्रीकबीरदासजी महाराज तो सिद्ध सन्त थे, उन्होंने तुरंत ही आपके श्रीगुरुदेवके मनकी बात जान ली और आपको बताया कि आपके गुरुदेव जब लघुशंका कर रहे थे तो उस मूत्र-प्रवाहमें एक पीपलका फल भी आ गया था, उसे बहते देखकर आपके गुरुदेवको मनुष्य-जीवनकी असारताका ध्यान आ गया। उन्होंने सोचा कि जबतक यह फल पीपलके पेड़में लगा था तो इसका अस्तित्व था, जब यह उस महाविटपसे पृथक् हो गया तो मूत्र-प्रवाहमें बह रहा है। यही स्थिति मनुष्यकी भी है, जबतक वह परमपिता परमात्मासे जुड़ा है, तबतक कितना सुखी रहता है; जब वह उससे पृथक् होकर संसारमें आ जाता है, तो इसी प्रकार मूत्र-प्रवाहमें बहता है, फिर भी अज्ञान और अहंकारवश अपनेको श्रेष्ठ समझता है—यही सोचकर उन्हें हँसी आ गयी।

श्रीकबीरदासजीसे इस प्रकार रहस्य-बोध प्राप्तकर आप पुनः श्रीगुरुदेवके पास आये और उनसे उपर्युक्त सारी बात बतायी। श्रीगुरुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'तुमने मेरे मनके भावको खोज लिया, अतः आजसे तुम्हारा नाम 'खोजी' प्रसिद्ध होगा।'

श्रीखोजीजीके श्रीगुरुदेव भगवच्चिन्तनमें परम प्रवीण थे। उन्होंने अपने शरीरका अन्तिम समय जानकर अपनी मुक्तिके प्रमाणके लिये एक घण्टा बाँध दिया और सभी शिष्य-सेवकोंसे कह दिया कि हम जब श्रीप्रभुकी प्राप्ति कर लेंगे तो यह घण्टा अपने-आप बज उठेगा। यही मेरी मुक्तिका प्रमाण जानना। परंतु आश्चर्य यह हुआ कि उन्होंने शरीरका त्याग तो कर दिया, परंतु घण्टा नहीं बजा। तब शिष्य-सेवकोंको बड़ी चिन्ता हुई। श्रीगुरुदेवजीके शरीर-त्यागके समय श्रीखोजीजी स्थानपर नहीं थे। ये बादमें आये जब इनको समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तो जहाँ श्रीगुरुजीने लेटकर शरीर छोड़ा था, श्रीखोजीजीने भी वहीं पौढ़कर ऊपर देखा तो इन्हें एक पका हुआ आम दिखायी पड़ा। इन्होंने उस आमको तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। उसमेंसे एक छोटा-सा जन्तु (कीड़ा) निकला और वह जन्तु सबके देखते-देखते अदृश्य हो गया, घण्टा अपने-आप बज उठा।

हुआ यूँ कि श्रीखोजीजीके गुरुदेव तो प्रथम ही प्रभुको प्राप्त कर चुके थे, यह सर्व प्रसिद्ध है। परंतु बादमें शरीर-त्यागके समय अच्छा पका हुआ फल देखकर, भगवान्के भोगयोग्य विचारकर उनके मनमें यह नवीन अभिलाषा उत्पन्न हुई कि इसका तो भगवान्को भोग लगना चाहिये। भक्तकी उस इच्छाको भक्तवश्य भगवान्ने सफल किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—

खोजीजू के गुरु हरि भावना प्रवीन महा देह अन्त समैं बाँधि घण्टासो प्रमानियै।
पावैं प्रभु जब तब बाजि उठै जानौ यही पाये पै न बाजो बड़ी चिन्ता मन आनियै॥

तन त्याग बेर नहीं हुते फेरि पाछे आये वाही ठौर पौढ़ि देख्यौ आँब पक्यौ मानियै।
तोरि ताके टूक किये छोटौ एक जन्तु मध्य गयौ सो बिलाय बाजि उठो जग जानियै॥ ३९९॥
शिष्यकी तौ योग्यताई नीके मन आई अजू गुरुकी प्रबल ऐपै नेकु घट क्यों भई।
सुनौ याकी बात मन बात वति गति कही सही लै दिखाई और कथा अति रसमई॥
ये तौ प्रभु पाय चुके प्रथम प्रसिद्ध पाछे आछो फल देखि हरि जोग उपजी नई।
इच्छा सो सफल श्याम भक्तवश करी वही रही पूर पच्छ सब बिथा उरकी गई॥ ४००॥

इस प्रकार श्रीखोजीजीमें सन्तनिष्ठा और गुरुभक्तिका अपूर्व संगम परिलक्षित होता है। आपने अपना सारा जीवन सन्त-भगवत्सेवामें बिताया।

श्रीराँका-बाँकाजी

पण्ढरपुरमें लक्ष्मीदत्त नामके एक ऋग्वेदी ब्राह्मण रहते थे। ये सन्तोंकी बड़े प्रेमसे सेवा किया करते थे। एक बार इनके यहाँ साक्षात् नारायण सन्तरूपसे पधारे और आशीर्वाद दे गये कि तुम्हारे यहाँ एक परम विरक्त भगवद्भक्त पुत्र होगा। इसके अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया गुरुवार संवत् १३४७ वि० को धनलग्नमें इनकी पत्नी रूपादेवीने पुत्र प्राप्त किया। यही इनके पुत्र महाभागवत राँकाजी हुए। पण्ढरपुरमें ही वैशाख कृष्ण सप्तमी बुधवार संवत् १३५१ वि० को कर्कलग्नमें श्रीहरिदेव ब्राह्मणके घर एक कन्याने जन्म लिया। इसी कन्याका विवाह समय आनेपर राँकाजीसे हो गया। राँकाजीकी इन्हीं पतिव्रता भक्तिमती पत्नीका नाम उनके प्रखर वैराग्यके कारण 'बाँका' हुआ। राँकाजीका भी 'राँका' नाम उनकी अत्यन्त कंगाली रंकताके कारण ही पड़ा था।

राँकाजी रंक तो थे ही, फिर जगत्की दृष्टि उनकी ओर क्यों जाती। इस कंगालीको पति-पत्नी दोनोंने भगवान्की कृपाके रूपमें बड़े हर्षसे सिर चढ़ाया था; क्योंकि दयामय प्रभु अपने प्यारे भक्तोंको अनर्थोंकी जड़ धनसे दूर ही रखते हैं। दोनों जंगलसे चुनकर रोज सूखी लकड़ियाँ ले आते और उन्हें बेचकर जो कुछ मिल जाता, उसीसे भगवान्की पूजा करके प्रभुके प्रसादसे जीवन-निर्वाह करते थे। उनके मनमें कभी किसी सुख-आराम या भोगकी कल्पना ही नहीं जागती थी।

श्रीराँकाजी-जैसा भगवान्का भक्त इस प्रकार दरिद्रताके कष्ट भोगे, यह देखकर नामदेवजीको बड़ा विचार होता था। राँकाजी किसीका दिया कुछ लेते भी नहीं थे। नामदेवजीने श्रीपाण्डुरंगसे प्रार्थना की राँकाजीकी दरिद्रता दूर करनेके लिये। भगवान्ने कहा—'नामदेव! राँका तो मेरा हृदय ही है। वह तनिक भी इच्छा करे तो उसे क्या धनका अभाव रह सकता है? परंतु धनके दोषोंको जानकर वह उससे दूर ही रहना चाहता है। देनेपर भी वह कुछ लेगा नहीं। तुम देखना ही चाहो तो कल प्रातःकाल वनके रास्तेमें छिपकर देखना।'

दूसरे दिन भगवान्ने सोनेकी मुहरोंसे भरी थैली जंगलके मार्गमें डाल दी। कुछ मुहरें बाहर बिखेर दीं और छिप गये अपने भक्तका चरित देखने। राँकाजी नित्यकी भाँति भगवन्नामका कीर्तन करते चले आ रहे थे। उनकी पत्नी कुछ पीछे थीं। मार्गमें मुहरोंकी थैली देखकर पहले तो आगे जाने लगे, पर फिर कुछ सोचकर वहीं ठहर गये और हाथोंमें धूल लेकर थैली तथा मुहरोंको ढकने लगे। इतनेमें उनकी पत्नी समीप आ गयीं। उन्होंने पूछा—'आप यहाँ क्या ढँक रहे हैं?' राँकाजीने उत्तर नहीं दिया। दुबारा पूछनेपर बोले—'यहाँ सोनेकी मुहरोंसे भरी थैली पड़ी है। मैंने सोचा कि तुम पीछे आ रही हो, कहीं सोना देखकर तुम्हारे मनमें लोभ न आ जाय, इसलिये इसे धूलसे ढके देता हूँ। धनका लोभ मनमें आ जाय तो फिर भगवान्का

भजन नहीं होता।' पत्नी यह बात सुनकर हँस पड़ी और बोली—'स्वामी! सोना भी तो मिट्टी ही है। आप धूलसे धूलको क्यों ढँक रहे हैं?' राँकाजी झट उठ खड़े हुए। पत्नीकी बात सुनकर प्रसन्न होकर बोले—'तुम धन्य हो! तुम्हारा ही वैराग्य बाँका है। मेरी बुद्धिमें तो सोने और मिट्टीमें भेद भरा है। तुम मुझसे बहुत आगे बढ़ गयी हो।'

नामदेवजी राँका-बाँकाका यह वैराग्य देखकर भगवान्से बोले—'प्रभो! जिसपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उसे तो आपके सिवा त्रिभुवनका राज्य भी नहीं सुहाता। जिसे अमृतका स्वाद मिल गया, वह भला, सड़े गुड़की ओर क्यों देखने लगा? ये दम्पती धन्य हैं।'

भगवान् श्रीनामदेवजीसे बोले—देखो, हमारी बात सत्य हुई। ये दोनों धनके प्रति कितने निस्पृह हैं।

श्रीप्रियादासजीने राँका-बाँका-दम्पतीकी निःस्पृहताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

राँका पति बाँका तिया बसै पुर पंढरमें उरमें न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै।
लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करैं धरैं हरि रूप हिये ताही सों जियारियै॥
विनती करत नामदेव कृष्णदेव जू सों कीजै दुःख दूर कही मेरी मति हारियै।
चलो लै दिखाऊँ तब तेरे मन भाऊँ रहे बन छिपि दोऊ थैली मग माँझ डारियै॥ ४०१॥
आये दोऊ तिया पति पाछे बधू आगे स्वामी औचक ही मग माँझ सम्पति निहारियै।
जानी यों जुबति जाति कभूँ मन चलि जात याते बेगि संभ्रम सों धूरि वापै डारियै॥
पूछी अजू कहा कियौ भूमिमें निहुरि तुम कही वही बात बोली धनहूँ विचारियै।
कहैं मोसों राँका ऐपै बाँका आज देखी तुही सुनि प्रभु बोले बात साँची है हमारियै॥ ४०२॥

भगवान्की जीत हुई, श्रीनामदेवजी हार गये। फिर भगवान्ने एक और बात कही कि 'यदि तुम्हारे मनमें विशेष परिताप है कि श्रीराँका-बाँकाजीकी सहायता करनी ही चाहिये तो चलो, इनके लिये लकड़ी बटोरें।'

भगवान्ने उस दिन राँका-बाँकाके लिये जंगलकी सारी सूखी लकड़ियाँ गट्ठे बाँध-बाँधकर एकत्र कर दीं। दम्पतीने देखा कि वनमें तो कहीं आज लकड़ियाँ ही नहीं दीखतीं। गट्ठे बाँधकर रखी लकड़ियाँ उन्होंने किसी दूसरेकी समझीं। दूसरेकी वस्तुकी ओर आँख उठाना तो पाप है। दोनों खाली हाथ लौट आये। राँकाजीने कहा—'देखो, सोनेको देखनेका ही यह फल है कि आज उपवास करना पड़ा। उसे छू लेते तो पता नहीं कितना कष्ट मिलता।' अपने भक्तकी यह निष्ठा देखकर भगवान् प्रकट हो गये। दम्पती उन सर्वेश्वरके दर्शन करके उनके चरणोंमें गिर पड़े।

श्रीराँका-बाँकाजी श्रीठाकुरजीको घर लिवा लाये। भगवान्के संग श्रीनामदेवजीको देखकर श्रीराँकाजीने झुँझलाकर कहा—'अरे मूड़फोरा! श्रीप्रभुको इस प्रकार वन-वन भटकाया जाता है?' भगवान्ने राँकाजीसे कुछ माँगनेका अनुरोध किया। तब वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि 'मुझे आपकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं चाहिये।' तब श्रीनामदेवजीने हाथ-जोड़कर इनसे कहा कि 'अच्छा और कुछ नहीं तो प्रभुका रुख रखते हुए प्रभुका एक प्रसादी वस्त्र ही शरीरपर धारण कर लीजिये।' यद्यपि इतनेसे भी श्रीराँका-बाँकाजीको लगा कि मेरे सिरपर भारी बोझ पड़ गया, परंतु उन्होंने भक्त और भगवान्की रुचि रखनेके लिये वस्त्रमात्र स्वीकार कर लिया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नामदेव हारे हरिदेव कही और बात जो पै दाह गात चलो लकरी सकेरियै।
आयै दोऊ बीनिबेको देखी इक ठौरी ढेरी द्वै हूँ मिली पावैं तऊ हाथ नाहिं छेरियै॥

तब तौ प्रगट श्याम ल्याये यों लिवाय घर देखि मूँड़ फोरौ कह्यौ ऐसे प्रभु फेरियै।
विनती करत करजोरि अंग पट धारौ भारौ बोझ पर्यौ लियौ चीरमात्र हेरियै॥ ४०३॥

१०१ वर्ष इस पृथ्वीपर रहकर राँकाजी वैशाख शुक्ल पूर्णिमा संवत् १४५२ वि० को अपनी पत्नी बाँकाजीके साथ परम धाम चले गये।

श्रीयतीरामजी

श्रीयतीरामजी महाराज श्रीरामानन्दी वैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक श्रीसुखानन्दाचार्यजीके शिष्य थे। प्रारम्भमें आपकी वैष्णव धर्ममें निष्ठा नहीं थी और आप प्रायः वैष्णवोंसे वाद-विवाद किया करते थे। एक बार आप स्वामी श्रीसुखानन्दजी महाराजसे वाद-विवादमें उलझ गये, पर स्वामीजीकी वैष्णव शक्तिके समक्ष आपका युक्तिवाद असफल हो गया। आप श्रीसुखानन्दजीकी भक्तिसे इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य ही बन गये। फिर तो आप श्रीभगवान्‌के नाम-गुणगानमें मग्न रहा करते थे, सदा भाव-जगत्‌में रहनेके कारण सामान्यजनोंको आप उन्मत्तकी तरह प्रतीत होते थे।

एक बारकी बात है, किसी बादशाहकी सवारी कहीं जा रही थी; साथमें बड़ा लाव-लश्कर भी था। उन लोगोंको किसी एक ऐसे आदमीकी आवश्यकता थी, जो सामानके एक बड़े गट्ठरको सिरपर लादकर चले। आप अपनी मस्तीमें घूमते हुए उधर जा निकले। फिर क्या था, बादशाहके यवन सिपाहियोंने इन्हें ही पकड़कर इनके सिरपर गट्ठर रखवा दिया। कुछ तो इनकी भावावस्था और कुछ गट्ठर भी भारी था, अतः एक जगह आप लड़खड़ा गये और गट्ठर गिर पड़ा। अब तो वे दुष्ट सिपाही इन्हें मारने लगे। आप तो क्रोध-शोक आदि विकारोंसे मुक्त थे, परंतु अपने भक्तकी ऐसी अवमानना और सिपाहियोंकी दुष्टता सर्वशक्तिमान् भगवान्‌से न सही गयी। अचानक असंख्य गिरगिट वहाँ प्रकट हो गये और यवन सिपाहियोंको काटने लगे। वे जिधर भी भागते उधर ही गिरगिट प्रकट होकर उन्हें काटने लगते। पूरी सेनामें अल्लाह-तोबा मच गया। सिपाहियोंकी यह दुर्दशा देखकर बादशाह समझ गया कि यह हिन्दू फकीर सिद्ध महापुरुष है। फिर तो वह रथसे उतरकर तुरंत आपके चरणोंमें गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा। इसपर आपने कहा—भाई! मैं आपसे नाराज ही कहाँ हूँ, जो क्षमा कर दूँ! जो आपपर नाराज है और दण्ड दे रहा है, उससे क्षमा माँगो। बादशाहने एक थालमें बहुत-सी अशर्फियाँ भरकर आपके चरणोंमें रख दीं और बोला—'आप अपने रामकी सेवाके लिये यह मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कर लें और मुझे उनके कोपसे बचायें।' सन्तहृदय आपको बादशाहकी विनतीपर दया आ गयी। आप बोले—'भाई! मुझ अकिंचनको इन अशर्फियोंसे क्या काम? यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो सच्चे मनसे प्रतिज्ञा करो कि अब मैं कभी किसी साधु-महात्माको नहीं सताऊँगा।' बादशाहने कसम खायी कि आजसे मैं या मेरे कर्मचारी किसी साधु-महात्माको कष्ट नहीं पहुँचायेंगे। तब जाकर सब लोग संकटसे मुक्त हुए।

इस प्रकार आपने न केवल बादशाहको सच्चे मार्गपर चलाया, साथ ही साधु-महात्माओंको भी यवनोंके अत्याचारोंसे मुक्ति दिला दी।

श्रीरामरावलजी

श्रीरामरावलजी महाराज भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आप सदा एकान्त स्थानमें बैठे भगवच्चिन्तनमें मग्न रहा करते थे। आपका समाजमें सम्मान भी बहुत था। यह देखकर एक ऐंद्रजालिक (जादूगर)-को आपसे ईर्ष्या हो गयी, वह आपको भगानेके लिये नाना प्रकारके उपद्रव करने लगा। वह

कभी सर्प बन जाता तो कभी व्याघ्र। कभी-कभी मायासे इनके चारों ओर अग्निकी लपटें उत्पन्न कर देता। इस प्रकार उस ऐंद्रजालिकने आपको भयभीत करने और भगानेके बहुत प्रयास किये, परंतु भला माया जिसकी दासी है, उसके भक्तको क्षुद्र बाजीगरकी ये कपट चालें क्या भयभीत कर पातीं। अन्तमें उसे इस बातका भान हो गया कि ये पहुँचे सन्त और सिद्ध महापुरुष हैं, अतः इनके शरणागत होकर शिष्य हो गया। इसी प्रकार आपने भगवत्पथसे भटके अनेक प्राणियोंको अपने आचरणसे सही राह दिखायी।

श्रीसीहाजी

भक्त श्रीसीहाजी बड़े ही नामनिष्ठ सन्त थे और सदा नाम-संकीर्तन करते रहते थे। आपका संकीर्तन इतना रसमय होता था कि स्वयं भगवान् भी विभिन्न वेश बनाकर उसमें आनन्द लेने पहुँच जाया करते थे। आप स्वयं तो कीर्तन करते ही थे, गाँवके बालकोंको भी बुलाकर कीर्तन कराते थे। बालकोंको कीर्तनके अन्तमें आप प्रसाद दिया करते थे, अतः वे भी खुशी-खुशी पर्याप्त संख्यामें आ जाया करते थे। एक बार ऐसा संयोग बना कि तीन दिनतक आपके पास बाँटनेके लिये प्रसाद ही न रहा। बालक प्रतिदिन आते और कीर्तन करके बिना प्रसाद पाये ही चले जाते। इससे आपको बड़ी चिन्ता हुई, साथ ही दुःख भी हुआ। आपको इस प्रकार चिन्तित देख चौथे दिन भगवान् स्वयं बालक बनकर आये और सबको उनकी इच्छानुसार इच्छाभर लड्डू वितरित किये फिर रात्रिमें आपसे स्वप्नमें कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रसाद न रहनेपर मैं स्वयं वेश बदलकर प्रसाद बाँटा करूँगा, आप बस कीर्तन कराइये। अब भगवान् प्रतिदिन वेश बदलकर आपके कीर्तनमें सम्मिलित होने लगे। एक दिन वे एक सेठ-पुत्रका रूप धारण करके आये और कीर्तनमें सम्मिलित हो गये। संयोगसे वह सेठ भी उस दिन कीर्तनमें आ गया, जिसके पुत्रका रूप धारणकर भगवान् आये थे। सेठने अपने पुत्रके रूपमें भगवान्‌को देखा तो चकित रह गये; क्योंकि वे तो अपने पुत्रको घरपर छोड़कर आये थे, वे जल्दीसे अपने घर गये तो वहाँ पुत्रको बैठे देखा। सेठजीने सोचा मेरी आँखोंको धोखा हुआ होगा और वे फिरसे कीर्तनमें आ गये, परंतु यहाँ आनेपर फिर उन्हें अपने पुत्रके रूपमें भगवान् दिखायी दिये। सेठजी चकित! अब वे एक बार घर जाते और फिर वापस कीर्तनमें आते और दोनों जगह अपने पुत्रको देखते। अन्तमें हारकर उन्होंने यह बात श्रीसीहाजीसे कही। इसपर आपने कहा—'सेठजी! आप घर जाकर अपने पुत्रको यहीं लेते आइये।' जब सेठजी घरसे अपने पुत्रको लेकर आये तो भगवान् अन्तर्धान हो गये। यह देखकर आप समझ गये कि सेठके पुत्रके रूपमें स्वयं श्रीभगवान् ही पधारे थे। इस प्रकार आपका संकीर्तन अत्यन्त दिव्य हुआ करता था।

श्रीदलहासिंहजी

राजस्थानमें एक ग्राम है, खीचीबाड़ा। श्रीदलहासिंहजी वहींके निवासी थे। जातिसे यद्यपि आप क्षत्रिय थे, फिर भी आपकी वृत्ति अहिंसक थी और आपने सन्तसेवाका व्रत ले लिया था। आपके यहाँ नित्य प्रति सन्तोंकी टोलियाँ आती रहतीं। खूब भजन-कीर्तन और सत्संग होता। सन्तोंके प्रसादकी भी व्यवस्था होती। इस प्रकार सन्तसेवीके रूपमें आपकी दूर-दूरतक ख्याति फैल गयी, परंतु इससे आपकी आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। आपका पूरा समय सत्संग और सन्तसेवामें ही चला जाता था, अतः कोई अर्थोपार्जन भी न हो पाता। इस प्रकार आपके घरकी स्थिति ऐसी हो गयी कि पेट पालना भी मुश्किल हो गया। इसी बीच एक रिश्तेदारीसे भात भरनेका निमन्त्रण आ गया और सन्तोंका आना-जाना तो लगा ही रहता था। अब तो आप बड़े ही धर्मसंकटमें फँस गये। सन्तसेवा किये बिना आप रह नहीं सकते थे और भात भरना भी सामाजिक जिम्मेदारी थी। अब तो आपका दिनका चैन और

रातकी नींद गायब हो गयी। आपकी ऐसी स्थिति देखकर नरसीका भात भरनेवाले भक्तवत्सल भगवान्‌को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने स्वप्नमें आपसे कहा कि तुम्हारे घरके पासमें ही एक टीला है, उसमें अथाह सम्पत्ति भरी पड़ी है, उसे खोद लो और खूब सन्त-सेवा करो तथा भात भरो। फिर तो भगवान्‌का संकेत समझकर आपने वैसा ही किया। टीलेमेंसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, जिससे आपने जीवनभर सन्तसेवा की। सच है **'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'**

श्रीपद्मजी

श्रीपद्मजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। आपके पास भगवान् विष्णुकी एक स्वर्ण-प्रतिमा थी, जिसकी वे आराधना करते थे। भक्तके लिये भगवान्‌की प्रतिमा उसका प्राणधन—उसके इष्टदेवका साक्षात् साकार विग्रह होती है, जबकि चोरके लिये वही प्रतिमा मात्र सुवर्णखण्ड ही होती है, जिसे वह विक्रय करके कुछ धन प्राप्त कर लेता है। एक बारकी बात है, आप सुवर्ण-प्रतिमाको एकान्तमें रख उसकी सेवा-पूजा कर रहे थे; सहसा एक चोरकी कुदृष्टि उसपर पड़ गयी। उसने सुनसान एकान्त स्थान देखकर वह सुवर्ण-प्रतिमा और उसपर चढ़े आभूषण भी छीन लिये और भाग चला। अब तो आपके प्राण विकल हो उठे, अत्यन्त आर्त होकर आप भगवान्‌को पुकारने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌से भक्तका यह दुःख देखा न गया। उन्होंने कुछ ऐसी लीला की कि उस चोरका जूता उसके पैरसे निकलकर उसके सिरपर पड़ने लगा। इस संकटसे बचनेके लिये वह इधर-उधर बहुत दौड़ा, पर जिधर जाता, उधर ही उसपर जूता पड़ता। अन्तमें वह गिरता-पड़ता आपके पास आया और प्रतिमा तथा सभी आभूषण वापसकर चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी। आप तो परम करुणामय सन्त थे, आपके हृदयमें क्रोधका लेशमात्र भी नहीं था। मूर्ति पाते ही आप ऐसे प्रसन्न हो गये, मानों मृतशरीरमें पुनः प्राण प्रविष्ट हो जायँ। अतः आपने उस दुष्ट चोरको तुरंत ही क्षमा कर दिया। आपके क्षमा करते ही चोरपर जूते पड़ने अपने-आप बन्द हो गये। ऐसे परम कारुणिक और सन्तहृदय भक्त थे श्रीपद्मजी!

जिस प्रकार पद्म जलमें खिला होता है, पर उसका पत्ता जलके सम्पर्कमें होनेपर भी उससे अप्रभावित रहता है, वैसे ही श्रीपद्मजी भी इस संसारमें रहते हुए भी, इससे अलग—अप्रभावित थे।

श्रीमनोरथजी

श्रीमनोरथजी जातिके ब्राह्मण थे और बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आपके एक कन्या थी। सयानी होनेपर आपने उसका विवाह एक भक्त ब्राह्मणसे तय किया, परंतु उसके गरीब होनेसे कन्याकी माता और उसका मामा वहाँ विवाह नहीं करना चाहते थे। वे दोनों उसका एक धनी ब्राह्मणसे विवाह करना चाहते थे, परंतु वह अभक्त था, इसलिये आपको पसन्द नहीं था। उधर वह अभक्त ब्राह्मण अभक्त होनेके साथ-साथ दुष्ट और लम्पट भी था, उसने ठीक विवाहके दिन बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। इससे आपको बहुत दुःख हुआ कि मेरी कन्या ऐसे अभक्त और भगवद्विमुख दुष्ट व्यक्तिके साथ कैसे गुजारा करेगी? यह सोचकर आप अपने आराध्यदेवकी मूर्तिके पास जाकर बिलख-बिलखकर रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌से अपने भक्तका यह दुःख न देखा गया। उन्होंने तुरंत उस अभक्तके घरसे कन्याको लाकर आपके सम्मुख उपस्थित कर दिया। आपने तुरंत उस कन्याका भक्त ब्राह्मणके साथ विवाह कर दिया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए। आपके विपक्षी भी आपके शरणागत हो गये और भक्त-भगवत्सेवामें लग गये।

श्रीद्यौगूजी

श्रीद्यौगूजी बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आप सन्तसेवाके लिये विविध प्रकारके उद्योग करके बड़े परिश्रमसे धनोपार्जन करते थे, अतः लोग आपको उद्योगीजी कहते थे। जनसाधारणमें वही नाम बिगड़कर द्यौगूजी हो गया। आप बड़े ही सरल स्वभावके व्यक्ति थे। गृहस्थ होते हुए भी सांसारिकतासे दूर, केवल भगवद्भजन और सन्तसेवासे ही प्रयोजन रखते थे। कहते हैं कि आपके पिताका अकस्मात् बिना किसी बीमारीके शरीर शान्त हो गया था, तो आप उनके शवको श्रीठाकुरजीके सामने रखकर पूछने लगे कि 'बिना किसी आधि-व्याधिके मेरे पिता क्यों मरे?' पूछते-पूछते तीन पहर बीत गये, पर कोई उत्तर न मिला। इतनेमें एक सन्तमण्डली आ गयी। आप सन्तोंके स्वागत-सत्कारमें जुट गये। जब आप उन्हें सीधा-सामान देने लगे तो सन्तोंने कहा—'आपके मनमें पिता-मरणका महान् दुःख है, अतः हम आपका सीधा-सामान नहीं लेंगे।' आपने कहा—'ऐसी बात नहीं है, मेरे मनमें पिताजीके मरनेका किंचित् भी दुःख नहीं है, मैं तो पिताजीके शवको भगवान्‌के पास रखकर केवल यह पूछ रहा था कि मेरे पिताजी बिना किसी रोगके क्यों मरे? परंतु यदि इस कारण आप लोग सीधा-सामान नहीं ले रहे हैं तो कहिये तो मैं पिताजीके शवको अभी जला दूँ। चाहे मेरा पूरा परिवार मर जाय तो भी मुझे कोई कष्ट नहीं है, पर यदि आप सन्तलोग मेरे द्वारसे भूखे चले जायेंगे तो मुझे महान् कष्ट होगा।' आपकी इस प्रकारकी अनन्य सन्त-निष्ठा देखकर भगवत्कृपासे आपके पिता जीवित हो उठे। सर्वत्र भक्त और भगवान्‌की जय-जयकार गूँज उठी। भगवद्भक्ति और सन्तनिष्ठाके इस अद्भुत चमत्कारको देखकर पूरा गाँव धन्य-धन्य कह उठा और साथ ही सबने भगवद्भक्ति और सन्तसेवाका व्रत ले लिया। इस प्रकार अद्भुत सन्तनिष्ठाके प्रतीक थे श्रीद्यौगूजी।

श्रीचाचागुरु

श्रीचाचागुरुका वास्तविक नाम 'क्षेमदास' था। आप सभी सन्तोंको चाचागुरु कहते थे, अतः आपका नाम श्रीचाचागुरु हो गया। आप बड़े ही सन्तसेवी सद्‌गृहस्थ थे। आपके भक्तिभाव और सरल स्वभावके कारण आपके गाँववासियोंकी आपपर बड़ी श्रद्धा थी। जब आपके यहाँ सन्त लोग आते तो आपके गाँववाले भी उनके लिये यथाशक्ति सीधा-सामान दे जाते थे और सम्यक् रूपसे सन्तसेवा होती थी। इस प्रकार यह क्रम बहुत दिनोंतक चलता रहा, परंतु जब आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आने लगी तो गाँववाले भी परेशान होकर कहने लगे कि अब तो आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आती है, हम बाल-बच्चेवाले लोग हैं, कहाँतक सहयोग करें। गाँववालोंकी इस प्रकारकी बात सुनकर आपको बड़ी निराशा हुई; क्योंकि आपके भी घरमें कुछ शेष नहीं बचा था। आपको चिन्तामें देखकर भगवान्‌की दिव्य वाणी हुई कि तुम्हारे पास जो धरोहरके रूपमें दूसरेका रजतपात्र रखा है, उसीको बेंचकर सन्तसेवा करो, कोई समस्या आयेगी तो मैं सँभाल लूँगा। अब क्या था, अब तो आपको सन्तसेवाका उपाय मिल गया। आपने तुरंत उस रजतपात्रको बेंच दिया, जिससे पर्याप्त धनकी प्राप्ति हो गयी और उससे आप सन्तसेवा करने लगे।

कुछ दिन बाद जिसने अपना रजतपात्र इनके यहाँ धरोहरके रूपमें रखा था, उसे पता चल गया कि इन्होंने मेरा पात्र बेंचकर सन्तोंको खिला दिया है, तो वह इनसे पात्र माँगने आया। आपको तो भगवद्वाणीपर विश्वास था ही, अतः सीधे 'बेंच दिया' कहनेकी बजाय बातको टाल-मटोल कर दिया। जब कई बार ऐसा हुआ तो उसने पंचायत जोड़ी। उधर आपके यहाँ सन्तोंकी एक बड़ी जमात आ गयी थी, अतः आप सन्तसेवामें ही व्यस्त रहे और पंचायतमें जा ही न सके। पंचायतमें न जानेके कारण आपपर आरोप सिद्ध हो सकता था, परंतु भगवान्‌ने जैसा कि दिव्यवाणीद्वारा पहले ही कह दिया था, अतः वे आपके वेशमें स्वयं

पंचायतमें हाजिर हो गये और पंचोंके पूछनेपर बोले कि 'इनका पात्र तो ज्यों-का-त्यों मन्दिरमें रखा हुआ है, ये व्यर्थ ही स्वयं भी परेशान हो रहे हैं और आप लोगोंको भी परेशान कर रहे हैं, आप लोग चाहें तो चलकर देख लें।'

पंचायतमें वह वैश्य भी बैठा था, जिसके हाथ आपने उस रजतपात्रको बेंचा था। उसने पंचोंसे कहा कि ये असत्य बोल रहे हैं, पात्र तो इन्होंने हमारे हाथ बेंच दिया है। आपने भी अपनी बातपर बल देते हुए कहा कि पात्र मन्दिरमें अमुक स्थानपर रखा है, तुम स्वयं जाकर देख लो। पंचोंके कहनेपर वैश्य मन्दिरमें गया तो पात्र सचमुच निर्दिष्ट स्थानपर रखा मिला। अब तो वह घबड़ा गया कि झूठा साबित होनेपर मुझे पंचायत सजा दे देगी, अतः उसने पात्रको अन्यत्र छुपा दिया और पंचायतमें आकर बोला कि पात्र वहाँ नहीं है। इसपर आपका वेश धारण किये हुए भगवान्ने पंचोंसे अनुरोध किया कि आप लोग स्वयं मेरे साथ चलकर देख लें, मैं आप लोगोंको पात्र दिखा दूँगा। पंचोंने बात मान ली और आपके साथ मन्दिर गये। वहाँ पहुँचनेपर तो सबकी आँखें खुलीकी खुली रह गयीं! पूरे मन्दिरमें चारों ओर रजतपात्र रखे थे, सब-के-सब एक-जैसे। वैश्यने जहाँ पात्र छुपाकर रखा था, वहाँ देखा तो पात्र नदारद था। इस प्रकार चमत्कार देखकर सब लोग श्रीचाचागुरुजी और उनकी भगवद्भक्तिकी प्रशंसा करने लगे। जिसका रजतपात्र धरोहरके रूपमें रखा था, उसने भी इस चमत्कारको देखकर अपना धरोहर रखा पात्र भगवान्‌को ही अर्पित कर दिया। इधर आप जब सन्तसेवासे निवृत्त हुए तो आपका ध्यान पंचायतकी ओर गया। अब तो आप बहुत घबड़ाये कि पंचायतने मेरे ऊपर अवश्य दण्ड रख दिया होगा, साथ ही मुझपर दूसरेका रजतपात्र बेंच देनेका आरोप भी सिद्ध हो जायेगा। अभी आप यह सोच ही रहे थे कि आस-पासके लोग आकर आपसे पंचायतके सारे विवरण और मन्दिरमें घटित आश्चर्यजनक घटनाको बताकर आपकी भक्तिकी प्रशंसा करने लगे। अब तो आप भी आश्चर्यचकित हो गये, फिर प्रभुकी कृपा समझ उनकी लीलाका स्मरणकर प्रेम-मग्न हो गये।

श्रीसवाईसिंहजी

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे प्रत्येक वर्णके स्वाभाविक कर्मका वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! शूरवीरता, तेज, धैर्य, चातुर्य और युद्धसे पलायन न करना, दान देना और स्वामिभाव—ये सब-के-सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं। ऐसे ही गुणधर्मवाले क्षत्रिय राजपूत थे श्रीसवाईसिंहजी। आप बड़े ही सन्तसेवी और परोपकारी स्वभावके थे। एक बार एक भक्त-दम्पती वन-मार्गसे कहीं जा रहे थे, उनके पास धन-सम्पत्ति देखकर लुटेरोंने उन्हें लूट लिया। उन भक्त-दम्पतीने पासके गाँवमें जाकर गुहार लगायी। यद्यपि गाँवके अन्य लोगोंको तो लुटेरोंका नाम सुनते ही साँप सूँघ गया, परंतु सवाईसिंहजीसे भक्तोंका यह कष्ट न देखा गया। उन्होंने तुरंत अपने अस्त्र-शस्त्र लिये और घोड़ेपर सवार होकर अकेले ही लुटेरोंके पीछे सरपट दौड़ चले। डाकू संख्यामें तेरह थे, इन्हें अकेले ही आते देखकर उन सबने इन्हें घेर लिया। इन्होंने भी ललकारकर कहा कि धन-सम्पत्ति छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा; सन्तोंको दुःख देनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता। अब तो वे आपपर चारों ओरसे प्रहार करने लगे। कहाँ एक और कहाँ तेरह, आपके प्राण संकटमें पड़ गये, परंतु तभी भगवत्कृपाका चमत्कार हुआ। लुटेरोंके अस्त्र-शस्त्र इनके शरीरका स्पर्श करते ही खण्ड-खण्ड हो गये, ऐसा लगता था मानो वे हाड़-मांसके शरीरसे नहीं बल्कि पत्थरके पुतलेसे टकरा रहे हों। उधर इनकी तलवार जिधर घूम जाती, उधर मानों बिजली-

सी कौंध जाती। लुटेरोंको यह देखकर लगा कि हमने किसी भक्तको लूट लिया है, इसीलिये हमपर भगवान्का ही कोप हो गया है, साधारण मनुष्यके वशका ऐसा अद्भुत पराक्रम करना सम्भव नहीं है। तब वे लोग आपसे रक्षाकी प्रार्थना करते हुए शरणागत हो गये। उन लुटेरोंने न केवल सारा धन वापस कर दिया, बल्कि लूट-डकैतीका काम भी छोड़ दिया और सभी भगवद्भक्त हो गये।

श्रीचाँदाजी

श्रीचाँदाजीका स्थितिकाल विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दी प्राप्त होता है, आप भगवान्के परम अनुरागी और वीर प्रकृतिके सन्त थे। उस समय देशमें यवनोंका राज्य था। वे लोग हिन्दुओंको पददलित करनेके लिये उनके आस्थाके केन्द्र मठ-मन्दिरोंको नष्ट कर देते थे। एक बार यवनसेना मठ-मन्दिरोंको ध्वस्त करती हुई बढ़ रही थी, उसने चन्द्रसेनपर आक्रमण कर दिया। तब आपने धर्मरक्षार्थ बहुत-से वीरोंको एकत्र किया और बड़ी वीरताके साथ यवनोंसे युद्ध किया। आपके प्रबल प्रहारोंसे यवनसेनाके पैर उखड़ गये और वह परास्त होकर तितर-बितर हो गयी। इसके बाद आपने जोधपुरके गढ़में प्रवेशकर उसे सुरक्षित किया। वैशाख कृ० १०, सं० १६२१ वि० की बात है, रामपोलसे निकलते हुए आपको यवनसेनाने घेर लिया और चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार होने लगे। आपने अपने इष्टदेवका स्मरणकर ऐसा युद्ध किया कि एक भी यवन जीवित न बचा।

इस प्रकार श्रीचाँदाजी शास्त्र और शस्त्र दोनोंसे धर्मरक्षा करनेवाले वीरव्रती भक्त थे।

श्रीनापाजी

श्रीनापाजी बड़े ही सन्तसेवी भगवद्भक्त गृहस्थ थे। आपका जन्म खोसाके निकट एक ग्राममें हुआ था और आप जातिसे माली थे। आपके यहाँ सदैव सन्तोंकी मण्डलियाँ आती ही रहती थीं और कथा-कीर्तन एवं सत्संग होता रहता था। आपके आस-पासके लोगोंको इससे बड़ा आश्चर्य होता कि इनके पास कहाँसे इतना धन आता है। कुछ ईर्ष्यालु लोगोंने आपकी राजासे शिकायत कर दी कि महाराज! नापाजीके पास बहुत धन है, परंतु वे राजकर नहीं देते हैं। अविवेकी राजाने आपको कारागारमें डाल दिया। उधर आपके घरपर एक दिन सन्तोंकी एक मण्डली आ पहुँची, अब आपकी पत्नीको बड़ी चिन्ता हुई कि घरमें न तो रुपया-पैसा है, न भोजन-सामग्री; सन्तोंका स्वागत-सत्कार और उनकी भोजन-व्यवस्था कैसे की जाय? आपकी पत्नीने एक विश्वस्त व्यक्तिके माध्यमसे यह सूचना आपतक भिजवायी। आपने उत्तर दिया कि घरमें लोटा-थाली जो कुछ भी हो, सब बेंचकर सन्त-सेवा कर दो। पत्नीने ऐसा ही किया, पर लोटा-थाली बेंचनेसे भला कितने दिनतक सन्तसेवा और गृहस्थी चल सकती थी। घरमें फिरसे फाँके होने लगे। इसी बीच पत्नीके मायकेवाले भी आ गये, अब उस बेचारीके समक्ष एक और धर्मसंकट खड़ा हो गया। कहींसे कोई सहायताकी आशा नहीं थी, निदान सब तरफसे निराश होकर उसने अशरण-शरण भगवान्की शरण ली और आर्त भावसे लज्जा-रक्षाकी प्रार्थना की। भक्तिमती पत्नीकी यह करुण टेर भगवान्तक पहुँचनेमें देर न लगी। उन्होंने तुरंत आपका रूप बनाया और बर्तन तथा भोज्य-सामग्री आदि लाकर घरमें रख दिया। इधर राजाके गुप्तचरोंने राजाको खबर दी कि नापाजीके घरकी तो यह हालत है कि उनकी पत्नीने घरके बर्तन आदि बेंचकर सन्तसेवा कर दी। यह सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और तुरंत ही आपको कारागारसे छुड़वा दिया। जब आप घर आये तो घरको धन-धान्यसे सम्पन्न देख बड़े ही आश्चर्यचकित हुए। आपने पत्नीसे पूछा कि 'यह सब सामान कहाँसे आया?' अब आश्चर्यचकित होनेकी बारी पत्नीकी थी। उसने कहा—'यह आप कैसी बात कर रहे हैं? अरे! आप ही तो कल सायंकालको सारा सामान लाये थे।' आप

कुछ नहीं बोले और मन-ही-मन प्रभुकी कृपाका स्मरणकर गद्‌गद हो गये।

श्रीनापाजी गृहस्थ थे, आजीविकाके लिये आप खेती करते थे। आपका ज्यादातर समय सन्तसेवामें ही बीतता था, अतः खेत सूखने लगे। एक दिन आप रातमें खेतोंकी सिंचाई कर रहे थे, परंतु रातभर परिश्रम करनेके बावजूद खेत सूखा-का-सूखा ही रह गया। सारा-का-सारा पानी बह गया था। दूसरे दिन जब आपने खेतकी दशा देखी तो बहुत दुखी हुए। आप-जैसे भक्तका दुःख भगवान्‌को भी बर्दाश्त नहीं हुआ और वे आपके पुत्रका रूप धारणकर आये और बोले—'पिताजी! आपको अब रात्रिमें खेतोंकी सिंचाई करनेकी आवश्यकता नहीं है, अब आप निश्चिन्त रहिये और मैं दिनमें ही खेतोंकी सिंचाई और खेतीका काम कर दिया करूँगा। आप प्रसन्नतापूर्वक सन्तसेवा कीजिये।' पुत्रकी इस कर्तव्यनिष्ठा और सन्तसेवाके प्रति आदर-भाव देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई और आप निश्चिन्त होकर सन्तसेवा करने लगे।

एक दिन आपने देखा कि पुत्र घरपर सो रहा है, आपने सोचा थका होगा, इसलिये आराम कर रहा है और यही सोचकर स्वयं खेतपर चले गये। वहाँ देखा तो पुत्र खेतोंकी सिंचाई कर रहा था, आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। चुपचाप घर लौट आये और यहाँ देखा तो पुत्र सो रहा था। अब तो आप समझ गये कि मेरे पुत्रका वेश धारणकर स्वयं परमपिता परमात्मा ही मेरे खेतोंकी देखभाल कर रहे हैं। अब तो आप तुरंत ही वापस अपने खेतोंपर पहुँचे और पुत्ररूपधारी भगवान्‌का हाथ पकड़कर कहने लगे—'प्रभो! मैं आपको पहचान गया, आप मेरे पुत्र नहीं स्वयं श्रीभगवान् हैं।' पुत्ररूपधारी भगवान्‌ने कहा—'अरे पिताजी! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आपका पुत्र ही हूँ।' परंतु जब आप नहीं माने तो विवश होकर भगवान्‌को प्रकट होना पड़ा। आपने कहा—'प्रभो! आपको यह सब करनेकी क्या जरूरत थी?' प्रभुने कहा—'नापाजी! आप नित्यप्रति हमारी और हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं, यदि हमने थोड़ी-सी आपकी सहायता कर ही दी तो क्या हो गया? अरे! मैं तो आपद्वारा की गयी सेवाका ब्याज भी नहीं चुका पाया हूँ।' भक्तवत्सल प्रभुकी बातें सुनकर आपके प्रेमाश्रु छलछला आये और हृदय परमानन्दसे गद्‌गद हो उठा।

ऐसे भक्त और सन्तसेवी थे श्रीनापाजी! इतना ही नहीं; बड़े उदार, दानी और परोपकारी भी थे आप। एक दिन आपके द्वारपर एक अतिथि आये। आपने पत्नीसे कहा कि अतिथिके लिये कुछ भोजनकी व्यवस्था करो। पत्नीने कहा—'स्वामी! मात्र एक रोटी है, जो मैंने बालकके लिये रखी है, हमें और आपको तो उपवास करना ही है, ऐसेमें मैं अतिथिके लिये क्या व्यवस्था करूँ? घरमें अन्नका एक दाना भी नहीं है, न ही पासमें पैसे ही हैं।' आपने कहा—देवि! बालककी रोटीमेंसे ही आधी रोटी अतिथिको भी दे दो, इससे बालकके भी प्राण बचे रहेंगे और अतिथि भी द्वारसे भूखा नहीं जायगा। ऐसे परोपकारी सन्त थे श्रीनापाजी!

श्रीकीताजी

श्रीकीताजी महाराजका जन्म जंगलमें आखेट करनेवाली जातिमें हुआ था, परंतु पूर्वजन्मके संस्कारवश आपकी चित्तवृत्ति अनिमेषरूपसे भगवत्स्वरूपमें लगी रहती थी। आप सर्वदा भगवान् श्रीरामकी कीर्तिका गान किया करते थे। साथ ही आपकी सन्तसेवामें बड़ी प्रीति थी, यहाँतक कि आप सन्तसेवाके लिये भगवद्भक्तिसे विमुख जनोंको जंगलमें लूट भी लिया करते थे और उससे सन्तसेवा करते थे। एक बारकी बात है, आपके यहाँ एक सन्तमण्डली आ गयी, परंतु आपके पास धनकी कोई स्थायी व्यवस्था तो थी नहीं, अतः आपने अपनी एक युवती कन्याको ही राजाके यहाँ गिरवी रख दिया और उस प्राप्त धनसे सन्तसेवा की। आपको आशा थी कि बादमें धन प्राप्त होनेपर कन्याको छुड़ा लूँगा। उधर जब राजाकी दृष्टि कन्यापर पड़ी तो उसके मनमें कुत्सित भाव आ गया। कन्याको भी राजाकी दुर्वृत्तिका पता चला तो उसने अपने पिताके पास

सन्देश भेजा। बेचारे कीताजी क्या करते! राजसत्तासे टकरानेसे समस्याका हल नहीं होना था, अन्तमें उन्होंने प्रभुकी शरण ली। उधर कन्याने भी अपनी लज्जा-रक्षाके लिये प्रभुसे प्रार्थना की। भक्तकी लज्जा भगवान्‌की लज्जा होती है, जिस भक्तने उनके प्रतिनिधिस्वरूप सन्तोंकी सेवाके लिये अपनी लज्जा दाँवपर रख दी हो, उसकी लज्जाका रक्षण तो उन परम प्रभुको करना ही होता है और उन्होंने किया भी। राजा जब आपकी कन्याकी ओर कुत्सित भावसे आगे बढ़ा तो उसको कन्याके स्थानपर सिंहिनी दिखायी दी। अब तो उसे प्राणके लाले पड़ गये और काममद उड़न छू हो गया। कीताजी भक्त हैं, यह बात तो उसे मालूम ही थी, उसे लगा कि भक्त कीताजीका अपमान करनेके कारण ही उसपर ऐसा भगवान्‌का कोप हो गया है। उसने मन-ही-मन कन्याको प्रणाम किया। भावदृष्टि बदलते ही सिंहिनी पुनः कन्याके रूपमें दिखायी देने लगी। राजाकी आँखें खुल गयीं, उन्होंने कीताजीके पास जाकर क्षमा-प्रार्थना की। कीताजी सन्तहृदय थे, उन्होंने राजाको क्षमा कर दिया।

श्रीकीताजी भगवत्कृपाप्राप्त भक्त थे। एक बार सन्तसेवाके लिये आपको एक घोड़ेकी आवश्यकता थी, पासमें ही फौजकी छावनी थी। आप वहाँ गये तो पहरेदारने पूछा—'कौन है?' आपने कहा—'मैं चोर हूँ। मेरा नाम कीता है और मैं घोड़ा चुराने आया हूँ।' आपकी इस साफगोईसे पहरेदारने समझा कोई फौजका अफसर है, विनोद कर रहा है, अतः कुछ नहीं बोला। आप एक बढ़िया घोड़ेको लेकर चले आये। दूसरे दिन छावनीमें घोड़ेकी चोरीकी बातसे हड़कम्प मच गया। पहरेदारने कीताजीका नाम बताया और रातकी सारी घटना बतायी। तुरंत ही कीताजीके यहाँ दबिश दी गयी तो एक वैसा ही घोड़ा उनके यहाँ बँधा मिला, परंतु आश्चर्यकी बात यह थी कि उस घोड़ेका रंग सफेद था, जबकि छावनीसे चोरी हुए घोड़ेका रंग लाल था। इस बावत जब कीताजीसे पूछताछ हुई तो उन्होंने सारी बात सच-सच बता दी। घोड़ेके रंग बदलनेके बारेमें कहा कि ऐसा तो प्रभुकी इच्छासे ही हुआ है, यह मेरी मानवीय सामर्थ्यकी बात नहीं है। आपकी साफगोई, भगवद्भक्ति और सन्तनिष्ठासे फौजका सरदार बहुत प्रभावित हुआ और सन्तसेवाके निमित्त बहुत-सा द्रव्य भेंट किया, साथ ही अपने बहुतसे सैनिकोंके साथ आपका शिष्य बन गया।

श्रीकीताजी निष्ठावान् और सच्चे आज्ञाकारी साधकोंको ही शिष्य बनाते थे। एक बार एक साधक भक्तने १२ वर्षतक आपकी सेवा की, परंतु आपने उसको तब भी दीक्षा नहीं दी, फिर अपने इष्टदेव प्रभु श्रीरामजीके स्वप्नमें आदेश देनेपर उसे दीक्षा देनेका निर्णय लिया, इसपर भी आपने उसकी बड़ी कठिन परीक्षा ली। शीत ऋतुमें उससे कोरे घड़ेमें जल मँगवाया। जब वह साधक जल लेकर आया तो उन्होंने उसके सिरपर रखे घड़ेको डण्डेके प्रहारसे फोड़ दिया, जिससे उसका सारा शरीर भीग गया। तत्पश्चात् आपने पुनः उससे दूसरा घड़ा भरकर लानेको कहा। इस प्रकार आपने सात घड़े उसके सिरपर फोड़ दिये। अन्तमें जब वह आठवाँ घड़ा भरकर ले आया तो आपने उसको धैर्य और गुरु-आज्ञाके प्रति निष्ठाकी परीक्षामें उत्तीर्ण मानकर उसे दीक्षा दे दी।

परोपकारी भक्त

लछिमन लफरा लड्डू संत जोधपुर त्यागी।
सूरज कुंभनदास बिमानी खेम बिरागी॥
भावन बिरही भरत नफर हरिकेस लटेरा।
हरिदास अजोध्या चक्रपानि (दियो) सरजू तट डेरा॥

तिलोक पुखरदी बिज्जुली उद्धव बनचर बंसके। पर अर्थ परायन भक्त ये कामधेनु कलिजुग्ग के॥ ९८॥

ये भक्तजन इस कलियुगमें भी बड़े ही परोपकारी तथा आश्रितजनोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कामधेनुके समान हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीलक्ष्मणजी, श्रीलफराजी, श्रीलड्डूजी, जोधपुरके त्यागी श्रीसन्तजी, श्रीसूरजजी, श्रीकुम्भनदासजी, श्रीविमानीजी, श्रीखेम वैरागीजी, श्रीभावनजी, श्रीविरही भरतजी, श्रीनफरजी, श्रीहरिकेशजी लटेरा, श्रीहरिदासजी, श्रीअयोध्या-सरयू-तटवासी श्रीचक्रपाणिजी, श्रीतिलोक सुनारजी, श्रीपुखरदीजी, श्रीबिज्जुलीजी, वनचर (श्रीहनुमान्)-वंशमें उत्पन्न श्रीउद्धवजी॥ ९८॥

इन परोपकारी भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित्र इस प्रकार हैं—

श्रीलड्डूजी

श्रीलड्डूजी महाराज बड़े ही परोपकारी एवं भगवद्भक्त वैष्णव सन्त थे। दूसरेके दुःखोंको दूर करना आपका सहज स्वभाव था। आपके समयमें बंगाल प्रान्तके एक गाँवमें प्रायः भगवद्विमुख नास्तिक लोग ही रहते थे। वहाँके लोग सन्त-भगवन्तको कुछ जानते ही नहीं थे, मानना तो दूर रहा। इन्हें हिंसा करनेमें लेशमात्रका भी पाप-भय नहीं था; यहाँतक कि पशुबलि क्या, मानवबलि देनेमें भी उनको हिचक नहीं होती थी। एक बार सन्तोंकी एक टोली उस गाँवमें जा पहुँची। वे लोग तीन दिनतक वहाँ भूखे पड़े रहे, किसीने उन्हें भोजन-प्रसादके लिये नहीं पूछा। उन सन्तोंने जब वहाँके लोगोंकी रहनी-सहनी श्रीलड्डूजीसे बतायी तो आपने उन्हें वैष्णवताका उपदेश देनेका निश्चय किया।

कहते हैं कि जिस समय आप उन विमुखोंके देश पहुँचे, उस समय वहाँके राजाने देवीको बलि देनेके लिये किसी मनुष्यको पकड़ लानेके लिये अपने कर्मचारियोंको भेजा था। राजकर्मचारी एक गरीब ब्राह्मणके बालकको पकड़कर ले जा रहे थे। उसके माता-पिता करुण क्रन्दन कर रहे थे। उसी समय आप वहाँ पहुँच गये। दीन ब्राह्मण-दम्पती आपकी शरणमें आये और पुत्रकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थना, ब्राह्मणीके क्रन्दन और बालककी दीनता देखकर आपका सन्त हृदय द्रवित हो उठा। आपने ब्राह्मण बालकको मुक्त करा दिया और उसकी जगहपर स्वयं बलिदान होनेके लिये तैयार हो गये। राजकर्मचारी आपको पकड़कर देवीके सम्मुख ले गये। देवी वैष्णव भक्तको बलिके लिये लाया देखकर अत्यन्त कुपित हुईं और उन राजकर्मचारियोंका ही वध कर डाला।

इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

लड्डू नाम भक्त जाय निकसे विमुख देश लेसहूँ न सन्तभाव जानै पाप पागे हैं।
देवी कों प्रसन्न करैं मानुस को मारि धरैं लै गये पकरि तहाँ मारिबे कों लागे हैं॥
प्रतिमाको फारि बिकरारि रूपधारि आई लै कै तरवार मूंड काटे भीजे बागे हैं।
आगे नृत्य करै, दृग भरै साधु पाँव धरै ऐसे रखवारे जानि जन अनुरागे हैं॥ ४०४॥

श्रीसन्तजी

भक्त श्रीसन्तजीका साधु-सेवामें बड़ा प्रेम था। इन्होंने गाँव-गाँवसे भिक्षा लाकर सन्त-सेवा करनेका नियम ले रखा था। एक बार ये किसी गाँवमें भिक्षा लेने गये थे। इसी बीच घरपर सन्तोंकी जमात आ गयी। सन्तोंने इनकी पत्नीसे पूछा कि 'सन्तजी कहाँ हैं?' तो पत्नीने प्रमादपूर्वक कहा कि 'वे चूल्हेमें गये।' पत्नीकी वाणी सुनकर सन्त जान गये कि इसका साधु-सन्तोंमें भाव नहीं है, अतः वहाँसे चल

दिये। संयोगसे मार्गमें श्रीसन्तजी मिल गये। सन्तोंने पूछा—'आप कहाँ रहे?' उस समय सन्तजीके हृदयमें साक्षात् भगवान् ही बैठकर बोले—'हमारी पत्नीने जो कहा है, वह सत्य कहा है। सचमुच मेरे मनमें चूल्हेकी आँचका ही ध्यान हो रहा था।' फिर श्रीसन्तजी सन्तोंको पुनः घर लौटा लाये और भगवत्प्रसाद पवाकर उन्हें आनन्दमें मग्न कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सदा साधुसेवा अनुराग रंग पागि रह्यौ गह्यौ नेम भिक्षा व्रत गाँव गाँव जाय कै।
आये घर संत पूछैं तिया सों यों संत कहाँ? 'संत चूल्हे माँझ' कही ऐसे अलसाय कै॥
बानी सुनि जानी, चले मग सुखदानी मिले कही कित हुते? सो बखानी उर आय कै।
बोली वह साँच, वही आँच ही कौ ध्यान मेरे आनिगृह फेरि किये मगन जिंवाय कै॥ ४०५॥

श्रीतिलोकजी सुनार

श्रीतिलोकभक्तजी पूर्व देशके रहनेवाले थे और जातिके सोनार थे। इन्होंने हृदयमें भक्तिसार—सन्त-सेवाका व्रत धारण कर रखा था। एक बार वहाँके राजाकी लड़कीका विवाह था। उसने इन्हें एक जोड़ा पायजेब बनानेके लिये सोना दिया, परंतु इनके यहाँ तो नित्यप्रति अनेकों सन्त-महात्मा आया करते थे, उनकी सेवासे इन्हें किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं मिलता था, अतः आभूषण नहीं बना पाये। जब विवाहके दो दिन ही रह गये और आभूषण बनकर नहीं आया तो राजाको क्रोध हुआ और सिपाहियोंको आदेश दिया कि तिलोक सुनारको पकड़ लाओ। सिपाहियोंने तुरंत ही इन्हें पकड़कर लाकर राजाके सम्मुख कर दिया। राजाने इन्हें डाँटकर कहा कि 'तुम बड़े धूर्त हो। समयपर आभूषण बनाकर लानेको कहकर भी नहीं लाये।' इन्होंने कहा—'महाराज! अब थोड़ा काम शेष रह गया है, अभी आपकी पुत्रीके विवाहके दो दिन शेष हैं। यदि मैं ठीक समयपर न लाऊँ तो आप मुझे मरवा डालना'।

राजाकी कन्याके विवाहका दिन भी आ गया, परंतु इन्होंने आभूषण बनानेके लिये जो सोना आया था, उसे हाथसे स्पर्श भी नहीं किया। फिर इन्होंने सोचा कि समयपर आभूषण न मिलनेसे अब राजा मुझे जरूर मार डालेगा, अतः डरके मारे जंगलमें जाकर छिप गये। यथासमय राजाके चार-पाँच कर्मचारी आभूषण लेनेके लिये श्रीतिलोकजीके घर आये। भक्तके ऊपर संकट आया जानकर भगवान्ने श्रीतिलोक भक्तका रूप धारणकर अपने संकल्पमात्रसे आभूषण बनाया और उसे लेकर राजाके पास पहुँचे। वहाँ जाकर राजाको पायजेबका जोड़ा दिया। राजाने उसे हाथमें ले लिया। आभूषणको देखते ही राजाके नेत्र ऐसे लुभाये कि देखनेसे तृप्त ही नहीं होते थे। राजा श्रीतिलोकजीपर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उनकी पहलेकी सब भूल-चूक माफ कर दी और उन्हें बहुत-सा धन पुरस्कारमें दिया। श्रीतिलोकरूपधारी भगवान् मुरारी इस प्रकार धन लेकर श्रीतिलोक भक्तके घर आकर विराजमान हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

पूरबमें ओकसो तिलोक हो सुनार जाति पायो भक्तिसार साधुसेवा उर धारियै।
भूपके विवाह सुता जोरी एक जेहरिकौ गढ़िबेकौ दियौ कह्यौ नीके कै सँवारियै॥
आवत अनन्त सन्त औसर न पावै किहूँ रहे दिन दोय भूप रोष यों सँभारियै।
ल्यावो रे पकरि, ल्याये, छाड़िये मकर, कही नेकु रह्यो काम आवै नातो मारि डारियै॥ ४०६॥
आयो वही दिन कर छुयौ हूँ न इन नृप करै प्रान बिन बन माँझ छिप्यौ जायकै।
आये नर चारि पाँच जानी प्रभु आँच गढ़ि लियौ सो दिखायौ साँच चले भक्तभायकै॥

भूपको सलाम कियो जेहरिकौ जोरौ दियौ लियो कर देखि नैन छोड़ैं न अघायकै।
भई रीझि भारी सब चूक मेटि डारी धन पायो लै मुरारी ऐसे बैठे घर आयकै॥ ४०७॥

श्रीतिलोकरूपधारी भगवान्‌ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही महान् उत्सव किया। उसमें अत्यन्त रसमय, परम स्वादिष्ट अनेकों प्रकारके व्यंजन बने थे। साधु-ब्राह्मणोंने खूब पाया। फिर भगवान् एक सन्तका स्वरूप धारणकर झोलीभर सीथ—प्रसाद लिये हुए वहाँ गये, जहाँ श्रीतिलोक भक्त छिपे बैठे थे। श्रीतिलोकजीको प्रसाद देकर सन्त-रूपधारी भगवान्‌ने कहा—'श्रीतिलोक भक्तके घर गया था। उन्होंने ही खूब प्रसाद पवाया और झोली भी भर दी।' श्रीतिलोक भक्तने पूछा—कौन तिलोक? भगवान्‌ने कहा—'जिसके समान त्रैलोक्यमें दूसरा कोई नहीं है।' फिर भगवान्‌ने पूरा विवरण बताया। सन्तरूपधारी भगवान्‌के वचन सुनकर श्रीतिलोकजीके मनको शान्ति मिली। फिर भगवत्प्रेममें मग्न श्रीतिलोकजी रात्रिके समय घर आये। घरपर साधु-सन्तोंकी चहल-पहल तथा घरको धन-धान्यसे भरा हुआ देखकर श्रीतिलोकजीका श्रीप्रभुके श्रीचरणोंकी ओर और भी अधिक झुकाव हो गया। वे समझ गये कि श्रीप्रभुने मेरे ऊपर महान् कृपा की है, निश्चय ही मेरे किसी महान् भाग्यका उदय हुआ है।

श्रीप्रियादासजी श्रीतिलोकजीपर भगवान्‌की इस कृपाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भोरही महोछौ कियौ, जोई माँगे सोई दियौ नाना पकवान रसखान स्वाद लागे हैं।
सन्तकौ सरूप धरि लै प्रसाद गोद 'भरि गये तहां' पावै जू तिलोक गृह पागे हैं॥
कौनसो तिलोक? अरे दूसरो तिलोक मैं न बैन सुनि चैन भयो आये निसि रागे हैं।
चहल पहल धन भर्‌यौ घर देखि ढर्‌यौ प्रभुपद कंज जानौ मेरे भाग जागे हैं॥ ४०८॥

श्रीलक्ष्मणजी

परम सन्तसेवी श्रीलक्ष्मणजी सन्तोंके रहनेके लिये निवास-स्थान बनवा रहे थे, छतका पटाव हो गया था, परंतु वह अभी परिपक्व नहीं हुआ था कि छतकी आधारभूता एक बल्ली टूट गयी। लोगोंको बड़ी चिन्ता हुई कि अब तो छत गिर जायगी अथवा नीचेको धँस जायगी। अब तो इसे फिरसे बनवाना पड़ेगा आदि। श्रीलक्ष्मणजीने सबको समझाया कि आप लोग चिन्ता नहीं करें, श्रीहरिकृपासे कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। सचमुच प्रातःकाल जब सबने देखा तो बल्लीमें टूटनेका निशान भी नहीं था, छत ज्यों-की-त्यों दुरुस्त थी। सब लोग भगवान्‌की इस प्रत्यक्ष कृपापर आश्चर्य करने लगे। ऐसे अनन्य निष्ठावान् और सन्तसेवी भक्त थे श्रीलक्ष्मणजी!

श्रीलफराजी (श्रीलफरा गोपालदेवाचार्यजी)

आप निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी हरिव्यासदेवाचार्यजीके कृपापात्र थे। आपका वास्तविक नाम तो श्रीगोपालदेवजी था, किंतु एक बार आपकी अत्यन्त लापरवाही देखकर श्रीगुरुदेवजीने 'लफरा' कहा था तो आगे चलकर वही नाम ही पड़ गया। वह प्रसंग इस प्रकार है—आप स्वभावसे बड़े विरक्त एवं अलमस्त थे। एक बार श्रीगुरुदेवजीने आपको एक आश्रमकी देख-रेखका भार सौंपा। यद्यपि इस कार्यमें आपकी अभिरुचि बिल्कुल नहीं थी फिर भी श्रीगुरुदेवजीसे संकोचवश आप इनकार नहीं कर सके। अतः कुछ दिनतक तो आपने जैसे-तैसे आश्रमका कार्य सँभाला, फिर दसदिनके लिये तीर्थयात्राका बहाना बनाकर श्रीगुरुदेवजीसे आज्ञा लेकर आप आश्रमसे निकले तो फिर लौटकर आश्रमपर गये ही नहीं। श्रीगुरुजीने कुछ दिनतक तो इनकी प्रतीक्षा की, परंतु ये जब नहीं आये तो उन्होंने प्रसंग चलनेपर इन्हें 'लफरा' कहा। वही नाम पड़ गया।

एक बार ये घूमते-फिरते एक सन्तके स्थानमें पहुँचे। वे सन्तजी सन्तोंकी खूब सेवा करते थे। परंतु उस दिन वे बड़े उदास थे। श्रीलफराजीने उदासीका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि यहाँका राजा एक दुष्ट यवन है, वह आश्रमको हड़पना चाहता है, इसलिये मैं बहुत चिन्तित हूँ। श्रीलफराजीने उन सन्तजीसे कहा कि आप आश्रमवासी सभी सन्तोंको लेकर कहीं अन्यत्र चले जाइये, मैं अकेले उस दुष्टको देख लूँगा। आपकी बात मानकर वे सन्त आश्रम छोड़कर कहीं चले गये। आप अकेले वहाँ रह गये। उसी दिन यवनराजने आश्रमके सभी सन्तोंको गिरफ्तार करनेके लिये सिपाहियोंको भेजा। आश्रममें और कोई तो मिला नहीं, सिपाहियोंने श्रीलफराजीको ही पकड़कर नजरबन्दकर कारागारमें डाल दिया। उसी रात यवनराजको स्वप्नमें मुहम्मदसाहबने आदेश दिया कि 'तुम शीघ्रातिशीघ्र भक्तराज श्रीलफराजीको कारागारसे मुक्त कर दो अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।' फिर क्या था, प्रातःकाल होते ही वह दुष्ट यवनराज नंगे पाँव दौड़ा हुआ आपके पास गया और चरणोंमें पड़कर अपराधके लिये बहुत-बहुत क्षमा-याचना की। श्रीलफराजीने क्षमा प्रदान करते हुए उसे साधु-सेवाका उपदेश दिया। आपके उपदेशसे प्रभावित होकर यवनराजने बहुत-सी जमीन साधुसेवा-निमित्त आश्रमको प्रदान की।

श्रीकुम्भनदासजी

श्रीकुम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ और महान् विरक्त थे। वे निःस्पृह, त्यागी और महासन्तोषी व्यक्ति थे। उनके चरित्रकी विशिष्ट अलौकिकता यह है कि भगवान् साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ सखाभावकी क्रीड़ाएँ करते थे।

कुम्भनदासका जन्म गोवर्धनके सन्निकट जमुनावतो ग्राममें संवत् १५२५ वि० में चैत्र कृष्ण एकादशीको हुआ था। वे गोरवा क्षत्रिय थे। उनके पिता एक साधारण श्रेणीके व्यक्ति थे। खेती करके जीविका चलाते थे। कुम्भनदासने भी पैतृक वृत्तिमें ही आस्था रखी और किसानीका जीवन ही उन्हें अच्छा लगा। परासोलीमें विशेषरूपसे खेतीका कार्य चलता था। उन्हें पैसेका अभाव आजीवन खटकता रहा, पर उन्होंने किसीके सामने हाथ नहीं पसारा। भगवद्भक्ति ही उनकी सम्पत्ति थी। उनका कुटुम्ब बहुत बड़ा था, खेतीकी आयसे ही उसका पालन करते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी उनके दीक्षा-गुरु थे। संवत् १५५० वि० में आचार्यकी गोवर्धन-यात्राके समय उन्होंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया था। उनके दीक्षा-कालके पन्द्रह साल पूर्व श्रीनाथजीकी मूर्ति प्रकट हुई थी, आचार्यकी आज्ञासे वे श्रीनाथजीकी सेवा करने लगे। नित्य नये पद गाकर सुनाने लगे। पुष्टि-सम्प्रदायमें सम्मिलित होनेपर उन्हें कीर्तनकी ही सेवा दी गयी थी। कुम्भनदास भगवत्कृपाको ही सर्वोपरि मानते थे, बड़े-से-बड़े घरेलू संकटमें भी वे अपने आस्था-पथसे कभी विचलित नहीं हुए।

श्रीनाथजीके शृंगारसम्बन्धी पदोंकी रचनामें उनकी विशेष अभिरुचि थी। एक बार श्रीवल्लभाचार्यजीने उनके युगललीलासम्बन्धी पदसे प्रसन्न होकर कहा था कि 'तुम्हें तो निकुंजलीलाके रसकी अनुभूति हो गयी।' कुम्भनदास महाप्रभुकी कृपासे गद्गद होकर बोले उठे कि 'मुझे तो इसी रसकी नितान्त आवश्यकता है।'

महाप्रभु वल्लभाचार्यके लीला-प्रवेशके बाद कुम्भनदास गोसाईं विट्ठलनाथके संरक्षणमें रहकर भगवान्का लीला-गान करने लगे। विट्ठलनाथजी महाराजकी उनपर बड़ी कृपा थी। वे मन-ही-मन उनके निर्लोभ-जीवनकी सराहना किया करते थे। संवत् १६०२ वि० में अष्टछापके कवियोंमें उनकी गणना हुई। बड़े-बड़े राजा-महाराजा आदि कुम्भनदासका दर्शन करनेमें अपना सौभाग्य मानते थे। वृन्दावनके बड़े-बड़े रसिक और सन्त-महात्मा उनके सत्संगकी उत्कट इच्छा किया करते थे। उन्होंने भगवद्भक्तिका यश सदा

अक्षुण्ण रखा, आर्थिक संकट और दीनतासे उसे कभी कलंकित नहीं होने दिया।

एक बार श्रीविट्ठलनाथ उन्हें अपनी द्वारिका-यात्रामें साथ ले जाना चाहते थे; उनका विचार था कि वैष्णवोंकी भेंटसे उनकी आर्थिक परिस्थिति सुधर जायगी। कुम्भनदास श्रीनाथजीका वियोग एक पलके लिये भी नहीं सह सकते थे; पर उन्होंने गोसाईंजीकी आज्ञाका विरोध नहीं किया। वे गोसाईंजीके साथ अप्सराकुण्डतक ही गये थे कि श्रीनाथजीके सौन्दर्य-स्मरणसे उनके अंग-अंग सिहर उठे, भगवान्‌की मधुर-मधुर मन्द मुसकानकी ज्योत्स्ना विरह-अन्धकारमें थिरक उठी, माधुर्यसम्राट् नन्दनन्दनकी विरह-वेदनासे उनका हृदय घायल हो चला। उन्होंने श्रीनाथजीके वियोगमें एक पद गाया—

केते दिन जु गए बिनु देखैं।
तरुन किसोर रसिक नँदनंदन, कछुक उठति मुख रेखैं॥
वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर बपु भेखैं॥
स्याम सुँदर सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखैं॥

श्रीगोसाईंजीके हृदयपर उनके इस विरह-गीतका बड़ा प्रभाव पड़ा। वे नहीं चाहते थे कि कुम्भनदास पलभरके लिये भी श्रीनाथजीसे अलग रहें। कुम्भनदासको उन्होंने लौटा दिया। श्रीनाथजीका दर्शन करके कुम्भनदास स्वस्थ हुए।

एक बार अकबरकी राजसभामें एक गायकने उनका पद गाया, बादशाहने उस पदसे आकृष्ट होकर कुम्भनदासको फतेहपुर सीकरी बुलाया। पहले तो कुम्भनदास जाना नहीं चाहते थे, पर सैनिक और दूतोंका विशेष आग्रह देखकर वे पैदल ही गये। श्रीनाथजीके सभासदस्यको अकबरका ऐश्वर्य दो कौड़ीका लगा। कुम्भनदासकी पगड़ी फटी हुई थी, तनिया मैली थी; वे आत्मग्लानिमें डूब रहे थे कि किस पापके फलस्वरूप उन्हें इनके सामने उपस्थित होना पड़ा। बादशाहने उनकी बड़ी आवभगत की। पर कुम्भनदासको तो ऐसा लगा कि किसीने उनको नरकमें ला खड़ा कर दिया है। वे सोचने लगे कि राजसभासे तो कहीं उत्तम व्रज है, जिसमें स्वयं श्रीनाथजी खेलते रहते हैं, अनेक क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। अकबरने पद गानेकी प्रार्थना की। कुम्भनदास तो भगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-माधुर्यके कवि थे, उन्होंने पद-गान किया—

भगत को कहा सीकरी काम।
आवत जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम॥
जाको मुख देखैं दुख लागै, ताको करनो पड़्यो प्रनाम।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम॥

बादशाह सहृदय थे, उन्होंने आदरपूर्वक उनको घर भेज दिया। संवत् १६२० वि० में महाराज मानसिंह व्रज आये थे। उन्होंने वृन्दावनके दर्शनके बाद गोवर्धनकी यात्रा की। श्रीनाथजीके दर्शन किये। उस समय मृदंग और वीणाके साथ कुम्भनदासजी कीर्तन कर रहे थे। राजा मानसिंह उनकी पद-गान-शैलीसे बहुत प्रभावित हुए। वे उनसे मिलने जमुनावतो गये। कुम्भनदासकी दीन-हीन दशा देखकर वे चकित हो उठे। कुम्भनदास भगवान्‌के रूप-चिन्तनमें ध्यानस्थ थे। आँख खुलनेपर उन्होंने भतीजीसे आसन और दर्पण माँगे, उत्तर मिला कि 'आसन (घास) पड़िया खा गयी, दर्पण (पानी) भी पी गयी।' आशय यह था कि पानीमें मुख देखकर वे तिलक करते थे। महाराजा मानसिंहको उनकी निर्धनताका पता लग गया। उन्होंने सोनेका

दर्पण देना चाहा, भगवान्‌के भक्तने अस्वीकार कर दिया; मोहरोंकी थैली देनी चाही, विश्वपतिके सेवकने उसकी उपेक्षा कर दी। चलते समय मानसिंहने जमुनावतो गाँव कुम्भनदासके नाम करना चाहा; पर उन्होंने कहा कि 'मेरा काम तो करीलके पेड़ और बेरके वृक्षसे ही चल जाता है।' राजा मानसिंहने उनकी निःस्पृहता और त्यागकी सराहना की, उन्होंने कहा कि 'मायाके भक्त तो मैंने बहुतसे देखे हैं, पर वास्तविक भगवद्भक्त तो आप ही हैं।'

वृद्धावस्थामें भी कुम्भनदास नित्य जमुनावतोसे श्रीनाथजीके दर्शनके लिये गोवर्धन आया करते थे। एक दिन संकर्षणकुण्डपर आन्योरके निकट वे ठहर गये। अष्टछापके प्रसिद्ध कवि चतुर्भुजदासजी, उनके छोटे पुत्र, साथ थे। उन्होंने चतुर्भुजदाससे कहा कि 'अब घर चलकर क्या करना है। कुछ समय बाद शरीर ही छूटनेवाला है।' गोसाईं विट्ठलनाथजी उनके देहावसानके समय उपस्थित थे। गोसाईंजीने पूछा कि 'इस समय मन किस लीलामें लगा है?' कुम्भनदासने कहा, ***'लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै'*** और इसके अनन्तर युगल-स्वरूपकी छविके ध्यानमें पद गाया—

रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनक बेलि बृषभानुनंदिनी स्याम तमाल चढ़ी॥
बिहरत श्रीगिरिधरन लाल सँग, कोने पाठ पढ़ी।
'कुँभनदास' प्रभु गोबरधनधर रति रस केलि बढ़ी॥

उन्होंने शरीर छोड़ दिया। गोसाईंजीने करुणस्वरसे श्रद्धांजलि अर्पित की कि ऐसे भगवदीय अन्तर्धान हो गये। अब पृथ्वीपर सच्चे भगवद्भक्तोंका तिरोधान होने लगा है। वास्तवमें कुम्भनदासजी निःस्पृहताके प्रतीक थे, त्याग और तपस्याके आदर्श थे, परम भगवदीय और सीधे-सादे गृहस्थ थे। संवत् १६३९ वि० तक वे एक सौ तेरह सालकी उम्रपर्यन्त जीवित रहे।

श्रीखेमदासजी

प्राणिमात्रका क्षेम-कुशल चाहते हुए श्रीखेमदासजी बड़े भावसे सन्तसेवा करते थे। एकबार सन्तोंके आनेपर एक वैश्यके यहाँसे सीधा-सामान लेकर आ रहे थे तो मार्गमें एक ब्राह्मणने व्यंग्य किया—'माला पहन लिये, तिलक लगा लिये, बस, बाबाजी बन गये। कुछ करना न धरना, फोकटका माल खाते हैं और मटरगश्ती करते हैं। अरे, सच्चे साधु तो ये बैल हैं। इन्हें जो दो, जितना दो, उतना ही खाते हैं और खूब हल खींचते हैं, भार ढोते हैं।' श्रीखेमदासजीने मुसकराकर कहा—'तुम ठीक कहते हो। देखो, तुम्हारा एक बैल चोरी चला गया है, यदि मैं उसके बदले तुम्हारे हलमें चलूँ तब तो तुम मुझे सच्चा साधु मानोगे।' उसने कहा—'हाँ, यदि आप भी बैलका-सा परोपकार करें तो मैं मान लूँगा कि आप भी सच्चे सन्त हैं।' श्रीखेमदासजी सन्तोंकी व्यवस्था करके उस ब्राह्मणके हलमें जुतकर बैलके साथ हल खींचने लगे। भगवान्‌से भक्तका यह महाश्रम देखा नहीं गया। तुरंत प्रभु-प्रेरणासे उस ब्राह्मणका चोरी गया बैल वहाँ आकर खड़ा हो गया। ब्राह्मण प्रसन्न होकर उस बैलको पकड़ने गया तो उसने उसे सींगपर उठाकर दूर फेंक दिया और श्रीखेमदासजीके पास जाकर इनका चरण चाटने लगा। यह देखकर ब्राह्मण समझ गया कि श्रीखेमदासजी सच्चे साधु हैं। वह इनके चरणोंमें पड़कर बार-बार क्षमा-याचना करने लगा। श्रीखेमदासजीने ब्राह्मणको क्षमा-दान देते हुए सन्त-सेवाका उपदेश दिया। ब्राह्मण भी भक्त हो गया।

श्रीहरिदासजी

श्रीहरिदासजी श्रीअयोध्याधाममें निवास करते थे। आप भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। 'यथा लाभ

सन्तोष' की वृत्तिको अपनाये हुए श्रीहरि-इच्छासे जो कुछ भी अपने-आप सहज रूपसे प्राप्त हो जाता, उसीसे सन्त-सेवा करते थे। एकबार सन्तोंकी बहुत बड़ी जमात इनके स्थानपर आयी। कुटीमें एक छटाँक भी सीधा-सामान नहीं था। ये बड़े चिन्तित हुए। तब इनकी चिन्ता दूर करनेके लिये प्रभुने अपने श्रीचरणकमलसे पाँच मुहरें प्रकट कर दीं। घबड़ाये हुए जब आप प्रभुके समक्ष चिन्ता-निवारणार्थ प्रार्थना करने गये तो देखा वहाँ मुहरें पड़ी थीं। प्रभुकी ऐसी कृपा देख आप बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं मुहरोंसे उन्होंने खूब सन्तोंकी सेवा की। उसी दिनसे नित्यप्रति पाँच मुहरें प्रकट होने लगीं। परंतु ये नित्य उन मुहरोंको लेनेमें डरते थे। इन्हें भय लगता कि कहीं मेरी धनमें आसक्ति न हो जाय, मेरे भजनमें कोई बाधा न पड़ जाय। तब रात्रिमें भगवान्ने स्वप्नमें आदेश दिया कि 'डरो मत। यह द्रव्य मैं सन्त-सेवाके निमित्त दे रहा हूँ। इससे खूब सन्तोंकी सेवा करो, कोई बाधा नहीं होगी।' तब ये उन मुहरोंको लेने लगे। ये मुहरोंको रोजकी रोज खर्च कर देते। कलके लिये एक पैसा भी नहीं रखते। ये अपने उपदेशमें श्रीअवध और सरयूका बहुत माहात्म्य वर्णन करते थे।

श्रीउद्धवजी

अनन्य श्रीरामभक्त श्रीउद्धवजी स्वयं श्रीहरि और हरिजन—दोनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहते ही थे, दूसरोंको भी यही उपदेश देते थे। इनके उपदेशसे प्रभावित होकर एक राजाने सन्तसेवाका व्रत लिया था। वेषमात्रमें उसकी अपार निष्ठा हो गयी थी। एक दुष्टने राजाकी इस निष्ठाका अनुचित लाभ उठाना चाहा। वह साधुका वेष धारणकर राजाके यहाँ आया। राजाने सम्मानपूर्वक उसे महलमें वास दिया। परंतु वह एक दिन मौका देखकर रात्रिके समय राजमहलकी एक युवतीको ले भागा। इससे राजाको बड़ा रोष हुआ। उसने श्रीउद्धवजीको उपालम्भ दिया कि आपके कहनेसे मैंने सन्त-सेवा प्रारम्भ की थी और देखिये ये वेषधारी ऐसे-ऐसे घृणित कार्य करते हैं। श्रीउद्धवजीने राजाको धैर्य बँधाया। निष्ठापर दृढ़ रहनेके लिये जोर दिया और उस युवतीका आकर्षण प्रयोग किया। श्रीहरि-कृपासे वह युवती आकाश-मार्गसे राजमहलमें आ गयी। तब तो राजाकी सन्तसेवामें और भी दृढ़ निष्ठा हो गयी तथा श्रीउद्धवजीके प्रति भी उसकी श्रद्धा बढ़ गयी।

अभिलाषा पूर्ण करनेवाले भक्त

सोम भीम सोमनाथ बिको बिसाखा लमध्याना।
महदा मुकुंद गनेस त्रिबिक्रम रघु जग जाना॥
बालमीक बृधब्यास जगन झाँझू बिठल अचारज।
हरिभू लाला हरिदास बाहुबल राघव आरज॥
लाखो छीतर उद्धव कपुर घाटम घूरी कियो प्रकास।
अभिलाष अधिक पूरन करन ये चिंतामनि चतुरदास॥ ९९॥

ये भगवद्दास अपने भजन-साधनमें बड़े ही चतुर थे तथा दूसरोंकी अधिकाधिक अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये चिन्तामणिके समान थे। इनके नाम ये हैं—श्रीसोमजी, श्रीभीमजी, श्रीसोमनाथजी, श्रीबिकोजी, श्रीविशाखाजी, श्रीलमध्यानजी, श्रीमहदाजी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीगणेशजी, श्रीत्रिविक्रमजी, श्रीरघुजी, श्रीबालमीकजी, श्रीवृद्धव्यासजी, श्रीजगनजी, श्रीझाँझूजी, श्रीबीठल आचार्यजी, श्रीहरिभूजी, श्रीलालाजी, श्रीहरिदासजी, श्रीबाहुबलजी, आर्य श्रीराघवजी, श्रीलाखाजी, श्रीछीतरजी, श्रीउद्धवजी, श्रीकपूरजी, श्रीघाटमजी, श्रीघूरीजी—

ये सभी भक्त जगत्‌में प्रसिद्ध हुए और इन सभीने अपने सुयशसे जगत्‌को प्रकाशित किया॥ ९९॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंका भगवत्प्रेममय चरित्र इस प्रकार है—

श्रीसोमजी

आप बड़े ही समृद्धिशाली सन्त थे। आपके यहाँ सन्त-सेवा, कथा-कीर्तन-सत्संगकी धूम मची रहती थी। आपके उत्कर्षको देखकर आपका ही एक गुरुभाई आपसे अत्यन्त द्वेष करता था। उसने आपका अनिष्ट करनेके लिये छल-बल तो बहुत किया, परंतु सफल नहीं हो सका। तब अन्ततोगत्वा उसने आपके श्रीगोपालजीको चुराकर गहरे जलाशयमें फेंक दिया। परंतु श्रीगोपालजी स्वयं जलाशयसे निकलकर सिंहासनपर आ विराजे। उसने फिर फेंका तो श्रीगोपालजी फिर आ गये। श्रीसोमजीको इसका कुछ भी रहस्य मालूम नहीं था। उसने पुनः तीसरी बार भी श्रीगोपालजीको चुराकर फेंकनेका निश्चय किया तो श्रीगोपालजीने स्वप्नमें भय दिया कि मैंने दो बारको तो तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है, परंतु यदि तीसरी बार फिर वही कुकृत्य करोगे तो मैं क्षमा नहीं कर सकता। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो श्रीसोमजीकी शरण ग्रहण करो अन्यथा सर्वनाश हो जायगा। यह सुनकर वह गुरुभाई बहुत घबराया और तत्काल श्रीसोमजीके पास आकर अपनी समस्त काली करतूति कह सुनायी तथा क्षमा-याचना की। श्रीसोमजीने तो उसका कोई अपराध न तो जाना ही था, न माना ही था, फिर भी उसकी प्रार्थनापर उसे क्षमादान देते हुए सन्त-भगवन्त-सेवाका आदेश दिया।

श्रीभीमजी

ये श्रीरामजीकी उपासना करते थे। जूनागढ़के पास निवास-स्थान था। ***'राम ते अधिक राम कर दासा'***की भव्य भावनासे भावित होकर आप अत्यन्त अनुरागपूर्वक सन्तोंकी सेवा करते थे। एकबार इनकी सेवा-निष्ठाकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् पाँच सन्तोंका वेष धारणकर इनके यहाँ पधारे। इन्होंने बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। फिर हाथ जोड़कर पूछा कि 'मैं आप लोगोंका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' सन्तोंमेंसे एकने तो इनकी पत्नी माँगी, दो-ने दोनों पुत्रियोंको तथा अन्य दो-ने दोनों पुत्रोंको माँगा। इन्होंने सहर्ष सन्तोंको पत्नी, पुत्री तथा पुत्र प्रदान कर दिये। सन्तोंके चले जानेपर इनको तो बड़ा सन्तोष हुआ कि मेरे पूरे कुटुम्बको सन्तोंने स्वीकार कर लिया, परंतु पड़ोसियोंने इन्हें बहुत उल्टा-सीधा सुनाया। श्रीभीमजी शान्त चित्तसे सबकी व्यंग्य-बौछार सहते रहे। सन्तोंके प्रति इनके मनमें किंचित् भी दुर्भाव नहीं हुआ। परीक्षामें प्रथम श्रेणीसे उत्तीर्ण हुए। प्रातःकाल सबके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब सब लोगोंने श्रीभीमजीकी पत्नी तथा पुत्रोंको घरपर पूर्ववत् पाया। मानो कोई कहीं गया ही नहीं था। तब सबने आपकी महिमा जानी। चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी। इस प्रसंगको सुनकर एक दुष्टने साधु वेष धारणकर इनकी पत्नीको माँग लिया। परंतु इनकी पत्नीको लेकर ज्यों ही वह अपने घरमें घुसा तो उसके घरमें सर्प-ही-सर्प भर गये। उसको ऐसा प्रतीत होने लगा कि श्रीभीमजीकी पत्नीके शरीरसे सर्प निकलकर मेरे घरमें भर रहे हैं। फिर तो वह उलटे पाँव श्रीभीमजीके पास लौट आया और उनकी पत्नी उनको सौंपते हुए पुनः-पुनः क्षमा-याचना की।

श्रीध्यानदासजी

आप सदा भगवद्ध्यानमें मग्न रहते थे। वाणीसे कभी भी असद्वाक्य नहीं बोलते थे। अतः इनके मुखसे जो भी वचन निकल जाता, वह सत्य होकर रहता। एक दिन एक वणिक् दम्पती इनकी शरणमें आये। वे रोकर अपना दुःखड़ा सुनाने लगे कि 'महाराज! न जाने किस पापसे मेरी सन्तान जन्मते ही मर जाती है। इससे हम लोग बहुत दुखी रहते हैं। ऐसी कृपा कीजिये जिसमें हम लोग इस दुःखसे मुक्त हो जायँ।'

श्रीध्यानदासजीने उपदेश दिया—'***कबहूँ असत न भाषिये, सेइअ अतिथि सप्रेम। इहाँ उहाँ लेहिं सकल सुख, सत सङ्गति करि प्रेम॥***' आपका उपदेश मानकर वणिक् दम्पती तदनुकूल आचरणपरायण हो गये। फलस्वरूप थोड़े ही दिनोंमें घरमें नाती-पोतोंका छगन-मगन छा गया।

श्रीमुकुन्दजी

ये श्रीप्रबोधानन्दजीके शिष्यके शिष्य थे। आपने बड़ा बढ़िया आश्रम बनवाया था। खूब सन्त-सेवा करते थे। एक बार एक सन्तने इनसे कहा—'मुकुन्द! तुम अपना आश्रम हमें दे दो और अपने लिये दूसरा आश्रम बनवा लेना।' इन्होंने सहर्ष वह आश्रम सन्तको दे दिया और स्वयं जंगलकी राह ली। वनपथमें एक राजाका घोड़ा सहसा मर गया था, जिससे उसे अत्यन्त दुःख था। इन्होंने कृपा करके राजाका घोड़ा जीवित कर दिया। इनकी महिमा जानकर राजाने इनके लिये पहलेसे बढ़िया आश्रम बनवा दिया और साथ ही सन्त-सेवाका प्रबन्ध भी कर दिया।

श्रीवृद्धव्यासजी

इनकी सद्गुरु एवं सन्तोंमें बड़ी निष्ठा थी। घरमें एक ब्याहयोग्य कन्या थी। उसके विवाहके लिये इन्होंने सामग्री एकत्र की थी। इसी बीच इन्हें पता चला कि श्रीगुरुदेवजीके यहाँ उत्सव मनाया जा रहा है, तो इन्होंने वह सब सामग्री श्रीगुरुदेवजीको अर्पित कर दी। इन्होंने यह परवाह नहीं की कि कन्याका विवाह कैसे होगा? भगवान्ने एक वैश्यको प्रेरणा की। वह विवाहका सब सामान इनके घर दे गया। कन्याका विवाह यथासमय सानन्द सम्पन्न हो गया।

श्रीजगनजी

आप बड़े गौ-सन्तसेवी थे। एक बार आपकी एक गायको चोर चुरा ले गये। गायोंकी सेवामें रहनेवाला आपका शिष्य बहुत दुखी हुआ कि अब श्रीठाकुरजीको दूधका भोग कैसे लगेगा? यही तो एक दूध देनेवाली गाय थी, वह भी चोरी चली गयी। फिर वह अपने गुरुदेव श्रीजगनजीपर नाराज होने लगा कि एक सन्त तो श्रीनामदेवजी थे, जिन्होंने मरी हुई गायको जीवित कर दिया था और एक आप हैं, जिन्होंने जीवितको भी गवाँ दिया। श्रीजगनजीने मुसकराकर कहा—'तुम मुझसे लड़ाई क्यों कर रहे हो? पहले गौशालामें जाकर तो देखो।' शिष्यने गौशालामें जाकर देखा तो गाय अपने स्थानपर बँधी मिली। श्रीगुरुदेवकी यह महिमा देखकर उसकी श्रद्धा श्रीगुरुचरणोंमें और भी अधिक हो गयी।

श्रीझाँझूदासजी

पयोहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रमुख शिष्योंमें एक संगीत-प्रवीण हेमानन्दजी महाराज थे। श्रीभक्तमालमें जिनका स्मरण श्रीनाभाजीने छ० ३९ में 'हेम' ऐसा संक्षिप्त नाम लिखकर किया है। इन्हींके कृपापात्र श्रीझाँझूदासजी थे। आपका जन्म चतुर्दश शताब्दीके उत्तरकालमें उमाड़ा नामक ग्राममें पण्डित चोखारामजीके घरमें हुआ था। आप खाण्डल विप्र जातिके बुढ़ाडरा गोत्रके थे। बाल्यकालसे ही झाँझूदासजीकी निष्ठा भगवद्भजनकी ओर विशेष रूपसे थी। पिताजीने विद्याध्ययन कराया, पर आप तो भगवान्के भजनमें ही तल्लीन रहा करते थे। आपने गुरु श्रीहेमानन्दजीसे उपदेश लेकर जयपुरसे पश्चिमकी ओर अरण्य प्रदेशमें एक तालाबके किनारे आश्रम बनाकर भगवान्का आराधन करना प्रारम्भ कर दिया। ईश्वरकी प्रेरणा बड़ी प्रबल होती है, झाँझूदासजीकी साधना दिनों-दिन बढ़ने लगी। भक्तिकी अन्तः प्रेरणासे भक्त-हृदयमें ईश्वर-दर्शनकी लालसा प्रबल रूपसे जाग उठी। अपने इष्टदेवके दिव्य स्वरूपके अवलोकनार्थ झाँझूदासजीने श्रीअयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थान कर दिया। भगवान्का गुणानुवाद करते हुए वे भगवान् श्रीरामकी

क्रीडास्थली श्रीसरयूनदीके तटपर पहुँच गये। वहाँ जाकर बड़ी तल्लीनतासे भगवद्भजनमें संलग्न हो गये। जब भक्तकी आत्मा आकुल होकर भगवान्‌को पुकारती है, तब उन्हें दौड़कर आना ही पड़ता है। श्रीझाँझूदासजीको भक्ति-साधना करते कुछ काल व्यतीत हो गया।

एक बार रामघाटके ऊपर जब ये प्रबल साधनामें तल्लीन होकर दर्शनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो गये, तब वहाँ प्रेम-सुधासागर भगवान् श्रीराघवेन्द्रने श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजीसहित आपको दर्शन दिया। सन्तका हृदय उस मनमोहक दिव्य झाँकीसे परम आह्लादित हो उठा और ये तनकी सुधि-बुधि भूलकर कनकदण्डवत् भूमिपर गिर पड़े। तदनन्तर सावधान होनेपर भगवान्‌से गद्‌गद-कण्ठ होकर नित्य सेवाकी याचना करने लगे। प्रभुने सहज भावसे कहा—'कलियुगमें मेरा प्रकट होना ही दुःसाध्य है, परंतु तुम्हारी दृढ़ एवं अनन्य भक्तिको देखकर मुझे दर्शन देना पड़ा। नित्य सेवाके लिये तुमको सरयूमें विग्रह-रूपकी प्राप्ति होगी, उसे ले जाना और उसे स्थापितकर उसकी सेवा करना। श्रीझाँझूदासजीने अब प्रभुके दिव्यस्वरूपको बार-बार देखनेकी प्रार्थना की, तब प्रभुने कहा—'तुम्हारे उत्सवोंमें मैं नीलकण्ठ पक्षीके रूपमें आऊँगा। उसे मेरा ही स्वरूप समझना।'

इसके अनन्तर वह अलौकिक आभा अदृश्य हो गयी। श्रीझाँझूदासजी उस स्वरूपका चिन्तन करते हुए श्रीसरयूमें स्नान करने गये। वहाँ स्नान करते समय आपको श्रीराम, लक्ष्मण एवं श्रीजानकीके श्रीविग्रह सिंहासनासीन प्राप्त हुए। भगवान्‌की इस असीम अनुकम्पासे भक्तके हृदयमें परम प्रसन्नता हुई। श्रीझाँझूदासजीने सिंहासनको शिरोधार्य करके अपने स्थानकी ओर प्रस्थान किया। भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र होती है। संसारका प्रत्येक कार्य ईश्वरके इंगितमात्रसे होता रहता है। भक्त झाँझूदास जब अयोध्यापुरी गये थे, तब अपने स्थानपर एक सूखी डाली रोपकर यह निश्चय करके गये थे कि यदि यात्रासे लौटनेपर यह हरी मिलेगी, तब मैं अपनी यात्राको सफल समझूँगा और लीला-उत्सव मनाऊँगा। लौटनेपर वह सूखी डाली हरी लहलहाती हुई आपको वृक्षके रूपमें मिली। तब आपने बड़ी प्रसन्नतासे वहीं श्रीविग्रहकी स्थापनाकर विजयदशमीको लीला-उत्सव मनाया। इस उत्सवमें प्रातःकाल अपने पूर्वसंकेतानुसार भगवान् नीलकण्ठरूपमें दर्शन देनेके लिये आये। इस उत्सवको आप प्रतिवर्ष मनाते रहे। फिर वहाँ हरसौली नामक ग्राम बस गया, जो जयपुरसे पश्चिम ३२ मील फुलेरा तहसीलमें है।

श्रीझाँझूदासजीने अन्ततक वहीं रहकर भजन किया और अपने प्रभावसे लोगोंमें भक्तिका प्रचार-प्रसार करते रहे। वि० सं० १५४२ में आप साकेतधाम पधारे। आज भी विजयदशमीको उनके वंशधरोंके द्वारा उत्सव मनाया जाता है और उत्सवमें प्रातःकालके समय जागरणके स्थानपर भगवत्स्वरूप नीलकण्ठके दर्शन होते हैं। दर्शन पाकर ही जागरण-उत्सवकी समाप्ति होती है। इस प्रकार प्रतिवर्ष यह मेला अब भी लगता है और इनके द्वारा रचित भक्ति-उत्सव-सम्बन्धी पद गाये जाते हैं। आगे चलकर आपकी परम्परामें श्रीसियासखीजी एवं श्रीरूपसरसजी नामक प्रसिद्ध भक्त कवि हुए।

श्रीबाहुबलजी

आप श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीके प्रमुख शिष्योंमेंसे थे। आपका बाहुबल नाम पड़नेका कारण यह कहा जाता है कि एक बार एक राजापर उसके शत्रुओंने चढ़ाई कर दी। राजाने प्रथम तो शत्रुओंका डटकर मुकाबला किया, परंतु जब देखा कि शत्रु-सैन्य अति प्रबल है तो वह राजमहल छोड़कर, भागकर श्रीबाहुबलजीकी शरणमें चला गया। श्रीबाहुबलजीने भयभीत राजाको अभय प्रदान करते हुए अपने हाथके संकेतमात्रसे ही शत्रुदलको स्तम्भित कर दिया। विपक्षी दल इस प्रकारका चमत्कार देखकर

श्रीबाहुबलजीके चरणोंके पड़कर क्षमा माँगकर अपने स्थानको लौट गया। सन्त-कृपासे राजाका बाल भी बाँका नहीं हुआ। इससे प्रजासहित उसकी श्रीबाहुबलजीमें तथा सन्तमात्रमें अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। बाहुके संकेतसे सेनाको जड़ीभूत करनेसे ही इसका नाम बाहुबल पड़ गया।

श्रीकपूरजी

आप बड़े दयालु हृदय सन्त थे। एक बार आपने एक सन्तके पाँवमें बिवाई फटी देखी तो उनसे पूछा—'महाराज! आप जूता क्यों नहीं पहनते?' सन्तने कहा—'मैंने एक दृढ़ नियम ले रखा है कि एक हजार सन्तोंको भोजन कराकर, तब पाँवमें जूता पहनूँगा। इसी फिराकमें मैं बहुत दिनोंसे घूम रहा हूँ। परंतु न तो हमारे पास इतना धन हुआ कि एक हजार सन्तोंको भोजन करा सकूँ और न मैंने जूता पहना। श्रीकपूरजीको दया आयी। उन्होंने अपने घरकी बहुत-सी सम्पत्ति बेचकर अकेले ही एक हजार सन्तोंके भोजनकी व्यवस्था कर दी। सन्तका नियम पूर्ण हुआ। उसी दिनसे वे अपने पाँवमें पदत्राण धारण करने लगे।

श्रीघाटमजी

श्रीघाटमजी जातिके मीणा थे। जयपुर-राज्यान्तर्गत खेड़ी ग्रामके निवासी थे। चोरी, डाका, लूट-पाट इनका पुश्तैनी पेशा था। एक बार ये जंगलमें किसीको लूटनेकी तलाशमें घूम रहे थे। संयोगसे एक महात्माका दर्शन हुआ। इन्होंने सहज भावसे प्रणाम किया तो सन्तने समीप आकर उपदेश दिया—'बेटा! यह चोरी-डाका अत्यन्त निन्द्य काम है। इसे तुम छोड़ दो। इससे लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।' इन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! यह तो हमारी जीविका है और वह भी आजसे नहीं मेरी कई पीढ़ियोंसे चली आ रही है, अतः यह तो हमसे छूट नहीं सकती।' हमारे पिताजीने भी कहा है—'बेटा! अपना पेशा छोड़ना नहीं। अतः आप और कुछ उपदेश दें, वह हम सहर्ष माननेके लिये तैयार हैं।' सन्तने कहा—'अच्छा, तो हमारी चार बातें यदि तुम मानोगे तो तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जायगा। १-सत्य बोलना, २-साधु-सेवा करना, ३-भगवान्को अर्पण करके प्रसाद पाना, ४-भगवान्की आरतीका दर्शन करना।' श्रीघाटमजीने चारों बातें मान लीं। अब तो ये लूट-मारकर धन लाते तो प्रथम सन्तोंकी सेवा करते, फिर बचे-खुचे धनसे परिवारका पालन करते।

एकदिन सन्तोंकी जमात घरपर आयी। इन्होंने तुरंत उठकर सन्तोंको दण्डवत् प्रणाम किया, सबका आसन लगवाया। फिर घरमें सीधा-सामान लेने गये तो पता चला कि घरमें एक छटाँक भी अन्न नहीं है। इन्होंने गाँववालोंसे माँगा, परंतु किसीने नहीं दिया। तब चोरीका निश्चय किया। गाँवके बाहर लोगोंके खलिहान थे। ये गये और एकको राशिमेंसे पर्याप्त गेहूँ बाँधकर उठा लाये। सन्त-सेवा तो हो गयी, पर एक भय मनमें बना रहा कि यदि प्रातःकाल कोई पद-चिन्होंके आधारपर पता लगाना चाहेगा तो मेरी चोरी पकड़ जायगी। लेकिन भगवान्की इच्छासे थोड़ी ही देरमें बड़े जोरका आँधी-पानी आया। निशानका नामोनिशान नहीं रह गया। ये निश्चिन्त हो गये। सन्त-सेवामें और अधिक भाव हो गया।

ऐसे ही एक बार इनके श्रीगुरुदेवजीके यहाँ कोई उत्सव था। सुनकर इनका मन बहुत प्रसन्न हुआ। जीमें आया कि श्रीगुरुदेवजीकी सेवामें पहुँचना चाहिये। परंतु समस्या यह थी कि इनके पास पैसेके नामपर एक छदाम भी गाँठमें नहीं था। अतः इन्होंने पुनः चोरीका विचार किया। ये फौजी सिपाहीका भेष बनाकर एक राजाके अस्तबलमें घुसे। पहरेदारोंने टोका भी कि तुम कौन हो? तो इन्होंने गुरुकी बात यादकर सत्य ही कहा कि 'मैं चोर हूँ।' परंतु इनकी वेषभूषाको देखकर पहरेदारोंने इन्हें कोई फौजका सरदार समझा। इन्होंने निर्भय होकर अस्तबलमें प्रवेश किया और राजाकी सवारीका एक बढ़िया घोड़ा खोला और उसपर

आरूढ़ होकर सेनापतिकी भाँति बड़े शानसे बाहर निकले। किसीने कुछ भी नहीं कहा। कुछ दूर जानेपर इन्हें एक मन्दिरमें भगवान्‌की मंगला आरती होती दिखायी पड़ी। ये घोड़ेको एक पेड़से बाँधकर आरतीका दर्शन करने लगे। उधर जब सबेरा हुआ तो पता चला कि घोड़ा चोरी चला गया। अब पहरेदारोंको मालूम हुआ कि वह सचमुच चोर ही था। घोड़ेका पता लगानेके लिये घुड़सवार चारों दिशाओंमें दौड़े। पता लगाते-लगाते वहाँ पहुँच गये, जहाँ घोड़ा बँधा था। देखनेपर मालूम हुआ कि घोड़ा तो वही है, परंतु रंग बदल गया है, श्यामसे श्वेत हो गया है। इतनेमें आरतीका दर्शन, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम करके तथा चरणामृत लेकर श्रीघाटमजी बाहर आये। पूछनेपर पुनः इन्होंने सब बात सही-सही कह दी कि घोड़ा वही है और चुरानेवाला चोर मैं वही हूँ; परंतु श्रीहरिकृपासे घोड़ेका रंग वह नहीं रहा। भगवान्‌ने मेरी रक्षा करनेके लिये अभी-अभी घोड़ेका रंग बदल दिया है। यह देख-सुनकर राजाके घुड़सवार दंग रह गये। वे श्रीघाटमजीको भी साथ लेकर राजाके पास आये। श्रीघाटमजीकी सत्यवादिता और हरिकृपासे घोड़ेके रंगमें परिवर्तनसे राजा बड़ा प्रभावित हुआ। उसने श्रीघाटमजीके चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया और श्रीगुरुसेवा एवं जीविकाके निमित्त बहुत-सा द्रव्य एवं भूमि भेंट की। श्रीघाटमजीकी श्रीगुरुवचनोंमें और अधिक आस्था हो गयी। ये सहर्ष श्रीगुरु-उत्सवमें सम्मिलित हुए और इन्होंने सदा-सर्वदाके लिये चोरी-डाका छोड़ दिया।

एक बार श्रीघाटमजीके मनमें इस बातकी बड़ी ग्लानि हुई कि मुझे इतने दिन श्रीगुरुदेवजीके बताये पथपर चलते हो गया, परंतु भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए, उस समय इन्होंने अत्यन्त आर्त होकर यह पद गाया—***'पहले तो मैं यूँ ही खाता अब तो न्हाकर खावाँ छाँ। गलमें माला, माथे तीलक थारे निमित लगावा छाँ॥ म्हाने तो एता करि दीना थाने कीना काईं। घाटमदास जाति कौ मीना तारोगे की नाईं।'*** इनके इस प्रेमभरे उपालम्भको सुनकर तत्काल भगवान् प्रकट हो गये। श्रीघाटमजी भगवान्‌का दर्शनकर निहाल हो गये। सत्संगके प्रभावसे श्रीघाटमजीके जीवनमें कैसा परिवर्तन हुआ, एक पदमें इसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। यथा—

प्रथम यह विचारै आजु कहँ घात मारैं। अब यह उर धारैं साधुजन कब पधारैं॥
प्रथम वन फिराते लूटिकै माल खाते। अब जनन्ह कहँ बुलाते छीनिकै जूँठ खाते॥
तब फिरत नृप सिपाही हथकड़ी को पिन्हाऊँ। अब फिरत जन घनेरे पादरज सिर चढ़ाऊँ॥
कसि विविध गति दुरंगी तब रहे दुष्ट संगी। अब सुमति यों उमंगी ह्वै गये साधु संगी॥

श्रीघाटमजीका उपदेश—

जे नर रसना नाम उचारैं।
केतिक बात आपु तरिबेकी कोटि पतित निस्तारैं।
काम क्रोध मद लोभ तजैं अरु जीव दशा प्रतिपालैं।
बसुधा पर तीरथ हैं जेतिक तिनहूँके घट टालैं॥
मीना जाति जदपि कुल नीचो सतगुरु शब्द विचारैं।
घाटमदास रामको परिचै तीनहुँ लोक उधारैं॥

भक्तोंके पालक महन्त

देवानंद नरहर्‌यानंद मुकुंद महीपति संतराम तंमोरी।
खेम श्रीरंग नंद बिष्नु बीदा बाजू सुत जोरी॥

छीतम द्वारकादास माधव मांडन रूपा दामोदर।
भल नरहरि भगवान बाल कान्हर केसौ सोहैं धर॥
दास प्रयाग लोहंग गुपाल नागू सुत गृह भक्त भीर।
भक्तपाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूर धीर॥ १००॥

ये स्थानाधिपति (महन्त) सन्त भक्तोंका पालन-पोषण करनेवाले, बड़े शूर, धीर तथा दिग्गज भक्त हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीदेवानन्दजी, श्रीनरहरियानन्दजी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीमहीपतिजी, श्रीसन्तरामजी तमोली, श्रीखेमजी, श्रीरंगजी, श्रीनन्दजी, श्रीविष्णुजी, श्रीबीदाजी, श्रीबाजूजी तथा श्रीबाजूजीके दोनों पुत्र, श्रीछीतमजी, श्रीद्वारकादासजी, श्रीमाधवजी, श्रीमांडनजी, श्रीरूपाजी, श्रीदामोदरजी, परम साधु श्रीनरहरिजी, श्रीभगवानजी, श्रीबालजी, श्रीकान्हरजी, श्रीकेशवजी, श्रीप्रयागदासजी, श्रीलोहंगजी, श्रीगोपालजी, श्रीनागूजी एवं इनके पुत्र। ये भक्त अपने स्थानपर बड़े सुशोभित हुए। इनके यहाँ भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी॥ १००॥

इनमेंसे कुछ सन्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदेवानन्दजी

श्रीदेवानन्दजी बड़े ही सन्तसेवी सद्गृहस्थ थे। आपके पास कोई स्थायी जगह-जमीन नहीं थी। अत: आकाशवृत्तिपर ही सन्त-सेवा आधारित थी। फस्वरूप कभी तो खूब घुटती थी और कभी फाकेमस्ती भी होती। एक बार सन्तोंकी एक जमात आपके स्थानपर पधारी। धनके अभावमें आप एक वणिक्‌के यहाँ उधार सीधा-सामान लेने गये। वणिकने टका-सा जवाब दिया—'महाराज! नौ नगद न तेरह उधार। हमारे यहाँ उधारका खाता ही नहीं है।' तब ये श्रीठाकुरजीकी पूजाका पात्र वणिक्‌के यहाँ गिरवी रखकर सीधा-सामान लाये और सन्तसेवा की। श्रीदेवानन्दजीके मनमें इस बातका बड़ा क्षोभ था कि श्रीठाकुरजीकी सेवाका एक पार्षद कम हो गया। परंतु जब वे पूजामें गये तो सभी पार्षद वर्तमान पाये। जो पात्र वणिक्‌के यहाँ गिरवी रख आये थे, वह भी मौजूद मिला। तब तो श्रीप्रभुकृपा विचारकर बड़े हर्षित हुए। कुछ दिन बाद जब पैसा हाथमें आया तो उस वणिक्‌से जाकर बोले कि—'अपना पैसा ले लो और मेरे श्रीठाकुरजीकी सेवाका पात्र दे दो।' उस वणिक्‌ने सारा घर छान डाला, परंतु उसे पात्र नहीं मिला। तब तो वह घबड़ाया हुआ इनके चरणोंमें पड़कर बोला—'महाराज! पात्र तो मिल नहीं रहा है, उसके बदलेमें कुछ सीधा-सामान ले जाइये।' श्रीदेवानन्दजीने कहा—'भैया! वह तो श्रीठाकुरजीकी सेवाका पार्षद था, भला वह कहीं धनके बदलेमें मिल सकता है? इसके बदले तो अब तुमको ही पात्र बनना होगा।' वणिक्‌ने पूछा—'महाराज! मैं पात्र कैसे बन सकता हूँ?' आपने कहा—'आजसे तुम भी श्रीरामकी भक्ति करो और सन्तोंकी सेवा करो, तब पात्र बन सकते हो, अन्यथा दण्डके भागी बनोगे। वणिक् राजी हो गया। तब श्रीदेवानन्दजीने अपने स्थानसे वह पात्र ले जाकर उस वणिक्‌को दिखलाया कि देखो, वह पात्र यह है। श्रीठाकुरजी अपने पार्षदोंको अपनेसे पृथक् नहीं करते। इसी प्रकार यदि तुम भी पात्र बन जाओगे तो श्रीठाकुरजी तुम्हें भी सदा समीप रखेंगे। वणिक् भक्तिका यह चमत्कार देखकर तुरंत श्रीदेवानन्दजीका शिष्य हो गया।'

श्रीखेमजी

श्रीखेमजी जातिके वैश्य एवं जैन-मतावलम्बी थे। एक बार इन्होंने मन्दिरमें भगवान्‌की झाँकी देखी। वह झाँकी इनके हृदयमें गड़ गयी। बस, विवश होकर इन्हें वैष्णव होना पड़ा। अब तो रात-दिन ये भगवान्‌की सेवा-पूजा, कथा-वार्तामें ही अपना सारा समय बिताने लगे। सन्तोंको बुला-बुलाकर सेवा करते और कथा-

कीर्तन करवाते। इनकी यह रहनी इनकी जातिवालोंको अच्छी नहीं लगी। अतः सबने मिलकर पंचायत की और सौगन्ध दिलायी कि तुम यह सब सेवा-पूजा, कथा-कीर्तन छोड़कर अपने पुराने धर्मपर आरूढ़ हो जाओ। इन्होंने दो टूक जवाब दिया कि 'मैं अपने प्राण, धन, धामको छोड़ सकता हूँ, करोड़ों दण्ड और अपमान सहर्ष सह सकता हूँ, परंतु श्रीहरि और हरिजनोंको नहीं छोड़ सकता।' जब ये किसी भी प्रकार माननेको राजी नहीं हुए तो जैनियोंने राजासे जाकर इनकी शिकायत की। राजाने इनको कारागारमें बन्द कर दिया। इसी बीच घरपर सन्त पधारे। श्रीखेमजीकी पत्नीके द्वारा सब समाचार सुनकर सन्तोंको बड़ा दुःख हुआ। सभी सन्त भगवान्‌के सामने अनशन करके बैठ गये कि जबतक भक्तजी नहीं आयेंगे, तबतक हम लोग अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। उधर श्रीखेमजीको भी सन्तोंके आगमन तथा अनशनका पता चला तो मनमें बहुत ही दुखी हुए। भला, जहाँ इतने सन्त-भक्त दुखी होंगे, वहाँ भगवान् कैसे सुखी रह सकते हैं? अतः प्रभुने अपनी लीलाका विस्तार किया। श्रीखेमजीकी हथकड़ी-बेड़ी अपने-आप टूट गयीं, कारागारके ताले टूट गये, फाटक खुल गये, पहरेदार सो गये। श्रीखेमजी सन्त-दर्शनके लिये अत्यन्त आतुर हो दौड़ पड़े, आकर सन्तोंके चरणोंमें लोट-पोट हो गये। सब सन्तोंने प्रसाद पाया। भक्तिका यह चमत्कार देखकर सभी विरोधी नतमस्तक हो गये। सबने श्रीखेमजीके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना की और स्वयं भी सन्त-सेवाका व्रत लिया।

श्रीरूपाजी (श्रीरूपरसिकदेवाचार्यजी)

आप दक्षिण देशके रहनेवाले थे। जातिके ब्राह्मण थे तथा परिवार-पोषणके लिये खेती करते थे। सन्तसेवामें आपकी बड़ी निष्ठा थी। बहुत कालतक आपके यहाँ सन्तसेवा सुचारुरूपसे चलती रही। एक साल वर्षाके अभावमें खेतीमें अन्नकी उपज कुछ भी नहीं हुई। ऐसी स्थितिमें परिवारका ही भरण-पोषण कठिन हो जाता। फिर अतिथि-अभ्यागत, साधु-महात्माओंकी सेवा तो बहुत दूरकी बात! परंतु श्रीरूपाजी धैर्यपूर्वक परिवार-पोषणके साथ-साथ सन्तसेवा भी करते रहे। धीरे-धीरे घरके सभी बर्तन-आभूषण बिक गये। जरूरत पड़नेपर मकान भी बेच दिया। अन्तमें तो खेत भी बेच दिया, परंतु सन्तसेवापर आँच नहीं आने दी। लेकिन इतनेपर भी अकालका अन्त नहीं हुआ। फलस्वरूप घरमें उपवासकी स्थिति आ गयी। बाल-बच्चे भूखे मरने लगे। श्रीरूपाजी अन्नकी तलाशमें कहीं जा रहे थे। मार्गमें सन्त मिल गये तो उन्हें अनुनय-विनयकर घर लिवा लाये। ये तो सन्तोंके आनेसे बड़े प्रसन्न हो रहे थे, परंतु इनकी पत्नी घबड़ायी कि इतने सन्तोंका सत्कार कैसे होगा? इन्होंने पत्नीसे कहा कि 'यदि कोई आभूषण शेष हो तो दो, उसे बेंचकर सन्तोंकी सेवामें लगा दूँ।' इन सन्तोंके आशीर्वादसे ही दुःखोंकी निवृत्ति होगी। पत्नीने झल्लाकर कहा—'यदि कोई आभूषण होता तो बच्चे क्यों भूखके कारण मारे-मारे फिरते?' श्रीरूपाजीने बड़े विश्वासपूर्वक कहा कि 'यदि तुमने कुछ छिपाया न होता तो विश्वम्भर भगवान् हमें कदापि भूखे नहीं रखते। उन्होंने निश्चय ही अबतक कोई-न-कोई उपाय कर दिया होता।' यह सुनकर पत्नी कुछ लज्जित-सी हुई और उसने अपनी नथ लाकर पतिको दी। श्रीरूपाजीने उसे ही बेचकर आज सन्तोंकी सेवा की। सन्तोंके पीछे सबने सीथप्रसादी पायी। उसी रातको भगवान्‌ने स्वप्नमें कहा कि 'घरमें अमुक जगह अपार सम्पत्ति गड़ी पड़ी है, उसे खोदकर आनन्दपूर्वक सन्तसेवा करो।' श्रीरूपाजीने वह स्थान खोदा तो सचमुच इन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। फिर तो बड़े आनन्दसे दिन बीतने लगे। सन्तोंके श्रीमुखसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी महिमा सुनकर आपने निश्चय किया कि मैं इन्हींसे मन्त्रदीक्षा लूँगा। अपने निश्चयके अनुसार आप अपने देशसे श्रीमथुरा-वृन्दावनके लिये चल पड़े। परंतु संयोगकी बात, जब आप मथुरा पहुँचे तो पता चला कि

श्रीहरिव्यासजी तो नित्य-निकुंजमें प्रवेश कर गये। इस दुःखद समाचारसे आपको मर्मान्तक पीड़ा हुई। आप मथुराके विश्रामघाटपर प्राण-त्यागका संकल्पकर जा बैठे। अन्तमें निष्ठाकी विजय हुई। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने नित्यधामसे प्रकट होकर इन्हें दर्शन दिया। मन्त्रोपदेश देकर श्रीमहावाणीजीके अनुशीलनका आदेश दिया। श्रीगुरुदेवकी यह अलौकिक कृपा देखकर आप आनन्द-विभोर हो गये। तत्पश्चात् श्रीगुरुके आदेशानुसार आप आजीवन श्रीमहावाणीजीके मनन-चिन्तनमें रत रहते हुए इष्टाराधन करते रहे। श्रीरूपरसिकजीने आराधनसम्बन्धी बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी रचना बड़ी ही सरस है। यथा—

नैना प्रकृति गही यह न्यारी।
जाचत जे लै श्याम सरूपहिं बन-बन बिकल महारी॥
अटके नेक न रहे लालची सीख दये सब हारी।
रूपरसिक दरसै मनमोहन तबही होय सुखारी॥

भगवद्भजनपरायण सन्त

केसव पुनि हरिनाथ भीम खेता गोबिंद ब्रह्मचारी।
बालकृष्ण बड़ भरथ अच्युत अपया ब्रतधारी॥
पंडा गोपीनाथ मुकुँद गजपती महाजस।
गुननिधि जसगोपाल देइ भक्तनि को सरबस॥
श्रीअंग सदा सानिधि रहैं (कृत) पुन्य पुंज भल भाग भर।
बद्रिनाथ उड़ीसे द्वारका सेवक सब हरि भजन पर॥ १०१॥

श्रीबदरिकाश्रम, उड़ीसा (श्रीजगन्नाथपुरी), श्रीद्वारिकापुरी—इन भगवद्धामोंमें भगवान् श्रीनरनारायण, श्रीजगन्नाथभगवान् और श्रीभगवान् (द्वारकाधीश)-के सभी सेवक बड़े ही भगवद्भजनपरायण हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीकेशवजी, श्रीहरिनाथजी, श्रीभीमजी, श्रीखेताजी, ब्रह्मचारी श्रीगोविन्दजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीबड़भरतजी, श्रीअच्युतजी, श्रीअपयाजी, पण्डा श्रीगोपीनाथजी, श्रीमुकुन्दजी, महायशस्वी श्रीरुद्रप्रताप गजपतिजी (पुरीनरेश), श्रीगुणनिधिजी और श्रीजसगोपालजी। ये सभी भक्त सन्त-भगवन्त-सेवाका व्रत धारण करनेवाले, परम यशस्वी तथा भक्तोंको अपना सर्वस्व समर्पण करनेवाले हुए। ये सदा भगवान्के श्रीअंगके समीप रहते थे। इन्होंने पूर्वजन्ममें महान् सुकृत किया था। ये बड़े सौभाग्यशाली थे॥ १०१॥

इनमेंसे कुछ सन्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीरुद्रप्रतापजी गजपति

पुरीनरेश श्रीरुद्रप्रतापजी परम भागवत राजा हुए। श्रीजगन्नाथभगवान्में इनकी परम निष्ठा थी। भगवान्की सेवाकी समस्त व्यवस्था इनके ही द्वारा होती थी। इनकी भक्तिकी सराहना करते हुए सार्वभौम वासुदेव भट्टाचार्यजी कहते हैं कि—***जगन्नाथे एकराजा किंतु भक्तोत्तम॥*** (चै० च०) अर्थात् श्रीरुद्रप्रतापजी यद्यपि राजा हैं, परंतु श्रीजगन्नाथभगवान्के सेवक हैं और भक्तोंमें श्रेष्ठ भक्त हैं। राजा रुद्रप्रतापजीकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि मैं श्रीचैतन्यमहाप्रभुके दर्शन करूँ। इसके निमित्त उन्होंने सार्वभौम वासुदेव भट्टाचार्यजीसे सिफारिश की कि मुझे जैसे हो तैसे श्रीमहाप्रभुजीका दर्शन करा दीजिये। श्रीसार्वभौमजीने श्रीमहाप्रभुजीसे निवेदन भी किया। परंतु श्रीमहाप्रभुजीने दो टूक जवाब दे दिया कि

संन्यासीको रजोगुणी राजा-महाराजाओंसे मिलना उचित नहीं है। श्रीसार्वभौमजीने राजाको जब यह प्रभु-वचन सुनाया तो प्रथम तो राजाके मनमें बड़ा खेद हुआ कि मैं श्रीमहाप्रभुजीके दर्शनका अधिकारी नहीं हूँ। तत्पश्चात् उन्होंने प्रण किया कि 'यदि श्रीमहाप्रभुजीका मुझे दर्शन नहीं होगा तो मैं इस शरीरको ही त्याग दूँगा।' इनके इस दृढ़ निश्चयको देखकर श्रीसार्वभौमजीने धैर्य बँधाया कि आप जैसे निष्ठावान्के ऊपर श्रीमहाप्रभुजी अवश्य अनुग्रह करेंगे।

कुछ दिन बाद राजाने पुनः श्रीरायरामानन्दजीसे श्रीप्रभुका दर्शन करानेकी प्रार्थना की। अधिकारी जानकर श्रीरायरामानन्दजीने भी श्रीमहाप्रभुजीसे राजाकी प्रीतिकी सराहना करते हुए दर्शन देनेका अनुरोध किया। तब श्रीमहाप्रभुजीने कहा—'राय! तुम श्रीकृष्णके प्रधान भक्त हो। तुम्हारेमें राजाकी इतनी प्रीति है, इसी गुणसे श्रीकृष्ण उसे अवश्य अंगीकार करेंगे।' श्रीरायरामानन्दजीके इस सन्देशसे राजाको कुछ आश्वासन मिला। फिर राजाने श्रीमहाप्रभुजीके समस्त परिकरोंसे प्रार्थना की कि वे जैसे हो तैसे मुझे श्रीमहाप्रभुजीके दर्शन करायें। सब परिकर मिलकर श्रीमहाप्रभुजीके पास गये। परंतु बोलनेका साहस किसीको नहीं हुआ। तब श्रीमन्नित्यानन्द महाप्रभुजीने साहस करके श्रीमहाप्रभुजीसे निवेदन किया कि 'यदि आप राजा रुद्रप्रतापके ऊपर कृपा नहीं करेंगे तो वे राज-पाट छोड़कर संन्यासी हो जायँगे और देह भी त्याग देंगे।' परंतु तब भी श्रीमहाप्रभुजीने कुछ अनुकूल उत्तर नहीं दिया। तब श्रीनित्यानन्दजीने प्रार्थना की कि 'आप अपना एक कटिवस्त्र भी कृपा करके राजाको प्रदान कर दें तो वह उसे पाकर आपके चरण-दर्शनकी आशा रखते हुए प्राण-धारण कर सकेंगे।' कृपामयकी कृपा हो गयी। राजाको श्रीप्रभुका अमूल्य कटिवस्त्र प्राप्त हो गया। उस वस्त्रको पाकर राजाका मन प्रसन्न हो गया और वे उस वस्त्रकी प्रभुके समान पूजा करने लगे।

कुछ दिन बाद राजाने पुनः श्रीरायरामानन्दजीसे श्रीप्रभुदर्शन करानेकी प्रार्थना की। रायरामानन्दजीने सुअवसर देखकर श्रीप्रभुके समक्ष राजाकी वार्ता चलायी। परंतु श्रीप्रभु अब भी राजासे मिलनेको राजी नहीं हुए। रायरामानन्दजीका विशेष आग्रह देखकर श्रीमहाप्रभुने कहा—'यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे रुद्रप्रतापके लड़केको लाकर मिला दो। पुत्र पिताकी आत्मा ही होता है, अतः पुत्रके मिलनेसे मानो उसका अपना मिलन हो जायगा।' रायरामानन्दजीने ऐसा ही किया। राजाके पुत्रको देखते ही श्रीमहाप्रभुजीको श्रीकृष्णकी स्मृति हो आयी। उन्होंने राजपुत्रका गाढ़ालिंगन किया। श्रीमहाप्रभुजीका आलिंगन पाते ही राजकुमारको प्रेमावेश हो गया। शरीरमें एक साथ प्रेमके सात्त्विक भाव-अनुभावादिकोंका संचार हो गया और वह 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगा। उसकी आँखोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह चलने लगा। श्रीमहाप्रभुजीने राजपुत्रसे नित्य मिलनेके लिये आनेको कहा। फिर रायरामानन्दजी राजपुत्रको लेकर राजाके पास आये। राजाने अपने पुत्रका आलिंगन किया तो स्वयं भी उसी प्रेमदशाको प्राप्त हो गये। मानो इन्होंने साक्षात् श्रीमहाप्रभुजीका आलिंगन किया हो। अब राजाको विश्वास हो गया कि मुझे अवश्य श्रीमहाप्रभुजीके दर्शन होंगे।

रथयात्राका समय था। श्रीमहाप्रभुजी अपने परिकरोंसहित श्रीजगन्नाथभगवान्की रथयात्राका दर्शन करनेके लिये वहाँ उपस्थित थे। पुरीनरेश महाराज रुद्रप्रतापजी स्वर्ण मार्जनी लेकर भगवान्के सामनेका रास्ता बुहार रहे थे एवं चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव कर रहे थे। श्रीमहाप्रभुजी राजाकी यह सेवा देखकर बहुत सुखी हुए। इसी सेवाके कारण राजाको श्रीमहाप्रभुजीकी कृपा प्राप्त हो गयी। श्रीजगन्नाथ भगवान्का रथ चला। प्रेमपुरुषोत्तम श्रीगौरांग महाप्रभुजी अपने परिकरोंसहित रथके आगे कीर्तन करते हुए चल रहे थे। श्रीमहाप्रभुजीका प्रेमोन्मत्त होकर उद्दाम नृत्यपूर्वक संकीर्तन करना सबके मनको आकर्षित कर रहा था। राजा

2066 Bhaktmal Section 21 1 Front

रुद्रप्रतापजी उस समयका श्रीप्रभुका प्रेमावेश देखकर विस्मित हो रहे थे। इतनेमें श्रीमहाप्रभुजी नृत्य करते-करते प्रेमावेशमें पछाड़ खाकर राजा रुद्रप्रतापके आगे गिरने लगे। प्रभुको गिरता हुआ देखकर राजाने उन्हें अतिशीघ्र अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे पकड़ लिया। राजाका स्पर्श होते ही प्रभु सावधान हो गये और कहने लगे—'छिः! छिः! मुझे तो रजोगुणीका स्पर्श हो गया। धिक्कार है मुझको।' प्रभुके वचन सुनकर राजा भयभीत हो गये। तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीने इन्हें समझाया कि 'आप चिन्ता न करें, यह तो श्रीप्रभुने अपने भक्तोंको शिक्षा देनेके लिये कहा है। आपपर तो श्रीप्रभुकी शीघ्र कृपा होनेवाली है।'

बलगण्डि नामक स्थानपर पहुँचकर श्रीजगन्नाथभगवान्का रथ रुका। वहाँ भगवान्को बहुत व्यंजनोंका भोग लगता है। भक्तलोग भगवान्को भोग लगाने लगे। भोगके समय वहाँ बहुत भीड़ हो गयी, अतः श्रीमहाप्रभुजी अपनी मण्डलीके सहित पासके बगीचेमें चले गये। सभी भक्त वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे। श्रीमहाप्रभुजी भी एक एकान्त स्थलपर प्रेमावेशमें नेत्र बन्द किये हुए शयन कर रहे थे। इतनेमें राजा रुद्रप्रतापजी श्रीसार्वभौमजीकी बतायी हुई विधिके अनुसार राजवेष छोड़कर, वैष्णववेष धारणकर अर्थात् गलेमें तुलसीकी माला, ललाटपर तिलक, बाहुओंमें शंख-चक्रादि चिह्न, कटिमें साधारण वस्त्र धारण किये हुए वहाँ आये और श्रीप्रभुके चरण दबाने लगे। चरण-सेवा करते समय राजा रासपंचाध्यायीके 'गोपीगीत' के श्लोकोंका सुमधुर स्वरसे गान करने लगे। जब राजाने—**'तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्। श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥'**—यह श्लोक गाया तो उसे सुनकर श्रीमहाप्रभुजी बड़े सुखी हुए और प्रेमावेशमें उठकर राजाका आलिंगन कर लिया और बोले—'तुमने मुझे बहुत अमूल्य रत्न दिये हैं। मेरे पास और देनेको नहीं है, इसलिये मैं तुम्हें आलिंगन ही देता हूँ।' फिर श्रीप्रभुने उसी प्रेमावेशमें पूछा—'मेरा परमहित करनेवाले तुम कौन हो?' राजाने कहा—'प्रभो! मैं आपके दासोंका एक क्षुद्र दास हूँ। आप मुझे अपने दासोंका दास कर लीजिये।' तब श्रीमहाप्रभुजीने राजाको अपना ऐश्वर्य दिखलाया और कहा कि इसे कहीं प्रकट नहीं करना। राजा रुद्रप्रतापके सौभाग्यको देखकर समस्त भक्त आनन्दित मन होकर प्रशंसा करने लगे। राजा प्रभुको दण्डवत् करके बाहर चले आये और हाथ-जोड़कर उन्होंने सभी भक्तोंको भी प्रणाम किया।

श्रीप्रियादासजीने गौरांग महाप्रभुके प्रति राजा श्रीरुद्रप्रतापजीके इस भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीप्रतापरुद्र गजपति कै बखान कियौ लियौ भक्तिभाव महाप्रभु पै न देखहीं।
किये हूँ उपाय कोटि ओटि लै संन्यास लियौ हियौ अकुलायौ अहो किहूँ मोकों पेखहीं॥
जगन्नाथ रथ आगे नृत्य करैं मत्त भये नीलाचल नृप पाँय पर्‌यो भाग लेखहीं।
छाती सों लगायौ प्रेमसागर बुड़ायौ भयौ अति मन भायौ दुख देत ये निमेखहीं॥ ४०९॥

श्रीहरिनाथजी

ये दक्षिण देशके रहनेवाले थे। घर धन-सम्पत्तिसे भरा-पूरा था। भगवत्-भागवत-परिचर्या ही इनकी प्रमुख साधना थी। एक बार स्वप्नमें भगवान् श्रीनरनारायणने इनको आदेश दिया कि सब कुछ छोड़कर मेरी सेवामें आ जाओ। इन्होंने भगवदादेश शिरोधार्यकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही सर्वस्व त्यागकर श्रीबदरिकाश्रमके लिये प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँचकर मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान्की सेवामें लग गये। इनकी सेवासे रीझकर भगवान्ने इन्हें निज अंग-सेवामें रख लिया।

श्रीगोविन्द ब्रह्मचारीजी

ये बड़े उदारमना, परोपकारी सन्त थे। एक बार एक भक्तको सभी मन्दिरोंमें दर्शन करते हुए तथा आँसू बहाते हुए देखकर इन्होंने दुःखका कारण पूछा तो उसने बताया कि 'मैं घरसे भगवत्सेवा एवं सन्त-सेवाके निमित्त बीस स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर चला था। रास्तेमें एक जगह विश्राम कर रहा था। वहीं मेरी सभी मुहरें किसीने चुरा लीं। मेरे मनका मनोरथ नहीं पूर्ण हो सका। इस बातका मुझे बड़ा दुःख है।' इन्होंने कहा—'तुम शोक मत करो, जितना धन चाहो, मुझसे लेकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लो।' भक्तका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने श्रीगोविन्द ब्रह्मचारीजीसे द्रव्य लेकर अपने मनके अनुसार भगवान्‌को भेंट चढ़ाया और सन्तोंका भोज-भण्डारा किया। उसी रात भगवान्‌ने श्रीगोविन्दजीको स्वप्नमें बताया कि 'भक्तकी मुहरें अमुकने चुरायी हैं।' तब इन्होंने चोरको एकान्तमें बुलाया और विविध प्रकारसे उपदेश दिया। चोरने सब मुहरें लाकर वापस कर दीं और स्वयं भी चोरी छोड़कर भक्त बन गया।

भक्त कविगण

बिद्यापति ब्रह्मदास बहोरन चतुरबिहारी।
गोबिंद गंगा रामलाल बरसानियाँ मंगलकारी॥
प्रियदयाल परसराम भक्त भाई खाटी को।
नंदसुवन की छाप कबित केसव को नीको॥
आसकरन पूरन नृपति भीषम जन दयाल गुन नहिन पार।
हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं ये कविजन अतिसय उदार॥ १०२॥

श्रीहरिके सुन्दर यशका जगत्‌में प्रचार करनेवाले ये कविजन अत्यन्त उदार हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीविद्यापतिजी, श्रीब्रह्मदासजी, श्रीबहोरनजी, श्रीचतुर कवि श्रीविहारीजी, श्रीगोविन्दस्वामीजी, श्रीगंगारामजी, जगत्‌का कल्याण करनेवाले बरसाना-निवासी श्रीरामलालजी, श्रीप्रियदयालजी, श्रीपरशुरामजी, श्रीभक्त भाईजी, श्रीखाटीकजी, श्रीकेशवाचार्यजी, जो अपनी कवितामें 'नन्दसुवन' की छाप लगाते थे तथा जिनकी कविता बड़ी ही अच्छी होती थी। श्रीआशकरनजी, राजा पूर्णजी, श्रीभीष्मजी, श्रीजनदयालजी—इन सुकवियोंके सद्‌गुणोंका पार नहीं है॥ १०२॥

इनमेंसे कतिपय भक्त सुकवियोंका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीगोविन्दस्वामीजी

श्रीगोविन्ददासजीका जन्म व्रजके निकट आँतरी ग्राममें सं० १५६२ वि०में हुआ था। वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्थासे ही उनमें वैराग्य और भक्तिके अंकुर प्रस्फुटित हो रहे थे। कुछ दिनोंतक गृहस्थाश्रमका उपभोग करनेपर उन्होंने घर छोड़ दिया, वैराग्य ले लिया। महावनमें जाकर भगवान्‌के भजन और कीर्तनमें समयका सदुपयोग करने लगे। महावनके टीलेपर बैठकर शास्त्रोक्त विधिसे कीर्तन करते थे। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि दूर-दूरतक फैल गयी। वे गानविद्याके आचार्य थे। काव्य एवं संगीतका पूर्ण रूपसे उन्हें ज्ञान था। गोसाईं विट्ठलनाथजी उनकी भक्ति-निष्ठा और संगीत-माधुरीसे परिचित थे। यद्यपि दोनोंका साक्षात्कार नहीं हुआ था, तो भी दोनों एक-दूसरेकी ओर आकृष्ट थे। गोविन्दस्वामीने श्रीविट्ठलनाथजीसे सं० १५९२ वि० में गोकुल आकर ब्रह्मसम्बन्ध ले लिया। उनके परम कृपापात्र और भक्त हो गये। गोसाईंजीने कर्म और भक्तिका तात्त्विक

विवेचन किया। उनकी कृपासे वे गोविन्दस्वामीसे गोविन्ददास हो गये। उन्होंने गोवर्धनको ही अपना स्थायी निवास स्थिर किया। गोवर्धनके निकट कदम्ब वृक्षोंकी एक मनोरम वाटिकामें वे रहने लगे। वह स्थान 'गोविन्ददासकी कदमखण्डी' नामसे प्रसिद्ध है। वे सरस पदोंकी रचना करके श्रीनाथजीकी सेवा करते थे। व्रजके प्रति उनका दृढ़ अनुराग और प्रगाढ़ आसक्ति थी। उन्होंने व्रजकी महिमाका बड़े सुन्दर ढंगसे बखान किया है। वे कहते हैं—'वैकुण्ठ जाकर क्या होगा, न तो वहाँ कलिन्दगिरिनन्दिनीतटको चूमनेवाली सलोनी लतिकाओंकी शीतल और मनोरम छाया है, न भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर वंशीध्वनिकी रसालता है; न तो वहाँ नन्द-यशोदा हैं और न उनके चिदानन्दघनमूर्ति श्यामसुन्दर हैं; न तो वहाँ व्रजरज है, न प्रेमोन्मत्त राधारानीके चरणारविन्द-मकरन्दका रसास्वादन है।'

गोविन्ददास स्वरचित पदोंको श्रीनाथजीके सम्मुख गाया करते थे। भक्तिपक्षमें उन्होंने दैन्य-भाव कभी नहीं स्वीकार किया। जिनके मित्र अखिल लोकपति साक्षात् नन्दनन्दन हों, दैन्य भला उनका स्पर्श ही किस तरह कर सकता है। गोविन्ददासका तो स्वाभिमान भगवान्‌की सख्य-निधिमें संरक्षित और पूर्ण सुरक्षित था। गोसाईं विट्ठलनाथने उन्हें कवीश्वरकी संज्ञासे समलंकृतकर अष्टछापमें सम्मिलित किया था। संगीत-सम्राट् तानसेन उनकी संगीत-माधुरीका आस्वादन करनेके लिये कभी-कभी उनसे मिलने आया करते थे।

एक समय आँतरी ग्रामसे कुछ परिचित व्यक्ति उनसे मिलने आये, वे यशोदाघाटपर स्नान कर रहे थे। उन्होंने गाँववालोंको पहचान लिया; पर वे नहीं जान सके कि गोविन्दस्वामी वे ही हैं। उन्होंने गोविन्ददाससे पूछा कि 'गोविन्दस्वामी कहाँ हैं?' गोविन्ददासने कहा—'वे तो मरकर गोविन्ददास हो गये।' आपका तात्पर्य था कि अब मुझमें स्वामीभाव नहीं रहा, मैं तो अब श्रीनाथजीका सेवकमात्र हूँ। गाँववालोंने उनके चरणका स्पर्श किया, उनके पवित्र दर्शनसे अपने सौभाग्यकी सराहना की।

एक दिन गोविन्ददास यशोदाघाटपर बैठकर बड़े प्रेमसे भैरव राग गा रहे थे। प्रातःकालके शीतल शान्त वातावरणमें चराचर जीव तन्मय होकर भगवान्‌की कीर्तिमाधुरीका पान कर रहे थे। बहुतसे यात्री एकत्र हो गये। भक्त भगवान्‌को रिझानेमें निमग्न थे। वे गा रहे थे—

आओ मेरे गोविन्द, गोकुल चंदा।
भइ बड़ि बार खेलत जमुना तट, बदन दिखाय देहु आनंदा॥
गायन कीं आवन की बिरियाँ, दिन मनि किरन होति अति मंदा।
आप तात मात छतियाँ लगे, 'गोबिंद' प्रभु ब्रज जन सुख कंदा॥

भक्तके हृदयके वात्सल्यने भैरव रागका माधुर्य बढ़ा दिया। श्रोताओंमें बादशाह अकबर भी प्रच्छन्न वेषमें उपस्थित थे। उनके मुखसे अनायास 'वाह-वाह' की ध्वनि निकल पड़ी। गोविन्ददास पश्चात्ताप करने लगे और उन्होंने उसी दिनसे श्रीनाथजीके सामने भैरव राग गाना छोड़ दिया! शब्दसे उन्होंने अकबरको पहचान लिया था। उन्हें लगा कि जिस रागका आस्वादन किसी सामान्य मनुष्यने कर लिया, वह तो उच्छिष्ट हो गया। अब उस रागका भोग मैं अपने इष्ट देवताको कैसे लगाऊँ? उनके हृदयमें अपने प्राणेश्वर प्रेमदेवता व्रजचन्द्रके लिये कितनी पवित्र निष्ठा थी!

गोविन्ददासजीकी भक्ति सख्य-भावकी थी, वल्लभ-सम्प्रदायमें उन्हें श्रीदामा सखाका अवतार माना जाता है। श्रीनाथजी साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ खेला करते थे, बाल-लीलाएँ किया करते थे। गोविन्ददास सिद्ध महात्मा और उच्च कोटिके भक्त थे। एक बार रासेश्वर नन्दनन्दन उनके साथ खेल रहे थे, कौतुकवश गोविन्ददासने श्रीनाथजीको कंकड़ मारा। गोसाईं विट्ठलनाथजीसे पुजारीने शिकायत की,

गोविन्ददासने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया कि आपके लालाने तो तीन कंकड़ मारे थे। श्रीविट्ठलने उनके सौभाग्यकी सराहना की।

भक्तोंकी लीलाएँ बड़ी विचित्र होती हैं। उनको समझनेके लिये प्रेमपूर्ण हृदय चाहिये। एक बार गोविन्ददासजी श्रीनाथजीके साथ गुल्ली खेल रहे थे, राजभोगका समय हो रहा था, भगवान् बिना दाँव दिये ही मन्दिरमें चले गये। गोविन्ददासने पीछा किया, श्रीनाथजीको गुल्ली मारी। प्रेमराज्यमें रमण करनेवाले सखाकी भावना मुखिया और पुजारियोंकी समझमें न आयी, उन्होंने उनको तिरस्कारपूर्वक मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। गोविन्ददास रास्तेपर बैठ गये; उन्होंने सोचा कि श्रीनाथजी इसी मार्गसे जायँगे, बदला लेनेमें सुविधा होगी। उधर भगवान्‌के सामने राजभोग रखा गया। मित्र रूठकर चले गये, विश्वपतिके दरवाजेसे अपमानित होकर गये थे। भोगकी थाली पड़ी रह गयी, भोग अस्वीकार हो गया। सखा भूखे हों, रूठे हों और भगवान् भोग स्वीकार करें? असम्भव बात थी। मन्दिरमें हाहाकार मच गया, व्रजके रँगीले ठाकुर रूठ गये, उन्हें तो उनके सखा ही मना पायेंगे। विट्ठलनाथजीने गोविन्ददासकी बड़ी मनौती की, वे उनके साथ मन्दिर आ गये। भगवान्‌ने राजभोग स्वीकार किया, गोविन्ददासने भोजन किया, मित्रता भगवान्‌के पवित्र यशसे धन्य हो गयी।

श्रीप्रियादासजी महाराज भगवान्‌की इस लीलाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गोवर्धन नाथ साथ खेलैं सदा झेलैं रंग अंग सख्य भाव हिये गोविन्द सुनाम है।
स्वामी करि ख्यात ताकी बात सुनि लीजे नीके सुने सरसात नैन रति अभिराम है॥
खेलत हो लाल संग गयौ लौट दाव लैकै मारी खैंचि गिल्ली देखि मन्दिर मैं स्याम है।
मानि अपराध साधु धक्का दै निकारि दियौ मति सो अगाध कैसे जाने वह बाम है॥ ४१०॥

बैठ्यौ कुण्ड तीर जाय निकसैगो आय बन दिये हैं लगाय ताको फल भुगताइयै।
लाल हिय सोच पर्‌यौ, कैसे भर्‌यौ जात वह अर्‌यौ मग माँझ भोग धर्‌यौ पै न खाइयै॥
कही श्रीगुसाईंजी कौं, मोकों ये न भाई कछू चाहौ जो खवावौ तोपै वाकों जा मनाइयै।
वाको हुतो दांव मोपै, सो तौ भाव जान्यो नहीं कही मोसों बातैंसो कुमारै बेगि ल्याइयै॥ ४११॥

बन बन खेले बिन बनत न मोकौं नेकु भनत जु गारी अनगनत लगावैगो।
सुधि बुधि मेरी गई भई बड़ी चिन्ता मोहिं ल्याइये जू ढूँढ़ि कहूँ चैन ढिंग आवैगो॥
भोग जे लगाये मैं तो तनक न पाये रिस वाकी जब जाये तव मोहूँ कछु भावैगो।
चले उठि धाये नीठ नीठकै मनाय ल्याये मन्दिरमें खाय मिल कही गरे लावैगो॥ ४१२॥

एक दिन गोविन्दसखा शौचके लिये बाहर जंगलमें गये हुए थे। प्रेममें झूमते हुए श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये। वे गोविन्दको मंदारके फलोंसे मारने लगे। इन्होंने भी जब श्रीकृष्णको देखा तो उठकर उन्हीं फलोंसे उनको भी मारा। इस प्रकार श्रीकृष्ण और गोविन्दसखाके बीच अपार कौतुक हुए। उधर जब बहुत देर हो गयी और ये घर नहीं गये, तब इनकी माता भी वहाँ आयीं। उन्हें देखकर श्रीठाकुरजी गोविन्दकी ओटमें छिप गये, इसी बहानेसे गोविन्दकी मारसे बच गये। गोविन्दको देखकर मैयाने कहा—'अरे ओट पाई (उपद्रवी)! तूने इतनी देर कहाँ लगायी?' गोविन्द बिना कुछ बोले मैयाके संग चल पड़े। फिर थोड़ी देर बाद विचार आया कि मैं तो शौच करने बैठा था, परंतु शुद्धि तो की नहीं, तो तुरंत इन्होंने नियमानुसार शरीरकी शुद्धिरूप सदाचार किया। श्रीगोविन्दसखाका श्रीठाकुरजीमें प्रगाढ़ प्रेम था। अतः श्रीठाकुरजीके साथ खेलते समय ये प्रायः लौकिक सदाचार करना भूल ही जाया करते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गये हे बहिरभूमि तहाँ कृष्ण आये झूमि करी बड़ी धूम आक बोड़िन सौं मारि कै।
इनहूँ निहारि उठि मारि दई वाहीं सों जु कौतुक अपार सख्य भाव रससारि कै॥
माता मग चाहै, बड़ी बेर भई आई तहाँ कहाँ बार लाई ओट पाई उरधारि कै।
आयौ यों विचार अनुसार सदाचार कियौ लियो प्रेम गाढ़ कभूं करत सँभारिकै॥ ४१३॥

एक बार पुजारी श्रीनाथजीके लिये राजभोगकी थाली ले जा रहा था; गोविन्ददासने कहा कि पहले मुझे खिला दो, फिर मन्दिरमें ले जाना। यह सुनकर पुजारीको बड़ा क्रोध हुआ। उसने यह बात गोसाईंजीसे कही। गोसाईंजीके पूछनेपर गोविन्ददासने सख्यभावके आवेशमें कहा कि 'आपके लाला खा-पीकर मुझसे पहले ही गाय चराने निकल जाते हैं, मुझे बादमें भोजन मिलता है, इसलिये मैं बादमें जाता हूँ तो मुझे इन्हें ढूँढ़ना पड़ता है।' इनका सख्यभाव देखकर गोसाईंजीने यह व्यवस्था कर दी कि राजभोगके साथ-ही-साथ गोविन्ददासको भी खिला दिया जाय।

गोविन्ददासके इस सख्यभावका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आवत हो भोग महासुन्दर समुन्दिर कौ रह्यौ मग बैठि, कही, आगे मोहिं दीजियै।
भयौ कोप भार, थार डारि, जा पुकार करीं, भरी न अनीति जात सेवा यह लीजियै॥
बोलिकै सुनाई, अहो कहा मन आई? तब बोलिकै बताई अजू बात कान कीजियै।
पहिले जु खाय बनमांझ उठि जाय, पाछे पाऊँ कहाँ धाय सुनि मति रस भीजियै॥ ४१४॥

भगवान्‌को जो जिस भावसे चाहते हैं, वे उसी भावसे उनके वशमें हो जाते हैं। एक समय गोविन्ददासको श्रीनाथजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे श्यामढाकपर बैठकर वंशी बजा रहे थे। इधर मन्दिरमें उत्थापनका समय हो गया था। गोसाईंजी स्नान करके मन्दिरमें पहुँच गये थे। श्रीनाथजी उतावलीमें वृक्षसे कूद पड़े, उनका बागा वृक्षमें उलझकर फट गया। श्रीनाथजीका पट खुलनेपर गोसाईं विट्ठलनाथने देखा कि उनका बागा फटा हुआ है। बादमें गोविन्ददासने रहस्योद्घाटन किया, गोसाईंजीको साथ ले जाकर वृक्षपर लटका हुआ चीर दिखलाया। गोविन्ददासका सखाभाव सर्वतः सिद्ध था।

कभी-कभी कीर्तन-गानके समय श्रीनाथजी स्वयं उपस्थित रहते थे, एक बार इन्हें श्रीनाथजीने राधारानीसहित प्रत्यक्ष दर्शन दिये। श्रीनाथजी स्वयं पद गा रहे थे और श्रीराधाजी ताल दे रही थीं। गोविन्ददासने श्रीगोसाईंजीसे इस घटनाका स्पष्ट वर्णन किया।

श्रीनाथजी उनसे प्रकटरूपसे बात करते थे, पर देखनेवालोंकी समझमें कुछ भी नहीं आता था। एक समय शृंगार-दर्शनमें श्रीनाथजीकी पाग ठीकरूपसे नहीं बाँधी गयी थी, गोविन्ददासने कहा—'प्रभो! जरा अपनी पाग सँभाल लीजिये।' श्रीठाकुरजीने कहा—'गोविन्द! तू बहुत अच्छी पाग बाँधता है, आज तू ही मेरी पाग सँभाल दे।' तब गोविन्ददासजीने मन्दिरमें प्रवेश करके उनकी पाग ठीक की। इसपर मन्दिरके भितरियाने गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीसे शिकायत की कि महाराज! गोविन्ददासने मन्दिरमें प्रविष्ट होकर श्रीनाथजीको छू लिया। इसपर श्रीगोसाईंजीने हँसते हुए कहा—'अरे! श्रीनाथजी तो गोविन्दके साथ नित्य खेलते ही रहते हैं। उनके छूनेसे वे अपवित्र थोड़े ही हो जाते हैं।' भक्तोंके चरित्रकी विलक्षणताका पता भगवान्‌के भक्तोंको ही लगता है। प्रेमराज्यमें कुल, जाति, गुण, सौन्दर्य, ज्ञान आदिका महत्त्व नहीं होता, वहाँ तो प्रियतमको रिझानेके लिये सिर्फ प्रेमकी ही आवश्यकता होती है। श्रीगोविन्ददासजी अपने एक पदमें कहते हैं—

प्रीतम प्रीति ही ते पैये।
जदपि रूप गुण सील सुघरता इन बातन न रिझैये॥
सत कुल जनम करम सब लच्छन वेद पुरान पढ़ैये।
गोविन्द प्रभु गुन रूप सुधा बिनु रसना कहाँ नचैये॥

भगवान्‌को वर्ण-जातिसे भी अधिक भाव प्रिय होता है। वे भाव-भक्तिपर अधिक रीझते हैं। कहते हैं कि कान्हा नामका एक भंगी-बालक था। उसका श्रीनाथजीके प्रति सख्यभाव था। वह नित्यप्रति श्रीनाथजीके मन्दिरके सामने झाड़ू लगाने आता था।

श्रीनाथजी जैसे गोविन्ददासजीके साथ खेलते थे, वैसे ही कान्हाके साथ भी विविध क्रीड़ाएँ करते थे। एक दिन श्रीनाथजी और श्रीगोविन्ददासजी कान्हाके साथ खेल रहे थे। खेलमें कान्हा हार गया तो श्रीनाथजीने उसे घोड़ा बनाया और उसकी पीठपर चढ़े। जब खेल खत्म हो गया और श्रीनाथजी मन्दिरमें जाने लगे तो श्रीगोविन्ददासजीने कहा—'जै, जै, श्रीगुसाईंजी तो मन्दिरमें बड़ा आचार-विचार करते हैं और आप अब भंगीको छूकर मन्दिरमें प्रवेश करेंगे, राजभोग आरोगेंगे, इस प्रकार आप मर्यादा मिटाकर भ्रष्टाचार फैलायेंगे। यह उचित नहीं है। मुझसे तो यह अनीति सही नहीं जा सकती। मैं तो श्रीगुसाईंजीसे इसकी शिकायत करूँगा।' श्रीठाकुरजीने कहा—'भैया! ऐसा नहीं करना। मुझे जी-भरकर अपने सखाओंके साथ खेलने दो। मैं तुम्हारी हा-हा खाता हूँ' परंतु श्रीगोविन्ददासजीने एक नहीं मानी। इनका कहना था कि 'आप पहले समीपस्थ गोविन्दकुण्डमें स्नान करके तब मन्दिरमें प्रवेश करिये।' श्रीठाकुरजीने कहा—'भैया! ठण्डके दिन हैं, स्नान करनेका मन नहीं हो रहा है। मैं ऐसे आचार-विचारसे बाज आया।' तब श्रीगोविन्ददासजीने कहा—'अच्छा, स्नान नहीं करना चाहते हैं तो कम-से-कम कुण्डपर चलकर मन्त्र पढ़कर मार्जन तो कर लीजिये।' श्रीठाकुरजीने श्रीगोविन्ददासजीका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कुण्डपर आकर मार्जन-आचमन करने लगे। तबतक औचक ही गोविन्दने धक्का देकर श्रीनाथजीको कुण्डमें गिरा दिया। संग-संग अपनेको भी गिरा दिया। श्रीनाथजीको तैरनेका अभ्यास कुछ कम था। अतः वह कुण्डमें गोता खाने लगे। तब श्रीगोविन्ददासजीने ही बाँह पकड़कर उन्हें निकाला भी। तत्पश्चात् ताली बजाते हुए गोविन्द अपने घरको भाग गये और श्रीनाथजी भीगे वस्त्र मन्दिरमें आकर विराजे। जब श्रीगुसाईंजी सेवामें गये और श्रीठाकुरजीको भीगे वस्त्र पाये तो पूछे—जै-जै, यह वस्त्र कैसे भीगे हैं? श्रीनाथजीने मुँह बिचकाकर कहा—'गोविन्दने धक्का देकर मुझे कुण्डमें गिरा दिया था, अतः मेरे सभी वस्त्र भीग गये।' श्रीगुसाईंजीने तुरंत गोविन्ददासजीको बुलाया और बड़ी फटकार लगायी कि कहीं ऐसा खेल खेला जाता है, जिसमें जान जोखम उपस्थित हो, रार-तकरार बढ़े।

श्रीगोविन्ददासजीने हँसकर कहा—'गुसाईंजी! आपके श्रीलालजीने (श्रीठाकुरजीने) भंगीके बेटेको घोड़ा बनाकर उसपर सवारी की थी। हमने कहा कि 'स्नान करके मन्दिरमें चलो, परंतु ये नहीं माने, तब मैं जैसे-तैसे इन्हें स्नान कराकर मन्दिरमें ले आया। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो आपका सब आचार-विचार समाप्त हो जाता। यह सुनकर श्रीगुसाईंजीका हृदय भर आया और कहने लगे कि धन्य है गोविन्द सखा, जिनके साथ खेले बिना श्रीठाकुरजीका मन ही नहीं मानता।'

गोविन्दस्वामीने गोवर्धनमें एक कन्दराके निकट संवत् १६४२ वि० में लीला-प्रवेश किया। उन्होंने आजीवन श्रीराधा-कृष्णकी शृंगार-लीलाके पद गाये, भगवान्‌को अपनी संगीत और काव्य-कलासे रिझाया।

श्रीविद्यापतिजी

महाकवि विद्यापति भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीके रूप-लावण्य और भक्तिरससे ओत-प्रोत शृंगारमाधुर्यके कुशल मर्मज्ञ और गायक थे। वे बंगालके प्रसिद्ध वैष्णव कवि चण्डीदासके समकालीन थे। दोनों एक-दूसरेके कविता-प्रेम और श्रीकृष्ण-भक्तिसे प्रभावित थे और परम पवित्र भगवती भागीरथीके तटपर दोनोंका एक समय मिलन भी हुआ था।

मैथिलकोकिल विद्यापतिने विक्रमकी पन्द्रहवीं सदीमें विसपी ग्राममें जन्म लिया था। उनका परिवार बिहारके तत्कालीन शासक 'हिन्दूपति' महाराज शिवसिंहके पूर्वजोंका कृपापात्र था और विद्यापतिने तो शिवसिंह और उनकी पटरानी महारानी लक्ष्मी (लखिमा)-के आश्रयमें मिथिलाको अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति-सुधासे वृन्दावन बना दिया। बिहार ही नहीं, उत्तरापथकी गली-गलीमें, उपवन और सरोवर-तटोंपर काव्यरसिक उनकी पदावलीका रसास्वादन करके प्रमत्त हो उठे। अभिनव कृष्ण महाप्रभु चैतन्यदेव और उनकी भक्तमण्डलीके लिये तो कविकण्ठहार विद्यापतिके पद श्रीराधाकृष्णकी मधुर भक्तिके उद्दीपन ही बन गये। महाप्रभु उनके विरह और प्रेमसम्बन्धी पदोंको सुनते जाते थे और साथ-ही-साथ नयनोंसे अनवरत अश्रुकी धारा बहाते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली कवि ही नहीं, संस्कृतके अच्छे विद्वान् थे। श्रीमद्भागवतमें उनकी बड़ी श्रद्धा थी, उन्होंने पाठके लिये स्वयं अपने हाथसे उसकी एक प्रतिलिपि की थी। भगवती गंगा और श्रीदुर्गामें भी उनकी बड़ी भक्ति थी। उन्होंने 'गङ्गावाक्यावली' और 'दुर्गाभक्तितरङ्गिणी' की रचना की है। उन्होंने हिमाचलनन्दिनी भगवती पार्वतीका अपने पदोंमें कहीं-कहीं सादर स्मरण किया है। शिव और पार्वतीमें उनकी अटल निष्ठा थी। उन्होंने एक स्थलपर कहा है—

'हिमगिरि कुँवरि चरन हिरदय धरि कबि विद्यापति भाखे।'

भगवान् शिवकी स्तुतिमें उन्होंने बहुत-से पद लिखे हैं, बिहारमें इन 'नचारियों' को लोग बड़े उत्साहसे गाया करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि विद्यापतिकी शिव-भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् भोलेनाथने अपना 'उगना' नाम रखकर सेवकके वेषमें उनको धन्य किया था। वह प्रसंग इस प्रकार है—एक बार श्रीविद्यापतिजीके मनमें एक सुयोग्य सेवककी अभिलाषा हुई। बस, उसी क्षण एक गौरवर्ण व्यक्ति इनके पास आया और अपनेको नौकर रख लेनेकी प्रार्थना करने लगा। उसके सुन्दर स्वरूप और मधुर वचनोंने इनके मनको आकृष्ट कर लिया। अतः इन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। उसका नाम उगना था। उगना इनकी समस्त सेवाएँ करता। एक दिन ये उगनाको साथ लिये कहीं जा रहे थे। मार्गमें इन्हें प्यास लगी। तब उगनाको जल लानेको कहा। उगना थोड़ी ही दूर जाकर वृक्षोंके झुरमुटमेंसे लोटा भर लाया। इन्होंने जलपान किया। तो गंगाजलका-सा स्वाद आया। चकित हो गये कि यहाँ गंगाजल कहाँ? पूछा तो उगनाने कहा—'यहीं पाससे ही लाया हूँ।' उगनाके उत्तरसे उन्हें संतोष नहीं हुआ। श्रीविद्यापतिने नेत्र बन्दकर किंचित् ध्यान किया। जब नेत्र खोला तो इन्हें उगनाकी जगह भगवान् शिवके दर्शन हुए। ये भगवान् शिवके चरणोंमें लोट-पोट हो गये। श्रीशिवजीकी जटाओंसे गंगाकी धारा बह रही थी। श्रीविद्यापतिजी समझ गये कि सचमुच वह जल किसी अन्य कूप-बावलीका न होकर साक्षात् गंगाजीका ही था। श्रीशिवजीने कहा—'विद्यापतिजी! मुझे आपके साथ रहनेमें बड़ा सुख मिलता है, अतः मैं ही उगनारूपसे आपकी सेवामें रह रहा था। अभी भी मैं आपके ही साथ रहना चाहता हूँ, परंतु देखना यह रहस्य किसीसे प्रकट न करना।' इतना कहकर भगवान् शिवजी पुनः उगनारूपमें हो गये,

परंतु अब श्रीविद्यापतिजी और उगनामें पहले-जैसा स्वामी-सेवकका भाव नहीं रहा। अब तो यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कौन स्वामी है और कौन सेवक? सेवकके साथ इस प्रकारका बर्ताव श्रीविद्यापतिजीकी पत्नीको अच्छा नहीं लगता। अत: वह उगनासे चिढ़ने लगीं। एक दिन तो किसी कार्यमें किंचित् देर हो जानेपर वे उगनाको जलती हुई लकड़ी लेकर मारने दौड़ीं। यह देखकर श्रीविद्यापतिजीसे रहा नहीं गया। वे बोल ही पड़े—'अरे अधमे! तू मेरे इष्टदेव देवदेव महादेवको मारने दौड़ रही है।' पत्नी तो जहाँकी तहाँ रुक गयी; परंतु उगना अन्तर्धान हो गया। विद्यापतिजीको उगनाका वियोग व्याप गया। उस समय इन्होंने यह पद गाया—

उगना रे मोर कतए गेला।
कते गेला सिवकी दहु भेला।
भांग नहिं बटुआ रूसि वैसलाह।
जोहि हेरि आनदेल हँसि उठिलाह॥
जे मोर कहता उगना उ देस।
ताहि देब ओकर कंगना बेस।
नन्दन बनमें भेंटल महेस॥
गौरि मन हरषित मेटल कलेस।
विद्यापति भन उगना सो काज।
नहिं हितकर मोर त्रिभुवन राज॥

यह कहना सरल नहीं है कि विद्यापति शैव थे या वैष्णव; पर उनकी सरस पदावलीसे उनकी श्रीकृष्ण और श्रीराधाके प्रति भक्ति और दृढ़ आस्था प्रकट होती है। उन्होंने भक्तिभावसे सने प्रेम, विरह, मिलन, अभिसार और मानसम्बन्धी अनेक सरस पदोंकी रचना करके अपनी श्रीकृष्णभक्तिकी उज्ज्वल पताका फहरायी है। श्रीकृष्ण ही उनके आराध्य देव थे। उनके पदोंमें भक्तिसुलभ सरलता और माधुर्यका सुन्दर समन्वय मिलता है। श्रृंगार और भक्तिका इतना मधुर समावेश अन्यत्र कठिनतासे हुआ है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती महाकवि गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवका पूर्णरूपसे अनुगमन करके अपने 'अभिनव जयदेव' नामकी सत्यता चरितार्थ की। कविशेखर विद्यापतिने अपने उपास्यका निम्नलिखित पदमें जो ध्यान किया है, उससे उनके रँगीले हृदयकी रसीली भक्तिका पता चलता है—

नन्दक नंदन कदम्बक तरु तरे धिरे-धीरे मुरली बजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव॥
सामरी तोरा लगि अनुखने बिकल मुरारि।
जमुना के तीरे उपवन उदबेगल फिरि-फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बिके अबइते जाइते जनि-जनि पुछ बनमारि।
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनहु किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति बंदहु नंदकिसोरा॥

विद्यापति रसिक भक्त, महाकवि और प्रेमी थे। उनको गये पाँच सौ सालसे अधिक समय हो गया; तो भी श्रीकृष्णभक्तिकी सरसताकी साहित्य-जगत्में महिमा मैथिलकोकिलकी काव्यवाणीमें प्रकट होकर उत्तरोत्तर सम्मानित होती जा रही है।

श्रीब्रह्मदासजी

श्रीब्रह्मदासजी श्रीराधा-कृष्ण युगलसरकारके अनन्य भक्त थे। आप अपनी कवितामें सदैव श्रीकृष्ण-लीलाका ही गान करते थे। जन-समाजमें आपकी कविताका बड़ा आदर था। आपका परमोत्कर्ष एक प्राकृत कविसे सहा नहीं गया। उसने आकर आपसे व्यर्थका विवाद ठाना कि यदि काव्यकी कसौटीपर कसा जाय तो मेरी कविता किसी भी दृष्टिसे आपकी कवितासे हीन नहीं है। यदि कोई त्रुटि मेरी कवितामें हो तो आप ही बतलायें। श्रीब्रह्मदासजीने कहा—काव्यकी दृष्टिसे कविता मेरी श्रेष्ठ है या आपकी, यह तो मैं नहीं कह सकता, परंतु इतना मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि मेरी कविताका वर्ण्य-विषय आपकी कवितासे अनन्तगुणा श्रेष्ठ है; क्योंकि मैंने अपनी कवितामें सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णकी शाश्वत लीलाओंका गान किया है और तुम्हारी कवितामें मरणधर्मा, क्षणभंगुर संसारी लोगोंका यश गाया गया है। शाश्वत पुरुषके गुणगानसे मेरी कविता भी शाश्वत है और नाशवान् लोगोंके गुणगानसे तुम्हारी कविता भी नाशवान् है। यदि तुम्हें इस बातका विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लो। तुम और हम दोनों अपनी-अपनी रचनाएँ कागजपर लिखकर अग्निमें डाल दें। जिसकी रचना शाश्वत होगी, वह नहीं जलेगी; जिसकी नाशवान् होगी, वह भस्मसात् हो जायगी। प्राकृत कवि आपके इस कथनपर सहमत हो गया। उसे विश्वास था कि अग्निमें डालनेपर तो मेरी भी कविताएँ जल जायँगी और इनकी भी। भला, कहीं अग्निमें कागज बिना जले रह सकता है? फिर तो दोनों एक-से माने जायेंगे। निश्चय होनेपर दोनों दिव्य-प्राकृत कवियोंने अपनी-अपनी रचनाएँ अग्निदेवताको समर्पित कीं। हजारों लोगोंने देखा कि उस प्राकृत कविकी रचनाएँ तो अग्निकी लपटमें स्वाहा हो गयीं और ब्रह्मदासजीकी रचनाओंपर आँच भी नहीं आयी, वे तो ज्यों-की-त्यों बनी रहीं, बल्कि और भी अधिक चमक उठीं। यह चमत्कार देखकर वह प्राकृत कवि हार मान गया और श्रीब्रह्मदासजीके शरणागत होकर स्वयं भी श्रीकृष्ण-लीला-गुणका ही गान करने लगा।

श्रीकेशवाचार्यजी

आपके पिताका नाम श्रीमोहनमिश्र एवं माताका नाम भागवती देवी था। ये सनाढ्य ब्राह्मण परम भागवत, विष्णुस्वामी-सम्प्रदायानुयायी गोपाचल (ग्वालियर)-के निकट एक ग्रामके निवासी थे। घरमें विराजमान श्रीठाकुरजीकी सेवामें ऐसे तल्लीन रहते थे कि इन्हें संसारी सुख-दुःखोंका भान ही नहीं होता था। यद्यपि घर ऋद्धि-सिद्धियोंसे भरा था, फिर भी दम्पती प्रेमधनके धनी थे। सेवारत दम्पतीको पचास-पचपन वर्षकी आयु व्यतीत करनेके पश्चात् भगवत्प्रेरणासे संतानकी अभिलाषा हुई। फलस्वरूप महर्षि कश्यपकी आज्ञानुसार माता अदितिने जैसे पयोव्रत करके पुत्ररूपमें श्रीवामनभगवान्‌को पाया, उसी प्रकार इन ब्राह्मण-दम्पतीने भी सविधि पयोव्रतका अनुष्ठान किया। व्रतकी समाप्ति होनेपर स्वप्नमें भगवान्‌ने स्वयं पुत्ररूपसे प्रकट होनेका संकेत किया।

पयोव्रतके दूसरे ही वर्ष कार्तिक सुदी द्वादशीको श्रीमोहनमिश्रके घर पुत्रका जन्म हुआ। श्रीकश्यपजीने श्रीमद्भागवतमें पयोव्रतको **'व्रतं केशवतोषणम्'** कहा है। पयोव्रतसे ही संतुष्ट होकर स्वयं केशवभगवान् श्रीभागवतीदेवीकी कोखसे प्रादुर्भूत हुए हैं। अतः बालकका नाम केशव ही रखा गया। बालक केशव अपनी अलौकिक बाल-लीलाओंसे माता-पिताको आनन्दित करने लगा। एक दिन श्रीमिश्रजीने भगवान्‌का भोग लगाकर ध्यान करते हुए कहा—**'वासुदेवप्रसादान्नं सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः।'** अर्थात् हे वैष्णवो! भगवत्-प्रसाद ग्रहण कीजिये। आँख खुली तो देखा कि बालक केशव प्रसादरसका स्वाद ले रहा है। बालकके यथासमय यथाविधि अन्नप्राशन, मुण्डन, उपवीत आदि संस्कार सानन्द सम्पन्न हुए। श्रीकेशवने अपने विद्वान्

पितासे ही समस्त वेद, शास्त्र, पुराणेतिहासादिका अध्ययन किया। तत्पश्चात् ***'साधन साध्य सत्रह पुराण फलरूपी श्रीभागवत'*** विचारकर श्रीकेशवजीने अपनी अनिच्छा प्रकट की। पिता श्रीमोहनमिश्रजी बालकके संसारसे वैराग्य एवं श्रीप्रभुचरणोंमें अनुरागसे हृदयसे तो परम सन्तुष्ट थे। फिर भी पुत्रकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये उन्होंने कहा—'बेटा केशव! तीनों ऋणोंसे मुक्त हुए बिना बचपनमें ही वैराग्य उचित नहीं है।' तब श्रीकेशवजीने **'कौमार आचरेत् प्राज्ञः धर्मान् भागवतानिह।'** अर्थात् कुमारावस्थासे ही वैष्णव धर्मोंका आचरण करना चाहिये—इस प्रह्लाद-वाक्यका और **'देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥'** अर्थात् भगवान्की शरणमें जानेवाला किसीका भी ऋणी नहीं रह जाता है। श्रीभागवतजीमें आये नवयोगीश्वरोंमेंसे श्रीकरभाजनजीके इस वाक्यका प्रमाण देकर पिताको निरुत्तर कर दिया। अविचल प्रेम देखकर पिता-माताने पुत्रको आज्ञाके साथ भगवत्प्राप्तिका आशीर्वाद प्रदान किया।

ये पिता-माताको प्रणामकर श्रीवृन्दावनके लिये चल पड़े। मार्गमें ये विचार कर ही रहे थे कि मुझ साधनहीनको भगवान् कैसे मिलेंगे? इतनेमें ही एक यात्रीने दूसरेको पुकारकर कहा कि 'तुम शीघ्र जाओ, तुम्हें तुम्हारा मित्र बुला रहा है।' इस भगवत् प्रेरित वाक्यसे इन्हें विश्वास हो गया कि मुझे अवश्य श्रीप्रभु मिलेंगे और शीघ्र मिलेंगे। फिर तो मनमें श्रीप्रभु-मिलन-सम्बन्धी अनेक मनोरथ उठने लगे। श्रीवृन्दावन पहुँचनेपर इनका ऐसा प्रेम उमड़ा कि प्रभु-दर्शनके बिना इनका एक-एक क्षण युगके समान बीतने लगा। आँखोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह होने लगा। अहर्निश प्यारेके विरहमें बेचैन रहनेसे खान-पान एकदम छूट गया। शरीर-अस्थिपंजरमात्र शेष रह गया। दर्शनकी लालसासे प्राण देहमें अटक रहे थे। क्षण-क्षणमें मूर्च्छा आने लगी। उधर भक्तका विरह भगवान्को भी असह्य होने लगा। तब श्रीप्रभुकी प्रेरणासे गहवर-निवासी श्रीज्ञानदेवजीने आकर इन्हें मूर्च्छासे सचेत किया और मन्त्र-दीक्षा देकर श्रीनिकुंजबिहारी प्रिया-प्रियतमका दर्शन कराया। फिर साम्प्रदायिक रहस्य एवं परम्परा बताकर श्रीगोवर्धनकी तलहटीमें निवास करके भजन करनेकी आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि श्रीहरिदेवजी तुमपर प्रसन्न होकर प्रकट होंगे, जिससे जीवोंका कल्याण होगा तथा श्रीहरिदेवजीके साथ तुम्हारे भी सुयशका विस्तार होगा।

श्रीगुरुदेवजीकी आज्ञा शिरोधार्यकर श्रीकेशवाचार्यजीने श्रीगोवर्धनजीका आश्रय लिया। श्रीगिरिराज गोवर्धनजीमें आपका ऐसा अनुराग हुआ कि आपने स्वरचित 'गोवर्धनशतक' में लिखा है कि **'गोवर्धनात्किञ्चिदहं न जाने।'** अर्थात् श्रीगोवर्धनजीसे परे हम और किसीको नहीं जानते हैं। इस निष्ठाके फलस्वरूप श्रीश्यामसुन्दर नित्य निकट रहते, लीला दिखाते और रसमय वार्तालाप करते। एक दिन भगवान्ने कहा कि 'मेरा एक श्रीविग्रह बिछुआ कुण्डके निकट खेतकी मेड़में है, उसे प्रकट करो।' इन्होंने हाथ-जोड़कर कहा—'प्रभो! उस विग्रहके साथ श्रीजी नहीं हैं। मेरी युगल उपासना है तथा मैं निष्किंचन हूँ। कभी शाक-पात और कभी व्रजवासियोंके घरसे प्राप्त चुटकीमात्र चूनसे ही निर्वाह कर लेता हूँ। अतः आप ऐसा कीजिये जिसमें मेरे हृदयका भाव भी सुरक्षित रहे और आपकी सेवामें अपराध न हो।' तब श्रीप्रभुने समाधान करते हुए कहा कि केशव! मैं तुमसे आज उस गुप्त रहस्यको प्रकट करता हूँ, जिसे आजतक कोई नहीं जानता है। एक बार मैं श्रीजीके दर्शनोंको गया, परंतु दर्शन नहीं हुआ। तब मैंने इन्द्रके यज्ञको भंग कराया और श्रीगोवर्धनकी पूजा करवायी। इसपर इन्द्रने कुपित होकर वर्षा की। उससे व्रजकी रक्षाके लिये मैंने श्रीगोवर्धनको धारण किया। उस समय समस्त व्रजवासियोंके सहित श्रीजी भी वहाँ आ गयीं। इसी विग्रहसे सात दिनतक मैं श्रीजीका दर्शन करता रहा तथा उनके कृपाकटाक्षबलसे श्रीगोवर्धनको उठाये रहा। अतः मेरे इस श्रीहरिदेव श्रीविग्रहको श्रीजीसे रहित न मानकर श्रीजीके प्रेमसे ओत-

प्रोत समझो। हमारा यह श्रीविग्रह परम दयामय, शरणागतरक्षक एवं इष्टप्रपूरक है। तुम मेरे इस विग्रहको प्रकटकर सेवा करो। मेरे निमित्त किसीसे कुछ याचना मत करना। मेरी प्रेरणासे स्वयं कोई कुछ अर्पण कर दे तो उसे स्वीकार कर लिया करना।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर श्रीकेशवाचार्यजीने लोगोंको एकत्रित करके विछुवा कुण्डपर वह स्थान बताया, जहाँ श्रीविग्रह था। खोदनेपर परम सुन्दर मूर्ति दिखायी पड़ी। उसे देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोगोंके मनमें लालच हुआ कि इस विग्रहको मैं अपने घर ले जाऊँ। एकने कहा कि इस विग्रहको 'मैं अपने घर ले जाकर सेवा करूँगा।' तो दूसरेने कहा—'वाह! तुम कैसे ले जाओगे? यह तो मेरे खेतकी मेड़पर प्रकट हुए हैं अतः इन्हें मैं ले जाऊँगा।' तीसरेने कहा—'मैं जमींदार हूँ। इस नाते भूमिगर्भसे प्राप्त वस्तुपर मेरा पूर्ण अधिकार है। अतः मैं ले जाऊँगा।' जब इस प्रकार परस्पर विवाद होने लगा तब श्रीकेशवाचार्यजी दूर हट गये। किसी विचारवान् व्यक्तिने लोगोंको समझाते हुए कहा कि 'जिस सन्तने तुम्हें बुलाकर भेद बताया, उससे पूछकर ही कोई कार्य करो। अन्यथा तन-धन और यशकी हानि होगी।' यह सुनकर उसे फटकारते हुए लोगोंने कहा कि 'तुझको किसने पंच बनाया है? अपना भला चाहो तो चुप रहो।' वह बेचारा चुप हो गया। इतनेमें आकाशवाणी हुई कि 'अकेले ही इस श्रीविग्रहको जो कोई उठा ले जाय, वही सेवाका अधिकारी होगा।' लोग उठाने लगे, पर श्रीविग्रह टससे मस न हुआ। तब सबने श्रीकेशवाचार्यजीसे उठानेकी प्रार्थना की। प्रेममग्न श्रीआचार्यजीने जैसे ही स्पर्श किया कि भगवान् छातीसे आ लगे। निर्णय हो गया कि भगवान् तो इन्हींके लिये प्रकट हुए हैं। हम लोगोंका मोह व्यर्थ है। श्रीकेशवाचार्यजी श्रीहरिदेवजीको अपनी पर्णकुटीमें ले आये और पधराकर सात्त्विक भावसे सेवा करने लगे। व्रजवासी लोग बड़ी श्रद्धासे दर्शन करने आते। भक्तकी महिमा बढ़ानेके लिये एक दिन श्रीहरिदेवजीने खीर भोग आरोगनेकी इच्छा प्रकट की। तब श्रीकेशवाचार्यजीने प्रार्थना की कि 'प्रभो! मेरे पास तो खीरकी सामग्रीका अभाव है और मैं याचना किसीसे कर नहीं सकता।' तब श्रीहरिदेवजीने राजा भगवानदासको स्वप्न दिया। स्वप्नादेश पाकर राजा आये और दर्शनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। फिर तो उन्होंने श्रीहरिदेवजीका विशाल मन्दिर बनवाया और सेवाके निमित्त कई गाँव अर्पण कर दिये। अब दिन-प्रतिदिन श्रीहरिदेवजी और श्रीकेशवाचार्यजीका सुयश बढ़ने लगा। अनेकों लोग आकर आपके शिष्य हो गये।

एक दिन श्रीहरिदेवजीने श्रीकेशवाचार्यजीसे कहा कि 'मैं तुम्हें एक आज्ञा प्रदान करता हूँ। उसे तुम बिना उत्तर दिये स्वीकार कर लेना। देखो, एक ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथरूपसे मेरी सेवा करके संतानकी कामना की और प्रथम संतान मुझे ही अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की। मेरी आज्ञासे प्रथम उसके एक कन्या हुई, उसे अब वह मुझे ही अर्पण कर रहा है। मैंने उसे स्वप्न देकर आज्ञा दी है कि गोवर्धनमें श्रीकेशवाचार्यजीके रूपमें मैं ही विद्यमान हूँ, अतः अपनी कन्या श्रीकेशवाचार्यजीको ही अर्पण कर दो। अब वह आकर तुम्हें कन्यादान करेगा। उसे तुम स्वीकार कर लेना। इससे मुझे प्रसन्नता होगी।' श्रीकेशवाचार्यजीने कहा, 'प्रभो! वैसे तो पत्नी-परिग्रह एक बन्धन ही है, परंतु आपकी प्रसन्नताके लिये तो मैं कोटि-कोटि बन्धन स्वीकार कर सकता हूँ। आज यदि शेखीमें आकर मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन करूँ तो कल ही आपकी माया मुझे अपने पथसे गिरा सकती है।' भगवदादेशसे ब्राह्मणने आकर अपनी कन्या शुभ मुहूर्तमें प्रदान की। उसे श्रीआचार्यने स्वीकार किया। परम भगवद्भक्ता पत्नी पाकर श्रीकेशवाचार्यजीने परम संतोषका अनुभव किया। कुछ समय पश्चात् आपके श्रीपरशुराम एवं श्रीबालमुकुन्द नामके दो पुत्र हुए, जिनके साथ श्रीहरिदेवजी खेलते थे और सेवा तथा भोगमें उनसे इच्छित वस्तु लानेको कहते थे। कुछ दिन बाद आप अपने पुत्रों

एवं शिष्य-प्रशिष्योंको श्रीहरिदेवजीकी सेवा सौंपकर, उन्हें ज्ञान-भक्तिका उपदेश देकर, श्रीगोवर्धनवासकी आज्ञा देकर स्वयं महाभावमें मग्न हो गये। कभी-कभी श्रीराधा-राधा रटते हुए मूर्च्छित हो जाते, कभी श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको गाकर रोते, कभी विरहके पदोंका स्वयं उद्गार होता और शरीर स्तब्ध हो जाता। कभी राधाकुण्ड, कभी नारदकुण्ड, कभी उद्धवकुण्ड, कभी गोविन्दकुण्ड, कभी पूछरी आदि सात कोसके स्थलोंमें विचरते रहते। मूक, बधिर एवं उन्मत्तकी तरह दीखते। व्रजरजमें लोट-लोटकर परमानन्दका अनुभव करते। मान-अपमानमें समान रहते हुए निरन्तर श्रीहरि-चिन्तनमें तल्लीन रहते। इस प्रकार आपने अपनी पवित्रचर्यासे अनेक जीवोंका उद्धार किया एवं भक्तिका पथ प्रशस्त किया।

श्रीपूर्णसिंहजी

श्रीपूर्णसिंहजी परम सदाचारी, वीर एवं महान् भगवद्भक्त थे। श्रीठाकुरजी आपके इष्टदेव थे। ये आमेर-नरेश श्रीपृथ्वीराजजीके पुत्र थे। उनकी माताका नाम पदारथ देवी था (ये गांवड़ी गणेशर, जिला सीकर तँवराटीकी थीं)। पिताके आज्ञानुसार श्रीपूर्णसिंहजी कार्तिक सुदी ११ वि० संवत् १५८४ में आमेरकी गद्दीपर बैठे। आप छः साल दो माह तेईस दिन गद्दीपर रहे। अमरसरके शासक रायमल जो शेखाजीके पुत्र थे, इनपर हुमायूँ बादशाहके भाई हिन्दालने जब हमला किया तब नृपति पूर्णसिंहजी उनकी सहायता करने गये। प्रसिद्ध दुर्ग शिखरगढ़ जो कि त्रिवेणी अमरसरके समीप है, वहाँपर इन्होंने हिन्दालकी विशाल सेनासे भयंकर संग्राम किया। असंख्यों विधर्मियोंका संहारकर माघ सुदी ५ संवत् १५९० वि० में धर्मयुद्ध करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए। वीरभक्तोंके इतिहासमें आपकी कीर्ति अमर है। सूजा (सूरजमल) आपके ही सुपुत्र थे। कविहृदय, परम भागवत श्रीपूर्णसिंहजी नित्य नूतन पद रचकर अपने श्रीठाकुरजीको सुनाते। श्रीठाकुरजीको भी इनके पदोंको सुननमें बड़ा सुख मिलता। यदि कभी किसी कार्यविशेषकी व्यस्ततामें श्रीपूर्णसिंहजी पद नहीं सुना पाते तो श्रीठाकुरजी स्वप्नमें इनसे पद सुनानेका अनुरोध करते। दो-एक बार इस प्रकारका प्रसंग प्राप्त होनेपर इन्होंने पद सुनानेका दृढ़ नियम बना लिया था। बहुत समयतक नियम अक्षुण्ण रूपसे चलता रहा। परंतु एक बार किसी राज्यकार्यवश इन्हें पद सुनानेका ध्यान नहीं रहा। जब कार्यसे फुरसत मिली तो श्रीठाकुरजीका दर्शन करने मन्दिरमें गये। परंतु वहाँ इन्हें श्रीठाकुरजीका श्रीविग्रह ही नहीं दिखायी पड़ा। पुजारीसे पूछा—श्रीठाकुरजीकी प्रतिमा कहाँ गयी? पुजारीने कहा—'प्रतिमा तो सिंहासनपर ही विराजमान है।' श्रीपूर्णसिंहजीकी समझमें नहीं आ रहा था कि आखिर मुझे क्यों नहीं दर्शन हो रहा है! बहुत विचार करनेके बाद याद आया कि मैंने श्रीठाकुरजीको आज पद नहीं सुनाया। फिर तत्काल पद सुनाने लगे तो श्रीठाकुरजी भी मन्द-मन्द मुसकराते हुए इन्हें दर्शन देने लगे।

श्रीमथुरामण्डलके भक्त

रघुनाथ गोपीनाथ रामभद्र दासूस्वामी।
गुँजामालि चित उतम बिठल मरहठ निहकामी॥
जदुनंदन रघुनाथ रामानँद गोबिंद मुरली सोती।
हरिदास मिश्र भगवान मुकुँद केसव दंडौती॥
चतुर्भुज चरित बिष्णुदास बेनी पद मो सिर धरौ।
जे बसे बसत मथुरा मँडल (ते) दयादृष्टि मो पर करौ॥ १०३॥

जो भक्तजन पहले श्रीमथुरामण्डल (चौरासी कोस)-में निवास करते थे एवं जो अब वर्तमानमें निवास कर रहे हैं, वे मेरे ऊपर दयाकी दृष्टि रखें। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—श्रीरघुनाथजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीरामभद्रजी, श्रीदासूस्वामीजी, श्रीगुंजामालीजी, श्रीचितउत्तमजी, श्रीबीठलजी, परम निष्काम श्रीमरहठजी, श्रीयदुनन्दनजी, श्रीरघुनाथजी, श्रीरामानन्दजी, श्रीगोविन्दजी, श्रीमुरली श्रोत्रियजी, श्रीहरिदासमिश्रजी, श्रीभगवान्जी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीदण्डौती केशवजी, श्रीचतुर्भुजजी, श्रीचरित्रजी, श्रीविष्णुदासजी, श्रीबेणीजी आदि। श्रीनाभाजी इन भक्तोंसे प्रार्थना करते हैं कि हे भक्तजनो! आपलोग अपना पद-कमल मेरे सिरपर रख दें॥ १०३॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीगुंजामालीजी और उनकी पुत्रवधू

श्रीगुंजामालीजी नामके एक सन्त हो गये हैं, ये गुंजाकी माला प्रभुको पहनाते तथा स्वयं पहनते थे। अत: इनका गुंजामाली नाम ही पड़ गया। ये पहले लाहौरमें निवास करते थे। इनकी पुत्रवधू विधवा हो गयी थी। एक दिन उसे बुलाकर इन्होंने कहा—'देखो, यह तुम्हारे पतिका घर है और धन-माल है, इसे लो तथा श्रीगोपालजीको लो। अब तो श्रीगोपालजी ही तुम्हारे पति हैं।' परंतु इनकी पुत्रवधू तो बार-बार यही माँगती कि हमें श्रीप्रभुकी सेवा ही प्रदान कीजिये।

श्रीगुंजामालीजीने पुत्रवधूकी निष्ठा देखकर उसे श्रीगोपालजीकी सेवा प्रदान की और घर तथा धन अपनी पत्नीको दिया एवं स्वयं आकर श्रीवृन्दावनमें रहने लगे।

जहाँपर श्रीगुंजामालीजीकी पुत्रवधूके श्रीठाकुरजी श्रीगोपालजी विराजते, वहाँ पास-पड़ोसके और लोगोंके बालक खेलते। वे परस्पर एक-दूसरेपर ईंट, धूल, मिट्टी आदि डालते। ठाकुरजी भी बालकोंके साथ खेलते थे। एक दिन बालकोंने श्रीठाकुरजीपर भी धूल डाल दी। तब वह बालकोंपर बहुत नाराज हुई और उसने उन्हें वहाँसे भगा दिया। इसके बाद उसने श्रीठाकुरजीके लिये भोग रखा। परंतु श्रीठाकुरजीने भोग नहीं आरोगा। जब इसने पूछा कि 'जै जै, आप भोग क्यों नहीं आरोग रहे हैं' तब श्रीठाकुरजीने कहा—'जब बालक आयेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी और भोग आरोगूँगा।' तब उसने प्रणयकोप करके कहा—'अभी खा लो, प्रात:काल खूब अच्छी तरह आपके ऊपर धूल डाल दूँगी और उन बालकोंसे भी डलवा दूँगी।' इतनेपर भी जब नहीं पाये तो जैसे-तैसे उन बालकोंको बुला लायी, तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न हुए और भोग पाये।

श्रीप्रियादासजीने गुंजामालीजीकी पुत्रवधूके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

कही नाभा स्वामी आप गायौं मैं प्रताप सन्त बसे व्रज बसैं सो तौ महिमा अपार है।
भये गुंजामाली गुंजाहार धारि नाम पर्‌यौ कर्‌यौ बास लाहौर मैं आगे सुनौ सार है॥
सुत बधू विधवा सों बोलिकै सुनायौ लेहु धन पति गेह श्रीगोपाल भरतार है।
देवौ प्रभु सेवा माँगै नारि बार-बार यहै डारै सब वारि यापै गनै जगछार है॥ ४१५॥
दई सेवा वाहि और घर धन तिया दियो लियौ व्रजवास वाकी प्रीति सुनि लीजियै।
ठाकुर विराजैं तहाँ खेलैं सुत औरनिके डारैं ईंटा खोहा पर्‌यौ प्रभु पर खीझियै॥
दिये वे विडारि धर्‌यौ भोग पै न खात हरि पूछी कही वेई आवैं तब ही तौ जीजियै।
कह्यौ रिस भरि धूरि नीकी भोर डारै भरि खावौ अब हा हा करी पायौ ल्याई रीझियै॥ ४१६॥

श्रीकेशवजी दण्डौती

व्रजमण्डलके भक्तजनोंमें श्रीकेशवजी दण्डौतीका नाम अग्रगण्य है। आप हमेशा श्रीगोवर्धनजीकी दण्डवती परिक्रमा करते रहते थे, अत: आपके नामके साथ दण्डवतीकी छाप लग गयी थी। एक बार आप

श्रीगोवर्धनजीकी दण्डवती परिक्रमा लगा रहे थे। रात्रि हो गयी थी। आप अपनी मस्तीमें भगवान्का नाम-गुण-कीर्तन करते हुए परिक्रमा कर रहे थे। उसी समय श्रीठाकुरजी एक हट्टे-कट्टे साधुके रूपमें आकर इनसे बोले—'मैं भी आपके साथ कीर्तन करते हुए परिक्रमा करूँगा।' श्रीकेशवजीने स्वीकृति दे दी। परंतु जब ये दण्डवत् करने लगे तो साधुरूपधारी भगवान्ने इन्हें आगे सरका दिया। यह देखकर श्रीकेशवजी नाराज हुए और बोले—'तू कौन है? कहाँसे आया है? तू मेरी परिक्रमा खण्डित कर रहा है। तेरी बुद्धिमें अधर्म समाया हुआ है।' साधुरूपधारी भगवान् बोले—'अधर्म तो आप स्वयं करते हैं और उल्टे दोष मुझे लगाते हैं? अरे! आपको मालूम है कि पृथ्वीको भूधर (विष्णु)-की पत्नी कहते हैं और आप रात्रिके समय परस्त्रीका आलिंगन करते हैं, यह कितना बड़ा अधर्म है?' श्रीकेशवजीने कहा—'पृथ्वी हमारी माता है। अतः उनकी गोदमें विचरनेसे हमें कोई दोष नहीं है।' यह मुँहतोड़ उत्तर सुनकर साधुरूपधारी भगवान् मुसकराने लगे और प्रसन्न होकर उन्होंने निजस्वरूपका दर्शन कराया।

श्रीचतुर्भुजदासजी

श्रीचतुर्भुजदासजीका जीवनचरित्र आजीवन चमत्कारों और अलौकिक घटनाओंसे सम्पन्न स्वीकार किया जाता है। उनका जन्म सं० १५७५ वि० में जमुनावतो ग्राममें हुआ था। वे पुष्टिमार्गके महान् भगवद्भक्त महात्मा कुम्भनदासजीके सबसे छोटे पुत्र थे। कुम्भनदासजीने बाल्यावस्थासे ही उनके लिये भक्तोंका सम्पर्क सुलभ कर दिया था। वे उनके साथ श्रीनाथजीके मन्दिरमें दर्शन करने भी जाया करते थे। पारिवारिक वातावरणका उनके चरित्र-विकासपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। कुम्भनदासके सत्प्रयत्नसे गोसाईं विट्ठलनाथजीने चतुर्भुजदासको जन्मके इकतालीस दिनोंके बाद ही ब्रह्म-सम्बन्ध दे दिया था। वे बाल्यावस्थासे ही पिताकी देखा-देखी पद-रचना करने लगे थे, घरपर अनासक्तिपूर्वक रहकर खेती-बारीका भी काम सँभालते थे। श्रीनाथजीकी सेवामें उनका मन बहुत लगता था। बाल्यावस्थासे ही भगवान्की अन्तरंग लीलाओंकी उन्हें अनुभूति होने लगी थी, उन्हींके अनुरूप वे पद-रचना किया करते थे। उनकी काव्य और संगीतकी निपुणतासे प्रसन्न होकर श्रीविट्ठलनाथजीने उनको अष्टछापमें सम्मिलित कर लिया था। वृद्ध पिताके साथ अष्टछापके कवियोंमें एक प्रमुख स्थान प्राप्त करना उनकी दृढ़ भगवद्भक्ति, कवित्वशक्ति और विरक्तिका परिचायक है।

ब्रह्म-सम्बन्धसे गौरवान्वित होनेके बाद वे अपने पिताके साथ जमुनावतोमें ही रहा करते थे। नित्य उनके साथ श्रीनाथजीकी सेवा और कीर्तन तथा दर्शनके लिये गोवर्धन आया करते थे। कभी-कभी गोकुलमें नवनीतप्रियके दर्शनके लिये भी जाते थे, पर श्रीनाथजीका विरह उनके लिये असह्य हो जाया करता था।

श्रीनाथजीमें उनकी भक्ति सखाभावकी थी। भगवान् उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर साथमें खेला करते थे। श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें आपको श्रीनाथजीके नित्य सखा 'विशाल' का अवतार माना जाता है। भक्तोंकी इच्छापूर्तिके लिये ही भगवान् अभिव्यक्त होते हैं। श्रीविट्ठलनाथजी महाराजकी कृपासे चतुर्भुजदासको प्रकट और अप्रकट लीलाका अनुभव होने लगा। एक समय श्रीगोसाईंजी भगवान्का शृंगार कर रहे थे, दर्पण दिखला रहे थे, चतुर्भुजदासजी रूप-माधुरीका आस्वादन कर रहे थे। उनके अधरोंकी भारती मुसकरा उठी—

'सुभग सिंगार निरखि मोहन कौ ले दर्पन कर पियहि दिखावैं॥'

भक्तकी वाणीका कण्ठ पूर्णरूपसे खुल चुका था, उनका मन भगवान्के पदारविन्द-मकरन्दके मदसे उन्मत्त था, उनके नयनोंने विश्वासपूर्वक सौन्दर्यका चित्र उरेहा—

माई री आज और, काल और, छिन छिन प्रति और और॥

भगवान्के नित्य-सौन्दर्यमें अभिवृद्धिकी रेखाएँ चमक उठीं। भगवान्का सौन्दर्य तो क्षण-क्षणमें

नवीनतासे अलंकृत होता रहता है। यही तो उसका वैचित्र्य है। लीला-दर्शन करनेवालेको भगवान् सदा नये-नये ही लगते हैं।

एक समय गोसाईं विट्ठलनाथ गोकुलमें थे। गोसाईंजीके पुत्रोंने परासोलीमें रासलीलाकी योजना की। उस समय श्रीगोकुलनाथजीने चतुर्भुजदाससे पद गानेका अनुरोध किया। चतुर्भुजदास तो रससम्राट् श्रीनाथजीके सामने गाया करते थे। भक्त अपने भगवान्के विरहमें ही लीन थे। श्रीनाथजीने चतुर्भुजदासपर कृपा की। श्रीगोकुलनाथने उनसे गानेके लिये फिर कहा और विश्वास दिलाया कि आपके पदको भगवान् प्रकटरूपसे सुनेंगे। चतुर्भुजदासने पद गाना आरम्भ किया।

भक्त गाये और भगवान् प्रत्यक्ष न सुनें, यह कैसे हो सकता है। उनकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, वहाँ मैं उपस्थित रहता हूँ। भगवान् प्रकट हो गये, पर उनके दर्शन केवल चतुर्भुजदास और श्रीगोकुलनाथको ही हो सके। गोकुलनाथजीको विश्वास हो गया कि भगवान् भक्तोंके हाथमें किस तरह नाचा करते हैं। चतुर्भुजदासने गाया—

**'अदभुत नट वेष धरें जमुना तट।
स्यामसुँदर गुननिधान॥
गिरिबरधरन रास रँग नाचे।'**

रात बढ़ती गयी, देखनेवालोंके नयनोंपर अतृप्तिकी वारुणी चढ़ती गयी।

भक्तकी प्रसन्नता और संतोषके लिये भगवान् अपना विधान बदल दिया करते हैं। एक समय श्रीविट्ठलनाथजीने विदेश-यात्रा की, उनके पुत्र श्रीगिरिधरजीने श्रीनाथजीको मथुरामें अपने निवास-स्थानपर पधराया। चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजीके विरहमें सुध-बुध भूलकर गोवर्धनपर एकान्त स्थानमें हिलग और विरहके पद गाया करते थे। श्रीनाथजी सन्ध्या-समय नित्य उन्हें दर्शन दिया करते थे। एक दिन वे पूर्णरूपसे विरहविदग्ध होकर गा रहे थे—

'श्रीगोबर्धनवासी साँवरे लाल, तुम बिन रह्यौ न जाय हो।'

भगवान् भक्तकी मनोदशासे स्वयं व्याकुल हो उठे। उन्होंने तुरंत प्रकट होकर दर्शन दिया। उन्होंने गिरिधरजीको गोवर्धन पधरानेकी प्रेरणा दी। चतुर्दशीको एक पहर रात शेष रहनेपर कहा कि 'आज राजभोग गोवर्धनपर होगा।' भगवान्की लीला सर्वथा विचित्र है। नरसिंहचतुर्दशीको वे गोवर्धन लाये गये। राजभोगमें विलम्ब हो गया, राजभोग और शयन-भोग साथ-ही-साथ दोनों उनकी सेवामें रखे गये। नरसिंहचतुर्दशीको वे उसी दिनसे दो राजभोगकी सेवासे पूजित होते हैं।

उनका देहावसान संवत् १६४२ वि० में रुद्रकुण्डपर एक इमलीके वृक्षके नीचे हुआ था। वे शृंगारमिश्रित भक्तिप्रधान कवि, रसिक और महान् भगवद्भक्त थे।

श्रीबेनीजी

श्रीबेनीजी भगवान्के अनन्य भक्त थे, उन्हें उनके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं थी। ऐसे भक्तोंके लिये श्रीतुलसीदासजीने दोहावलीमें लिखा है—***बनै तो रघुबर ते बनै, कै बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और ते ता बनिवे में धूर॥*** श्रीबेनीजीने अपने जीवनमें इस भावको चरितार्थ करके दिखा दिया। एक बार इन्हें कोई असाध्य रोग हो गया। लोगोंने औषधि-उपचार करने-करानेको बहुत कहा, लेकिन इन्होंने एक नहीं सुनी। ये तो भगवान्के भरोसे बैठे रहे। अन्ततोगत्वा स्वयं भगवान् ही वैद्य बनकर आये और इनका उपचार किया। इनका रोग तो भगवान्के दर्शन-स्पर्शसे ही दूर हो गया।

कलियुगकी भक्त नारियाँ

सीता झाली सुमति सोभा प्रभुता उमा भटियानी।
गंगा गौरी कुँवरि उबीठा गोपाली गनेसदे रानी॥
कला लखा कृतगढ़ौ मानमति सुचि सतिभामा।
जमुना कोली रामा मृगा देवा दे भक्तन बिश्रामा॥
जुगजेवा कीकी कमला देवकी हीरा हरिचेरी पोषे भगत।
कलिजुग जुबती जन भक्तराज महिमा सब जानै जगत॥ १०४॥

इस कलियुगमें भी ये युवतीजन (माताएँ) भक्तराज हुईं। इनकी महिमा सारा संसार जानता है। इनके नाम ये हैं—श्रीसीतासहचरीजी, श्रीझालीजी, श्रीसुमतिजी, श्रीशोभाजी, श्रीप्रभुताजी, श्रीउमा भटियानीजी, श्रीगंगाजी, श्रीगौरीजी, श्रीकुँवरिजी, श्रीउबीठाजी, श्रीगोपालीजी, रानी श्रीगणेशदेईजी, श्रीकलाजी, श्रीलखाजी, श्रीकृतगढ़ौजी, श्रीमानमतीजी, परम साध्वी श्रीसत्यभामाजी, श्रीयमुनाजी, श्रीकोलीजी, श्रीरामाजी, श्रीमृगाजी, श्रीदेवाजी, दोनों जेवाजी, श्रीकीकीजी, श्रीकमलाजी, श्रीदेवकीजी, श्रीहीराजी, श्रीहरिचेरीजी। ये सब भक्ताएँ भक्तोंको विश्राम देनेवाली तथा सब प्रकारसे उनका पालन-पोषण करनेवाली हुईं॥ १०४॥

इनमेंसे कतिपय भक्त नारियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

रानी श्रीगणेशदेईजी

काशीवाले महाराज श्रीअनिरुद्धसिंहजी (करैया-दतिया) महान् धर्मात्मा थे। इनकी रानीका नाम विजयकुँवरि था। ये भी भगवद्भक्ता एवं पतिव्रता थीं। निरन्तर धर्माचरण-परोपकारके फलस्वरूप वि० संवत् १५६९ में इनके यहाँ एक पुत्रीका जन्म हुआ। जिसका बाल्यकालमें कमला, फिर गणेशदेई नाम प्रसिद्ध हुआ। इनपर माता-पिताका अपार वात्सल्य था। माताने पुत्रीको श्रीविश्वनाथभगवान्‌की उपासनाका उपदेश दिया। भोरी-भारी कन्याके सहज-प्रेमपर भगवान् विश्वनाथ रीझ गये और उन्होंने कृपा करके श्रीरामभक्तिका श्रेष्ठ वरदान दिया। वि० संवत् १५९६ में ओरछानरेश महाराजा मधुकरशाहके साथ आपका विवाह हुआ। ओरछानरेश महाराज मधुकरशाहजी अनन्य श्रीकृष्णभक्त थे और उनकी रानी श्रीगणेशदेईजी श्रीरामजीकी अनन्य उपासिका थीं। एक बार श्रावणके महीनेमें झूलनके उत्सवपर श्रीमधुकरशाहजी तो वृन्दावन आये और रानी श्रीगणेशदेईजीने अयोध्याकी यात्रा की। उत्सव समाप्त होनेपर महाराज श्रीमधुकरशाहजी तो ओरछा चले गये, परंतु श्रीगणेशदेईजी अयोध्यासे नहीं लौटीं। महाराज मधुकरशाहजीने दो-चार बार पत्र भी लिखा कि मैं श्रीवृन्दावनसे आ गया, अब तुम भी अयोध्यासे चली आओ। परंतु श्रीगणेशदेईजीका श्रीअवधमें ऐसा मन रमा कि उनका ओरछा जानेका मन ही नहीं करता था। अन्तमें श्रीमधुकरशाहजीने खिसियाकर पत्र लिखा कि 'बार-बार बुलानेपर भी नहीं आती हो, लगता है कि अबकी बार श्रीरामजीको लेकर ही लौटोगी।' राजाकी यह बात महारानी गणेशदेईको लग गयी। इन्होंने प्रेमावेशमें राजाको पत्र लिख दिया कि 'सचमुच अब तो मैं श्रीप्रभुको लेकर ही ओरछाको आऊँगी, अन्यथा यहीं शरीर छोड़ दूँगी।'

इसके बाद महारानी श्रीगणेशदेईजीने मनमें विचार किया कि राजा हमारे प्रेमका उपहास कर रहे हैं। अरे, हमारे समान तो श्रीराजारामकी न जाने कितनी दासियाँ हैं। यदि सबकी सब आग्रह करें तो श्रीराम श्रीअयोध्याका सुख छोड़कर दासियोंके साथ कहाँ-कहाँ जायँगे। फिर धाम छोड़नेका हठ कौन करेगा?

कहा गया है—***जो सेवक साहिबहिं संकोची। निज हित चहै तासु मति पोची॥*** उधर बिना प्रभुको लिये मैं ओरछामें पाँव नहीं रख सकती; क्योंकि तब तो राजा मेरा और मेरे प्रभुका और भी अधिक उपहास करेंगे। यह सब सोचकर रानी प्रेमके कारण अत्यन्त विकल हो गयीं। इन्हें प्रभुका वियोग व्याप गया। जब विरह असह्य होने लगा तो रानी तन-त्यागका संकल्पकर श्रीसरयूजीमें कूद गयीं। परंतु यह क्या? अगाध जलराशिमें कूदते ही श्रीरघुनाथजी इनकी गोदमें आ गये और रानीको श्रीसरयूजीके प्रवाहसे बाहर निकाल लाये और बोले—चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे साथ सहर्ष ओरछा चलनेके लिये तैयार हूँ। श्रीप्रभुका दर्शनकर एवं कृपामय वचनोंको सुनकर रानी परमानन्दसिन्धुमें मग्न हो गयीं।

रानीने उस दिन श्रीअयोध्यामें बड़ा-भारी उत्सव मनाया और तुरंत महाराज मधुकरशाहको पत्र लिखा कि मैं प्रभुको लेकर आ रही हूँ, आप प्रभुके स्वागतकी तैयारी करें। पत्र पढ़ते ही राजाको महान् हर्ष हुआ। उन्होंने तुरंत राजारामके स्वरूपानुरूप विशाल मन्दिर बनवानेका हुक्म दे दिया और स्वयं श्रीरामजीके स्वागतार्थ बहुत बड़े लाव-लश्करको साथ लेकर श्रीअयोध्या आये। शुभ मुहूर्त पुष्य नक्षत्रमें प्रस्थानकी तैयारी हुई। प्रस्थानकालमें राजाने साधु-ब्राह्मणोंका दान-मानसे बहुत बड़ा सत्कार किया और सबकी आज्ञा एवं आशीर्वाद लेकर महाराजोचित साज-समाजके साथ बड़े समारोहपूर्वक ओरछाके लिये प्रस्थान किया। राजा-रानीने यात्राका नियम यह बना रखा था कि केवल पुष्य नक्षत्रमें चलते थे। इसके बाद विश्राम करते थे। महीनेभर एक जगह पड़ाव पड़ा रहता। महाराजोपचार विधिसे अनेकानेक उत्सव होते रहते। जब पुनः पुष्य नक्षत्रयुक्त शुभमुहूर्त आता तब प्रस्थान करते। इस प्रकार विविध उत्सव सुख-समारोहपूर्वक पुष्य नक्षत्रमें ही यात्रा करते हुए श्रीराजाराम ओरछा आये। यहाँ आनेपर राजा-रानीने बहुत बड़ा उत्सव मनाया। संयोगकी बात ओरछा आनेतक मन्दिर बनकर तैयार नहीं हो पाया था, शिखर बनना शेष था। अतः श्रीराजाराम भगवान्‌को रानीके महलमें ही विराजमान कराया गया। दर्शनार्थियोंका समुदाय उमड़ पड़ा प्रभु-दर्शनके लिये। सबने भगवान् श्रीराजारामका साक्षात् दर्शनकर अपनेको धन्य माना।

भगवान् श्रीराजारामका वह श्रीविग्रह खड़े रूपमें था। अतः महारानी श्रीगणेशदेईजी भी खड़े-खड़े ही प्रभुकी सेवा करती थीं। समस्त सेवा-कार्य अपने ही हाथसे करनेके कारण रानीको लगभग चार-चार घण्टेतक सेवामें खड़े रहना पड़ता था। रानीका सुकुमार शरीर इतना श्रम सहनेलायक नहीं था। अतः करुणावरुणालय श्रीप्रभुने एक दिन रानीसे कहा कि 'आज मेरे पाँव दुःख रहे हैं।' रानीने विकल होकर पूछा—'प्रभो! क्या कारण है?' तब भगवान्‌ने कहा—'इसलिये कि तुम बहुत देरतक खड़ी-खड़ी मेरी सेवा करती हो तो तुम्हारे पाँव दुःखने लगते हैं तो मेरे भी दुःखने लगते हैं। अतः तुम बैठकर मेरी सेवा किया करो। तुम्हारा कष्ट मुझसे सहा नहीं जाता है।' रानीने हाथ जोड़कर कहा कि 'प्रभो! हमें तो दो-चार घण्टे सेवामें खड़े रहना पड़ता है और आप तो परम सुकुमार होकर भी चौबीसों घण्टे खड़े ही रहते हैं। मैं आपसे भी अधिक सुकुमार थोड़े ही हूँ, जो चार घण्टे भी खड़ी नहीं रह सकती। आप खड़े रहें और मैं बैठकर सेवा-पूजा करूँ यह उचित नहीं है।' श्रीरामजीने कहा—'तो क्या मैं बैठ जाऊँ?' रानीने कहा—'हाँ, यदि आप बैठ जायँ तो मैं भी बैठकर सेवा-पूजा कर सकती हूँ।' भगवान्‌ने कहा कि 'अच्छा मैं तुम्हारे कहनेसे बैठ तो जाता हूँ, परंतु अब यहाँसे उठूँगा नहीं। यहीं अचल होकर रहूँगा।' रानीने स्वीकार कर लिया। फिर तो रानीके देखते-देखते श्रीराजारामजी वीरासनसे वहीं बैठ गये। जो दर्शनार्थी कल खड़े भगवान्‌का दर्शन कर गये थे, वे आज उन्हें बैठे देखकर बड़े चकित हुए और उन्हें यह विश्वास हो गया कि भगवान् मूर्ति नहीं बल्कि साक्षात् स्वरूप हैं। भला कहीं किसीने मूर्तिको बैठते देखा है। इस लीलासे भगवान्‌ने उन लोगोंका

सन्देह दूर कर दिया, जो इस बातपर अविश्वास करते थे कि रानीको श्रीराजाराम साक्षात् मिले हैं। मन्दिर तैयार होनेपर राजाने श्रीराजारामजीको मन्दिरमें विराजमान करवानेका प्रस्ताव रानीके सामने रखा तो रानीने श्रीराजारामजीकी अविचलताकी बात बतायी। तब राजा मधुकरशाहजीने श्रीराजारामपर प्रेमभरा व्यंग्य किया कि 'यदि घर घुसल्लू ही बनकर रहना था तो मन्दिर क्यों बनवाये?' रानीने यह बात श्रीराजारामको सुनायी तो उन्होंने कहा कि 'मैं तो आपके प्रेमवश आया हूँ, मुझे आपकी सेवा प्रिय है। अत: राजा कुछ भी कहें हम तो महलमें ही रहेंगे। उनसे कह दो कि वे मन्दिरमें किसी और मूर्तिको पधरा लें। तब राजाने उस नवनिर्मित मन्दिरमें चतुर्भुजभगवान्‌की प्रतिष्ठा की। आज भी मन्दिरमें चतुर्भुजभगवान् एवं महलमें श्रीराजारामका दर्शन होता है। महली चौखटपर आज भी यह दोहा अंकित है—***मधुकरशा महाराजकी रानी कुंवरि गणेश। अवधपुरीसे ओरछे लाईं अवध नरेश॥*** श्रीराजारामजीके प्रभावसे ओरछा तीर्थ बन गया। निर्जला एकादशी सं० १६४२ वि० गुरुवारको रानी श्रीगणेशदेईजी इस नश्वर शरीरको त्यागकर श्रीरामजीके चरणोंमें लीन हो गयीं।'

रानी गणेशदेईकी सन्तोंमें बड़ी निष्ठा थी। इनके यहाँ बहुतसे सन्त आते और ये उनकी अनेक प्रकारसे सेवा करते। खान-पानका सुख देखकर एक साधु बहुत दिन इनके यहाँ रह गया। एक दिन महलमें नितान्त अकेली देखकर उसने रानी गणेशदेईजीसे पूछा कि 'बताओ धन (मुहरों-जवाहरातों)-की थैलियाँ कहाँ हैं?' इन्होंने कहा कि यदि मेरे पास धनकी थैलियाँ हों तो बताऊँ। जब हैं ही नहीं तो क्या बताऊँ? तब उस साधु-वेषधारीने श्रीगणेशदेई रानीकी जाँघमें छुरी मार दी। खूनकी धारा बह चली। रक्तका प्रवाह देखकर वह तुरंत भाग गया। रानीको सोच हुआ कि कहीं राजा इस घटनाको जान जायँगे तो साधु-सेवा बन्द कर देंगे, अत: घावपर कसकर पट्टी बाँध ली और पौढ़ रहीं। उन्होंने किसीसे भी यह बात नहीं कही। जब राजा मधुकरशाहजी इनके पास आये तो इन्होंने कहा कि 'मेरे पास मत आइये। इस समय मुझे मासिक धर्म हुआ है।' तीन दिन बीतनेपर भी रानीको शय्यापर ही पड़ी देखकर राजा समीप जाकर बोले—हे प्रवीणे! तुम मुझसे व्यथाका सब रहस्य खोलकर कहो। तब भी रानीने दो-चार बार इस प्रसंगको टरकाया, परंतु इससे राजाका विचार और भी दृढ़ हो गया कि अवश्य ही इन्हें कोई नयी व्यथा है। अत: बारम्बार बतानेका आग्रह किया। तब रानीने कहा कि 'मैं बता तो दूँ, परंतु आप जानकर मनमें सन्तोंके प्रति सन्देह नहीं करना।' इसके बाद रानीने सब बात बता दी। तब रानीकी अपार सन्त-निष्ठा देखकर राजा बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने पति-पत्नी भावकी लज्जा और संकोचको छोड़कर, भक्तिका प्रभाव विचारकर अपनी रानी गणेशदेईकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

श्रीप्रियादासजीने रानी गणेशदेईकी इस सन्त-निष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मधुकर शाह भूप भयो देश ओड़छे कौ रानी सो गनेसदेई काम बाँको कियो है।
आवैं बहु सन्त सेवा करत अनन्त भांति रह्यौ एक साधु खान पान सुख लियो है॥
निपट अकेली देखि बोल्यौ धन थैली कहाँ? होय तौ बताऊँ सब तुम जानौ हियौ है।
मारी जांघ छुरी लखि लोहू बेगि भागि गयौ भयौ सोच जानै जिनि राजा बंद दियौ है॥ ४१७॥

बांधि नीकी भांति पौढ़ि रही कही काहू सों न आयो ढिग राजा मति आवौ तिया धर्म है।
बीते दिन तीन जानी बेदन नबीन कछु कहिये प्रबीन मोसों खोलि सब मर्म है॥
टारी बार दोय चारि नृप के विचार पर्‌यौ कर्‌यौ समाधान जिन आनौ जिय भर्म है।
फिर्‌यौ आस पास भूमि पर तन रासकरी भक्तिकौ प्रभाव छांड़ि तिया पति सर्म है॥ ४१८॥

श्रीझालीरानीजी

झालीरानी चित्तौड़गढ़की रानी और श्रीरैदासजीकी शिष्या थीं। सन्तोंमें इनकी बड़ी निष्ठा थी। एक बार इनके यहाँ सन्तोंकी एक जमात आयी। जमातमें इनके एक गुरुभाई भी आये हुए थे। इनके मनमें दर्शनोंकी बड़ी अभिलाषा थी। परंतु राणा साहबने दर्शनार्थ जानेकी अनुमति तो नहीं ही दी, उल्टे द्वार-द्वारपर पहरा लगा दिया कि रानी महलसे बाहर निकलने न पायें और कोई साधु महलके भीतर न आने पायें। यदि कोई आया-गया तो पहरेदारोंको शूलीपर चढ़ा दिया जायगा। इस सख्त हुक्मसे सभी पहरेदार अत्यन्त चौकन्ने होकर पहरा दे रहे थे। इधर रानीके मनमें दर्शनकी चटपटी लगी। अतः यह सन्तोंके श्रीचरण-कमलोंका स्मरण करती हुई सन्तोंके दर्शनके लिये प्रेमावेशमें अकेली महलसे निकल पड़ी। भगवदिच्छा एवं सन्तोंकी कृपासे कोई भी पहरेदार रानीको जाते हुए देख नहीं सका। रानीने बड़े सुखसे सन्तोंका दर्शन किया और खूब भोग-भण्डारा, भेंट-पूजासे सन्तोंका सम्मान किया। उधर राजाको पता चला कि रानी तो महलसे निकलकर सन्तोंकी जमातमें चली गयीं तो उन्हें पहरेदारोंपर बहुत क्रोध आया। आकर उनको बहुत डाँट लगायी और बोले—'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, अब खबरदार, रानी महलमें घुसने नहीं पायें। यदि अबकी असावधानी हुई तो किसीके भी प्राण नहीं बचेंगे।' राणा साहब पहरेदारोंको सावधानकर स्वयं भी बड़ी सतर्कतापूर्वक देखभाल करने लगे। परंतु रानी तो जैसे गयी थीं, वैसे ही पुनः महलमें आ भी गयीं और कोई देख नहीं पाया। जब राणा साहबको रानीके महलमें पहुँचनेका समाचार मिला तो उनकी आँखें खुल गयीं कि यह तो प्रत्यक्ष भक्तिका चमत्कार है। फिर तो रानीके साथ राणा साहब भी भगवत्-भागवत-सेवामें जुट गये।

श्रीशोभाजी

सन्त-सेवापरायणा श्रीशोभाजी अपने देवर-देवरानीके साथ रहती हुई निरन्तर भजन-साधनामें लगी रहती थीं। इनका देवर तो इनकी भक्ति-भावनासे सन्तुष्ट था, परंतु देवरानी कुढ़ा करती थी। एक बार देवरने एक जोड़ा सोनेका कंकण बनवाया और शोभाजीको ही रखनेके लिये देकर स्वयं परदेश चला गया। इनकी देवरानीको भला यह कब सहन होने लगा। वह शोभाको तो कुछ नहीं कह सकी, परंतु अवसर पाकर शोभाके पास रखा हुआ कंकण उसने चुरा लिया और पृथ्वीमें गाड़ दिया। श्रीशोभाजी तो सदा सन्त-सेवा और सत्संगमें पगी रहती थीं, कंकणकी ओरसे उनका ध्यान ही हट गया था, अतः कंकण चोरीकी उन्हें जानकारी ही नहीं थी। जब देवर परदेशसे आया और कंकण मांगा, तब ये कंकण लेने गयीं, परंतु देखा तो कंकण नदारद था। इससे शोभाजीको बड़ा संकोच हुआ। इन्होंने देवरसे सही-सही बात कह दी कि मैंने तो अमुक स्थानपर रखा था, परंतु बीचमें मुझे उसे सँभालनेका ध्यान नहीं रहा, आज देखा तो कंकण वहाँ नहीं मिला। देवर चुप लगा गया। परंतु देवरानी कब चुप बैठनेवाली थी। वह तो अपने पतिका कान भरने लगी कि रोज साधुओंको बुला-बुलाकर हलवा-पूरी खिलाती हैं। एक जाते हैं तो दो साधु आते हैं। उनकी सेवामें खूब पैसा खर्च होता है। आप निश्चय मानिये इन्होंने कंकण बेंचकर साधुओंको खिला दिया है। देवरानीका यह झूठा आरोप सुनकर श्रीशोभाजीको बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि 'प्रभो! यह झूठा कलंक आप दूर करो।' प्रभुकृपासे शोभाजी जब सोकर उठीं तो कंकणको खाटपर पाया। इन्होंने तुरंत देवरको बुलाकर कंकण देकर सन्तोषकी साँस ली। जब यह बात इनकी देवरानीको मालूम हुई तो उसने भी पृथ्वी खोदकर देखा तो कंकण वहींपर गड़ा मिला। तब तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस कंकणको भी लाकर अपने पतिको दे दिया और अपने कपटकी बात सुनाते हुए श्रीशोभाजीसे क्षमा-प्रार्थना की। उसी

समय एक चमत्कार और हुआ, वह यह कि जब इनकी देवरानीने पहला कंकण लाकर दिया तो भगवद्दत्त कंकण अदृश्य हो गया। तब तो देवर-देवरानी दोनों ही इनके चरणोंमें नतमस्तक हो गये और उपदेश लेकर स्वयं भी सन्त-सेवामें लग गये।

श्रीप्रभुताजी

यह भक्तवर श्रीरैदासजीकी धर्मपत्नी थीं। श्रीरैदासजीकी तरह इनकी भी सन्तोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन घरपर सन्त आये, परंतु घरमें एक मुट्ठी अन्न भी नहीं था। श्रीरैदासजीको बड़ा शोच हुआ। पतिको शोचग्रस्त जानकर श्रीप्रभुताजीने धैर्य बँधाया और तुरंत अपनी सासके पास जाकर बोलीं कि 'मुझे कहीं बाहर जाना है, थोड़ी देरके लिये आप अपना हमेल (गलेमें पहननेका एक आभूषण) हमें दे दीजिये। मैं अभी लाकर वापस कर दूँगी।' सास इनकी बातमें आ गयी और अपना हमेल दे दिया। इन्होंने वह हमेल श्रीरैदासजीको देकर कहा कि 'शीघ्र इसे बेंचकर सन्तोंकी सेवा कीजिये।' श्रीरैदासजीने ऐसा ही किया। उधर जब बहुत देर होनेपर भी हमेल लौटकर नहीं आया तो प्रभुताजीकी सासको खलबली पड़ी। उसने पूछताछ करवायी तो पता चला कि हमेल तो बिककर सन्त-सेवामें लग गया। तब तो वह बहुत ही नाराज हुई और उसने श्रीप्रभुताजीको कोठेमें बन्द कर दिया। बिना अन्न-जलके प्रभुताजी रातभर कोठेमें बन्द रहीं। प्रातःकाल भगवान् श्रीरैदासजीका रूप धरकर हमेल ले आये। जब सासको हमेल मिल गया तब उसने श्रीप्रभुताजीको छोड़ा। घर आकर श्रीप्रभुताजीने पतिसे पूछा कि हमेल कैसे छुड़ा लाये? पैसा इतनी जल्दी कहाँ मिला? श्रीरैदासजीने कहा कि 'हमें न तो कहींसे पैसा ही मिला, न हमने हमेल ही छुड़ाया, न दिया। कैसी बात कर रही हो? तब श्रीप्रभुताजी समझ गयीं कि मेरे पतिके रूपमें साक्षात् परमात्माने ही हमेल छुड़ाकर हमें बन्धनसे मुक्त किया।' उस दिनसे श्रीरैदासजी और उनकी पत्नीकी सन्त-सेवामें और भी निष्ठा हो गयी।

श्रीउमा भटियानीजी

श्रीउमा भटियानीजी जैसलमेरके राजाकी कन्या और जोधपुरके राव मालदेवकी रानी थीं। १५९३ सम्वत्‌में आपका विवाह हुआ। आपमें बचपनसे हरिभक्तिके दिव्य संस्कार थे। पति-भवनमें पहुँचकर निरन्तर 'भगवत्स्मरण ही करना है।' इस निश्चयके साथ विवाहके पश्चात् पहले-पहल जब पति-दर्शनार्थ उनके भवनमें गयीं, तो इन्हें वहाँ एक मनचली दासी दिखलायी पड़ी। इससे आप अपने पतिसे रूठ गयीं और उन्हें प्रणाम करके चली आयीं। आपने निश्चय किया कि अपने पिताके घर रहकर ही हरि-भजनमें जीवन बिताऊँगी। आपकी भक्तिसे प्रभावित होकर राव मालदेवके मनमें आया कि किसी प्रकार रानी उमा भटियानीजी जोधपुर आकर रहें और सुखपूर्वक यहाँ ही रहकर भगवद्भजन करें। संवत् १६०४ में आसवदासजी चारणको राजाने मनानेके लिये भेजा। आपके भजनमें बाधा न होगी, ऐसा पूरा आश्वासन प्राप्तकर आप पालकीमें बैठकर जोधपुर चलीं। मार्गमें विश्रामस्थलपर किसी चारणने यह दोहा कहा— ***'मान रखे तो पीव तज, पीव चहे तज मान। दो-दो गयन्द न बँधहीं एकहि कम्बू ठान॥'*** यह सुनकर आप उसी स्थानपर रह गयीं। पिता एवं पति दोनोंकी ओरसे आपको सद्भाव प्राप्त रहा। एकान्तमें भजनके अतिरिक्त किसीसे आपने व्यवहार नहीं रखा। संवत् १६१९ में राजा मालदेवके मरनेपर लौकिक, वैदिक प्रथाके अनुसार आप सती हो गयीं। इतिहासमें आपके पवित्र जीवन एवं भगवत्प्रेमकी महती प्रशंसा है। आपकी सन्तोंके प्रति अगाध श्रद्धा थी। विविध प्रकारके व्यंजन बनातीं, भगवान्‌को भोग लगातीं और सन्तोंको भी खिलाती थीं। एक बार एक सन्तने आकर इनसे कहा कि 'मेरे श्रीगुरुजीका उत्सव है, उसमें दो हजार रुपयोंकी

आवश्यकता है। यदि आपसे हो सके तो उसकी व्यवस्था कर दीजिये। श्रीउमा भटियानीजीने तुरंत अपने समस्त आभूषण बेचकर सन्तको दो हजार रुपये दे दिये। उसी रात ऐसा चमत्कार हुआ कि इन्होंने अपने जितने गहने बेचे थे, वे सब आकाशसे इनके आँगनमें बरस गये। इन्होंने पहचाना तो अपने ही गहने थे। इस प्रसंगसे इनकी सन्त-सेवामें और अधिक निष्ठा हो गयी तथा सर्वत्र इनकी उदारताकी चर्चा होने लगी। इस बातको एक ढोंगीने सुना तो वह भी सन्तका वेष बनाकर इनके यहाँ आया और आभूषण माँगने लगा। इन्होंने उसे भी सहर्ष अपने सभी आभूषण दे दिये, परंतु वह ढोंगी जब इनके आभूषण लेकर नगरसे बाहर भागने लगा तो अन्धा हो गया। फिर वह नगरकी ओर लौटा तो आँखोंकी ज्योति पूर्ववत् ठीक हो गयी। तब उसने नगरमें रहनेका भी निश्चय किया। परंतु नगरमें भी जब वह रातको सो रहा था तो स्वप्नमें भगवान्‌ने भय दिया कि 'क्यों रे मूढ़! अभी भी तेरा अज्ञान दूर नहीं हुआ। शीघ्र उस भागवतीके आभूषणोंको लौटाओ, अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। तुमको मालूम होना चाहिये कि भक्तका धन तो भक्तोंकी ही सेवामें लगेगा।' तब तो वह ढोंगी डरकर इनके सभी आभूषण लौटा गया और चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी। श्रीउमा भटियानीजीने उसे सन्त-सेवाका उपदेश दिया।

श्रीगौराबाईजी

भगवत्कथा-कीर्तन-श्रवण एवं भक्तोंकी सेवा यही आपकी दिनचर्या थी। सेवाकी ख्यातिके कारण दूर-दूरके बड़े-बड़े सन्त-महात्मा आते ही रहते थे। उनके दर्शन एवं कीर्तनसे आप परमानन्दमें विभोर रहतीं। एक बार आपके यहाँ कई सिद्ध सन्त एक साथ पधारे। श्रीगौराबाईने बड़े प्रेमभावसे उनकी सेवा की। उस दिन सत्संगमें उन सन्तोंने श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन करते हुए कहा कि—जो प्रभु अमलात्मा योगीन्द्र मुनीन्द्रोंके ध्यानमें सहसा नहीं आते, उन्होंने प्रेमपरवश होकर यशोदाका स्तनपान किया और उन्हें अपनी मधुर बाललीलाओंसे परमसुख प्रदान किया। इस कथाको श्रवणकर श्रीगौराबाईने कहा—'धन्य हैं श्रीयशोदाजी, जिनका स्तन-पान करके श्यामसुन्दरको तुष्टि-पुष्टि प्राप्त हुई।' सन्तोंने कहा—धन्यवादके योग्य प्रेम है, आज भी यदि किसीको प्रेम हो तो प्रभु बालक बनकर उसका पयःपान कर सकते हैं। वात्सल्य-रसमयी श्रीगौराजीके मनमें भगवान्‌को स्तन-पान करानेकी बलवती इच्छा जाग्रत् हो उठी। इनके परम प्रेमको देखकर रातमें स्वयं भगवान् बालरूप धारणकर श्रीगौराबाईका स्तन-पान करने लगे। पयःपानसे सन्तुष्ट होकर बालगोविन्द किलकारी मारने लगे। भगवान्‌को स्तन-पान कराकर गौराबाई प्रेममग्न हो गयीं। कुछ देर बाद बालमुकुन्द भगवान्‌ने उन्हें अचेत देखकर रुदन आरम्भ कर दिया। श्रीगौरादेवी उन्हें गोदमें लेकर चुप करानेकी इच्छासे उठीं। बालकके रुदनसे सन्त लोग जग गये। घटनाका विवरण सन्तोंसे कहना चाहती थीं। तभी उनकी गोदसे शिशु श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये, बाईके स्तनोंसे अब भी दूध टपक रहा था। विरहसे व्यथित भक्ताको सन्तोंने धैर्य दिलाया और भाग्यकी प्रशंसा करके कहा—'तुम्हारा सच्चा प्रेम देखकर प्रभुने तुम्हारी अभिलाषा पूरी कर दी।' बाईजीके प्रभावसे अनेकोंने भगवत्प्रेम प्राप्त किया।

श्रीकलाबाईजी

श्रीकलाबाईजीकी श्रीगुरुगोविन्दके चरणोंमें अपार श्रद्धा थी। एक बार आपको समाचार मिला कि गुरुदेव पधार रहे हैं। आपके मनमें परम सुख हुआ। गुरु-दर्शन-सत्संगके अनेक भावमय चित्र मनमें उभरने लगे। उससे प्रेमके सात्त्विक भावोंका शरीरमें उदय हो गया। कब आयें, कब दर्शन हों, इस सोच-विचारमें पड़ी हुई श्रीबाईजीको समाचार मिला कि—'गुरुदेव तो जमातके साथ इस गाँवकी ओर न आकर आगेके गाँवमें पहुँच गये।' यह सुनते ही श्रीकलाबाईजीको आवेश आ गया। स्तन-पान करते हुए शिशुको पालनेमें

छोड़कर गुरुदर्शनार्थ दौड़ीं। पाँच कोसकी दौड़ लगानेपर श्रीगुरुदेवके दर्शन हुए। उनके चरणोंमें प्रणामकर दर्शन-सत्संगकर इन्हें परम सन्तोष हुआ। तबतक रात हो गयी। वहाँसे घरको वापस लौटना असम्भव जानकर आप रातको वहाँ ही रह गयीं। रातको सहसा आपके मनमें शिशुका स्मरण आया। उसे क्षुधित अनुमानकर वात्सल्यवश स्तनोंसे दुग्धकी धार बहने लगी। आपका हृदय व्याकुल हो उठा। कुछ तन्द्रा-सी आनेके बाद जब आप सचेत हुईं तो आपने देखा कि एक बालक साथ ही लेटा हुआ स्तन-पान कर रहा है। उठकर उजालेमें देखकर पहचाना तो वह अपना वही पुत्र था, जिसे वे पालनेमें छोड़ आयीं थी। इस चमत्कारको देखकर सभी लोगोंके मनमें श्रीकलाबाईके प्रति अपार श्रद्धा एवं गुरुगोविन्दकी भक्तिमें दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया।

श्रीजीवाबाईजी

श्रीजीवाबाईजी भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्त थीं। आपका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। अनन्य प्रेमके प्रभावसे सभी लोग आपको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। सम्पर्कमें आनेवाली सभी नारियोंको आप भगवान्‌की भक्तिकी शिक्षा दिया करती थीं। इससे नारी-जगत्‌में आप विशेष सम्माननीया थीं। एक बार इनके पुत्रको शीतला निकलीं। लोगोंने शीतला देवीकी मान्यता-पूजाका आग्रह किया। पतिदेवने भी विशेष जोर दिया। पर आपने किसीकी एक न मानी। अपने इष्टदेव श्यामसुन्दरका ही स्मरण करती रहीं। पतिदेवने क्रोधित होकर कहा कि—'कहना नहीं मान रही हो, यदि बालक मर गया तो तुझे भी मैं जीवित ही जला दूँगा।' श्रीजीवाजीने कुछ भी उत्तर न दिया, क्योंकि उन्हें भगवान्‌में अटूट विश्वास था। वे जीवन-मरणके मोहमें नहीं थीं। बालककी दशा बिगड़ती गयी और अन्तमें उसका प्राणान्त हो गया। पतिने तरह-तरहकी खरी-खोटी सुनायी। श्रीजीवाजीने बिना किसी विषादके श्मशानमें जाकर चिता तैयार की और मृत बालकको गोदमें लेकर जलनेके लिये चितापर बैठ गयीं। ऐसा करनेसे सभी लोगोंने और स्वयं पतिदेवने भी मना किया, परंतु अपने पतिदेवके प्रथम वाक्यको सत्य करनेका निश्चय करके जीवित ही जलना चाहा। ऐसी आपकी दृढ़ताको देखकर प्रभु प्रसन्न हो गये और गोदका बालक जीवित हो गया। यह देख-सुनकर सभीको भगवद्भक्तिकी महिमाका ज्ञान हुआ। सबने इसे प्राप्त करनेकी इच्छा की। अनन्यनिष्ठ भक्तका योग-क्षेम भगवान् स्वयं वहन करते हैं—यह सत्य हो गया।

श्रीजेवासीजी

जेवासी श्रीलाखा भक्तकी धर्मपत्नी थीं। आप सर्वदा अपने पतिदेवकी रुचिके अनुसार ही सन्तोंकी खूब सेवा करती थीं। जब श्रीलाखाजीने जगन्नाथजीकी यात्रा की, उस समय आपने घरपर रहकर श्रीलाखाजीसे भी अच्छी सन्त-सेवा की। इनके सद्भावसे एक दिन कई महान् सिद्ध सन्तोंने दर्शन देकर आशीर्वाद दिया और कहा—'श्रीलाखाजीको आज भगवान्‌ने पालकीपर बैठाकर शीघ्र अपने पास बुलाया है।' यह सुन्दर समाचार जेवासीजीको सुनाकर वे सन्त अन्तर्धान हो गये।

श्रीकीकीजी

आप जाड़ामेरुकी पुत्री एवं लाखा चारणकी पत्नी थीं। सं० १६०० में अकाल पड़नेपर आपने पूर्वजोंकी सम्पत्तिमेंसे खूब धन बाँटा। भगवत्कृपासे धनकी विशेष वृद्धि हुई। आपके भक्तिके प्रभावको देखकर सभी लोग भक्तिनिष्ठ हो गये। इनके पुत्र श्रीनरहरिदासजी चारण हुए। माताके प्रभावसे ये भी भक्त हुए और इन्होंने वि० सं० १७८७ में 'अवतारचरित' नामक ग्रन्थकी रचना की।

श्रीगंगाबाईजी

श्रीगंगाबाई श्रीगुरुदेवको ही गोविन्दका स्वरूप मानती थीं। विवाहके पूर्व ही इन्होंने गुरुदेवसे दीक्षा लेकर भजन-पाठमें अपना मन लगाया। समयपर पिता-माताने आपका विवाह कर दिया। गौनेके समय इनके पतिदेव इन्हें लेने आये। ये अपने गुरुदेवको प्रणाम करने गयीं। तब गुरुदेवने आशीर्वाद दिया कि—'तेरो पति अस्सी वर्षतक जीवित एवं स्वस्थ रहे।' ये घरसे विदा होकर अपने पतिके साथ चलीं। वनमार्गमें इन्हें ठग मिले, उन्होंने इनके पतिको मारकर सब धन-आभूषण छीन लिये। तब आपने अपने गुरुदेवका ध्यान करके प्रार्थना की—'प्रभो! आपका आशीर्वाद मिथ्या नहीं हो सकता है, फिर यह सब कैसे हुआ?' इनकी सच्ची गुरुवाक्य-निष्ठासे प्रभु झट वहीं प्रकट हो गये और उन्होंने इनके पतिदेवको जीवितकर दुष्टोंको दण्ड दिया। इससे इनके पति भी परम भक्त हो गये और दम्पतीने आजन्म भगवद्भजन किया।

श्रीहरिके सम्मत भक्त

नरबाहन बाहन बरीस जापू जैमल बीदावत।
जयंत धारा रुपा अनभई ऊदारावत॥
गंभीरा अर्जुन्न जनार्दन गोबिंद जीता।
दामोदर साँपिले गदा ईस्वर हेमबिदीता॥
मयानंद महिमा अनँत गुढिले तुलसीदास।
हरि के संमत जे भगत ते दासनि के दास॥ १०५॥

श्रीनरवाहनजी, श्रीवाहन वरीसजी, श्रीजापूजी, श्रीजयमलजी, श्रीबीदावतजी, श्रीजयन्तजी, श्रीधाराजी, श्रीरूपाजी, श्रीअनुभवीजी, श्रीऊदारावतजी, श्रीअर्जुनजी (गम्भीरे), श्रीजनार्दनजी, श्रीगोविन्दजी, श्रीजीताजी, साँपले ग्रामवासी श्रीदामोदरजी, श्रीगदाजी, श्रीईश्वरजी, श्रीहेमबिदीताजी, श्रीमयानन्दजी और गुढ़ीले ग्रामवासी श्रीतुलसीदासजी। इन सभी सन्तोंकी महिमा अनन्त है। जो भक्त सदा भगवान्‌के मतसे सहमत हैं, मैं उनके दासोंका दास हूँ॥ १०५॥

इनमेंसे हरिके सम्मत कुछ भक्तोंका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीनरवाहनजी

महाप्रभु श्रीहितहरिवंश गोस्वामीसे दीक्षा लेनेसे पूर्व श्रीनरवाहनजी डाकुओंके सरदार थे। ये यमुना-तटपर स्थित भैगाँवके निवासी थे। वहाँ इनकी गढ़ीके अवशेष अब भी विद्यमान हैं। लोदीवंशका शासन सं० १५८३ में समाप्त हो जानेके बाद दिल्लीके आस-पास कुछ समयतक अराजकताकी स्थिति रही थी। इस कालमें नरवाहनने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी और सम्पूर्ण ब्रजमण्डलपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। आसपासके नरेश तो इनसे डरने ही लगे थे, ये दिल्लीके शासकोंकी आज्ञाका भी उल्लंघन करने लगे थे।

वृन्दावन उस समय एक घना जंगल था। श्रीचैतन्य महाप्रभुके कृपापात्र कुछ बंगाली सन्त यहाँ बसनेकी चेष्टा कर रहे थे, किन्तु डाकुओंके आतंकसे यहाँ जम नहीं पा रहे थे। इसी कालमें सं० १५९१ में श्रीहित-हरिवंश गोस्वामी श्रीराधावल्लभजीके विग्रह एवं अपने परिवार-परिकरसहित वृन्दावन पधारे और ब्रजवासियोंसे भूमि लेकर श्रीवृन्दावनमें निवास करने लगे। उनकी कीर्ति सुनकर एक दिन ये उनसे मिलने

आये। श्रीहिताचार्य उस समय अपने शिष्य नवलदासजीके साथ भगवच्चर्चा कर रहे थे। नरवाहनजी एक तरफ बैठकर उसे सुनते रहे और अपलक नेत्रोंसे महाप्रभुजीके दर्शन करते रहे। उस समय इनको ऐसा लग रहा था कि वे किसी घोर निद्रासे धीरे-धीरे जाग रहे हैं और उनके चारों ओर एक अद्भुत प्रकाश फैलता जा रहा है, जो अत्यन्त सुहावना और शान्तिदायक है। इनके हृदयमें निर्वेदका भाव उठने लगा और इनको अपने पिछले हिंसापूर्ण कृत्योंपर पश्चात्ताप होने लगा। इनकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो गयी और इन्होंने अपना मस्तक महाप्रभुके चरणोंमें रख दिया। श्रीहिताचार्यने इनकी ओर करुणार्द्र दृष्टिसे देखा और इनके मस्तकपर हाथ रखा।

नरवाहनजी और अधिक भाव-विह्वल हो उठे। इन्होंने श्रीहिताचार्यसे अपनी शरणमें लेनेकी प्रार्थना की। महाप्रभुने इनको दीक्षा दे दी और भविष्य में सम्पूर्ण क्रूर-कर्मोंको छोड़कर वैष्णवजनोचित आचरण करनेकी आज्ञा दी। इसके बाद इनको उपासनाका स्वरूप बताया और गुरु, इष्टधामकी महिमा समझायी। नरवाहनजीने अपनी गढ़ीमें वापस पहुँचकर वहाँका सम्पूर्ण वातावरण बदल दिया और सेवामें अपना सारा समय लगाने लगे। लूट-पाट बन्द कर देनेसे अब इनके तथा इनके आश्रित कर्मचारियोंकी जीविकाका साधन खेतीमात्र रह गया था या वह चुंगी रह गयी थी, जो इनके कर्मचारी यमुनाजीमें गुजरनेवाली मालवाहक नौकाओंसे लेते थे। इनके आचरण-परिवर्तनकी सूचना चारों ओर फैल गयी थी। दबदबा समाप्त हो जानेके कारण इनके कर्मचारियोंको चुंगी वसूलनेमें भी कठिनाई पड़ने लगी।

कुछ ही दिन बाद, एक जैन व्यापारी कई नावोंमें बहुमूल्य सामान लादे हुए यमुनाजीमें दिल्लीसे आगराकी ओर यात्रा कर रहा था। व्यापारीने कई बजरों (बड़ी नावों)-में अपने साथ बन्दूकोंसे सुसज्जित सैनिक तैनात कर रखे थे और वह किसीको चुंगी देनेको तैयार नहीं था। नरवाहनजीके कर्मचारियोंको ऐसे लड़ाकू व्यापारीके आनेकी पूर्व सूचना मिल चुकी थी और उन्होंने भी अपने सैनिक बुला लिये थे। चुंगी माँगनेपर व्यापारीने बन्दूकोंसे लड़ाई छेड़ दी। इधरसे भी बन्दूकें चलने लगीं और उसके सशस्त्र बजरे डुबा दिये गये। नरवाहनजीके सैनिकोंने नावोंका माल लूट लिया और व्यापारीको बन्दी बना लिया। इस युद्धमें दोनों ओरके अनेक सैनिक मारे गये और यमुनाजीका जल रक्त-रंजित हो गया।

इनके अनुगतोंने बन्दी व्यापारी एवं उसके तीन लाख मुद्राके सामानको ले जाकर नरवाहनजीके सामने प्रस्तुत किया। युद्धका वृत्तान्त सुनकर नरवाहनका मन खिन्न हो उठा और उनको उस व्यापारीपर क्रोध आ गया। ब्रजवासियोंकी हत्या करनेके कारण इन्होंने व्यापारीकी भर्त्सना की और आज्ञा दी कि उसको हथकड़ी-बेड़ीमें जकड़कर कारागारमें डाल दिया जाय और जबतक वह इतना ही धन घरसे न मँगा दे तबतक उसको छोड़ा न जाय।

नरवाहनजीकी एक दासी उस समय वहीं उपस्थित थी। व्यापारी तरुण और सुन्दर था। उसको देखकर दासीके मनमें करुणा आ गयी। वह उसकी मुक्तिका उपाय सोचने लगी। व्यापारीको कारागारमें बन्द हुए कई महीने हो गये, किन्तु वह अपने घरसे धन न मँगा सका। नरवाहनजीके कर्मचारियोंने कुछ ही दिनों में उसे फाँसीपर लटकानेकी योजना बना रखी थी और इनके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दासीको जब इसकी सूचना मिली तो वह घबड़ा उठी और एक दिन अर्द्धरात्रिके समय कारागारके द्वारपर जाकर उसने सोते हुए व्यापारीको जगाया। दासीने उससे कहा कि तुझको शीघ्र ही फाँसीपर लटकाया जायगा। व्यापारी घबड़ाकर दासीसे अपनी जीवन-रक्षाका उपाय बतानेकी प्रार्थना करने लगा। दासीने कहा 'तेरे बचनेका एक मन्त्र मैं तुझको बताती हूँ। मैं तुझको यह कण्ठी माला दे रही हूँ। इसे तू अपने गलेमें बाँध ले और

'श्रीराधावल्लभ-श्रीहरिवंश' नामकी प्रात:काल ब्राह्म वेलामें धुन लगा देना। इस नामको सुनकर नरवाहनजी स्वयं दौड़े हुए तेरे पास आ जायेंगे। तू उनसे यह कहना मैं श्रीहरिवंशजीका शिष्य हूँ, तब वे अपने हाथसे तेरी हथकड़ी खोल देंगे और तुझे तेरा सम्पूर्ण धन वापस देकर तुझे आदरपूर्वक विदा कर देंगे।'

दासीके जानेके कुछ देर बाद ही व्यापारीने पूरी शक्तिसे 'श्रीराधावल्लभ-श्रीहरिवंश' नामकी धुन लगा दी। नरवाहनजी उस समय नित्य दैनिक कर्मोंको कर रहे थे। वे श्रीहरिवंश नाम सुनते ही दौड़े हुए कारागार चले आये और व्यापारीसे यह सुनकर कि वह श्रीहरिवंशजीका शिष्य है, उससे क्षमा माँगने लगे। प्रात: होते ही इन्होंने व्यापारीको स्नान कराकर उसको नवीन वस्त्र पहनाया तथा उसका पूरा धन वापस दे दिया। चलते समय इन्होंने व्यापारीको दण्डवत्-प्रणाम करके उसकी रक्षाके लिये अपने सेवक उसके साथ कर दिये।

व्यापारीके मनपर नरवाहनजीके व्यवहारका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और वह भैगाँवसे सीधा श्रीवृन्दावन आया। यहाँ उसने श्रीहरिवंशजी महाराजके दर्शन किये और अपना सारा द्रव्य उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया। उसने अत्यन्त दीनतापूर्वक महाप्रभुजीसे प्रार्थना की कि आपका मंगलमय नाम कपटपूर्वक लेनेसे ही मेरी प्राण-रक्षा हो गयी। अब आप मुझे दीक्षा देकर मेरे इस नये जन्मको कृतार्थ कर दीजिये। महाप्रभुजीने उसका आग्रह देखकर उसको दीक्षा तो दे दी, किंतु उसका धन स्वीकार नहीं किया तथा व्यापारीको श्रीहरि-हरिजनकी सेवा करनेका आदेश देकर विदा कर दिया। उसके जानेके कई दिन बाद नरवाहनजी महाप्रभुजीसे मिले तो महाप्रभुजीने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया और उनको किसी भी परिस्थितिमें हिंसाका मार्ग न अपनानेकी शिक्षा दी। नरवाहनजीकी अद्भुत गुरुनिष्ठासे प्रसन्न होकर श्रीहिताचार्यने अपने दो पदोंमें उनके नामकी छाप दे दी! ये दोनों पद हित चौरासीमें संकलित हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीनरवाहनजीकी इस गुरुनिष्ठाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

रहैं भौगांव नांव, नरबाहन साधुसेवी, लूटि लई नाव जाकी, बंदीखानै दियौ है।
लौंडी आवै दैंन कछू खायबे को, आई दया, अति अकुलाई, लै उपाय यह कियौ है॥
बोलौ 'राधाबल्लभ' औ लेवौ 'हरिवंश' नाम, पूछै 'शिष्य' नाम कहौ, पूछी नाम लियौ है।
दई मंगवाय वस्तु राखियो दुराय बात आय दास भयौ कही रीझि पद दियौ है॥ ४१९॥

इन पदोंके अतिरिक्त नरवाहनजीकी स्वयंकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

हित चौरासीमें उक्त दोनों पद ११ और १२ संख्याके हैं। उन्हें यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

(१)

मंजुल कल कुंजदेस राधाहरि विसद वेस,
राका नभ कुमुद बन्धु 'सरद' जामिनी।
साँवल दुति कनक अंग, विहरत मिलि एक संग,
नीरद मनि नील मध्य लसत दामिनी॥
अरुण पीत नवदुकूल अनुपम अनुरागमूल
सौरभ जुत सीत अनिल मन्द गामिनी।
किसलय दल रचित सैन बोलत पिय चाटु बैन,
मान सहित प्रतिपद प्रतिकूल कामिनी॥
मोहन मन मथत मार परसत कुच नीबीहार,
वेपथ युत नेति-नेति वदत भामिनी।

'नरवाहन' प्रभु सुकेलि बहुविधि भरभरत झेलि
सौरभ रस रूप नदी जगत पावनी॥

(२)

चलहि राधिके सुजान तेरे हित सुख निधान,
रास रच्यौ श्याम तट कलिन्द नंदिनी।
निर्तत जुवती समूह राग रंग अति कुतूह,
बाजत रसमूल मुरलिका अनंदिनी॥
बंसी वट निकट जहाँ, परम रमन भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय बहैं, वायुमन्दिनी।
जाती ईसद विकास कानन अतिसय सुवास।
राका निसि सरद मास विमल चंदिनी।
'नरवाहन' प्रभु निहारि लोचन भरि घोस नारि,
नख सिख सौन्दर्य काम दुख निकंदिनी॥
बिलसहु भुज ग्रीवमेलि, भामिनि सुख सिन्धु झेलि,
नव निकुंज श्याम केलि जगत वन्दिनी॥

श्रीनरवाहनजी अपना धाम, धन और परिवार अपने गुरु हरिवंशचन्द्रकी कृपाका फल मानते थे। गुरु-चरणोंमें इनकी अनन्य आस्था थी। इस कारणसे इनका यश संसारमें फैल गया था। गुरुदेव भी इनकी गुरु-भक्तिके नये-नये चरित्र देखकर रीझ गये और अपने चौरासी पदोंमेंसे दो पदोंमें इनके नामकी छाप लगा दी। इनके साथ ही उन्होंने नरवाहनजीको निकुंजधामका सम्पूर्ण वैभव भी दरसा दिया। चाचा वृन्दावनदास कहते हैं कि नरवाहनजीके हृदयमें गुरुभक्ति इस प्रकारसे झलकती थी जिस प्रकार काँचकी शीशीमें लाल रंग झलकता है—

श्री हरिवंश प्रसाद धाम धन अरु परिवारा।
फल्यौ भक्ति विश्वास सुजस पूरित संसारा॥
श्री गुरु भये कृपाल देखि तिहिं चरित नवीने।
चौरासी पद माँहि जुगल पद ताकौ दीने॥
यह रीझ रावरी अति भई दरसाई वैभव धाम धुरु।
ज्यौं सीसी झलकि मजीठ रँग नरवाहन उर भक्ति गुरु॥

नरवाहनकी प्रशस्ति निम्नलिखित शब्दोंमें की गयी है—

श्री नरवाहन नर श्रेष्ठ भयौ व्रज मंडल माहीं।
नंद घाट भैगाम तरनिजा निकट रहाहीं॥
सर्वसु श्री हरिवंश नाम राधावर गाइन।
जग में जिनकी ख्याति इष्ट-गुरु-धर्म पराइन॥
रसिकन सुभट उदार मति सुनि हित नाम विवश हियौ॥
बनिक चरन गहि काटि बन्ध बहुत विनै करि धन दियौ॥

नरवाहनजीके सम्बन्धमें ध्रुवदासजीने अपनी 'भक्त नामावली' में कहा है—

कहा कहों नहि कहि सकौं नरवाहन कौ भाग।
श्री मुख जाकौ नाम धर्‌यौ निज वाणी अनुराग॥

श्रीजापूजी

ये परम प्रेमी भगवद्भक्त थे। नित्य ही सन्त-भगवन्त-सेवा एवं उत्सवोंकी धूम आपके यहाँ मची रहती थी। अपना सर्वस्व व्यय करनेके बाद आप सन्त-सेवाके निमित्त राहजनी करने लगे। बड़े-बड़े धनी-मानियोंको लूटते थे। गरीबोंको कभी भी नहीं सताते थे। लूटकर लाये धनको अपने उपयोगमें नहीं लेते थे। एक बार एक सुनारको आपने लूटा और आकर भण्डारा किया। सुनारने आपके घरपर आकर झगड़ा किया। झगड़ा बढ़ते देखकर सिपाहियोंने दोनोंको पकड़कर राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने दोनोंको कारागारमें डाल दिया। श्रीजापूजीको अपनी चिन्ता न थी, पर सन्त-सेवासे वंचित होनेसे चिन्तित हुए। रातको राजासे स्वप्नमें भगवान्‌ने कहा कि—तूने मेरे भक्तको कैदखानेमें बन्द कर रखा है। उसे शीघ्र छोड़ दे, नहीं तो तेरा कल्याण नहीं होगा। सबेरा होते ही राजाने श्रीजापूजीको कारागारसे मुक्त कर दिया और आपको निरपराध समझा। सुनारको अपराधी समझकर उसको नहीं छोड़ा। श्रीजापूजीने सुनारके बिना अकेले कैदसे मुक्त होना स्वीकार नहीं किया। दूसरी रातको भगवान्‌ने पुनः स्वप्न दिया और कहा कि—'जैसा भक्त कहते हैं, वैसा ही करो।' राजाने दोनोंको छोड़ दिया। आपने सच्ची घटना बता दी और साधु-सेवाकी महिमा बतायी। इससे राजा और सुनार दोनोंके हृदयमें भगवद्भक्ति एवं सन्त-सेवाकी निष्ठा दृढ़ हुई। भगवान् जापूजीकी सेवासे सन्तुष्ट हो गये और भूगर्भमें गड़े धनको बताकर उससे ही सन्त-सेवा करनेका आदेश दिया। जीवनपर्यन्त आपने भगवन्नाम-जप और सेवाके व्रतको निभाया। उससे प्रभावित होकर अनेक लोगोंने भी भक्तिव्रत ग्रहण किया।

श्रीरूपाजी

श्रीरूपाजीका पूरा नाम श्रीरूपरसिकदेवाचार्यजी था। आप बड़े ही सन्तसेवी थे। आपका चरित छप्पय १०० में भी वर्णित है।

श्रीअर्जुनजी

आप सन्त-सेवानिष्ठ भक्त थे। एक बार आपने सन्त-सेवाके निमित्त एक भैंस खरीदी। उसके दूध-दही और घीसे सन्त-सेवा होने लगी। कुछ दिनोंके बाद अच्छी भैंस देखकर उसे चोर लोग चुरा ले गये। सन्त-सेवामें बाधासे आपके मनमें दुःख हुआ। आप भगवान्‌से ही रूठ गये कि आपने ही भैंस चोरी जाने दी, आपने मुझे जगाया नहीं, भैंसकी रक्षा नहीं की। भगवान्‌की सेवा किये बिना ही जाकर जंगलमें बैठ गये। आपके प्रणयरोषसे प्रभावित होकर प्यारे प्रभु प्रसन्न हो गये। आपका रूप धारणकर चोरोंके पास गये, उन्हें भयभीत करके भैंस ले आये। गाँवके किसी परिचित आदमीने इन्हें जंगलमें बैठे देखकर कहा—कहिये, जी! भैंस कहाँ मिली? इन्होंने कहा कि—क्या भैंस मिल गयी? उसने कहा—घरपर बँधी है। घरपर आकर आपने लोगोंसे पूछा—इसे कौन कहाँसे ले आया? लोगोंने कहा—कुछ देर पहले आप ही तो लाये। अब अनजानकी तरह पूछ रहे हो। यह सुनकर आपने समझ लिया कि यह लीला लीलाविहारीकी है। प्रभुको प्रणामकर सेवा की। सन्त-सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीठाकुरजी एक-न-एक लीला इन्हें दिखाया ही करते।

श्रीदामोदरजी

किशनगढ़ (राजस्थान)-से कुछ दूर पूर्व दिशामें काचरिया नामक ग्राममें पं० श्रीकेशवानन्दजी नामके ब्राह्मण रहते थे। इनके यहाँ श्रीयुगलकिशोरकी उपासना थी। इन्हींकी कृपासे पण्डितजीको

दामोदर नामक पुत्र प्राप्त हुआ। पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे कुमारावस्थामें ही इन्हें वैष्णव धर्माचरणमें निष्ठा हो गयी और आप भजन-पाठमें लग गये। पिता-माताने एक सुशील कन्याके साथ विवाह कर दिया। इससे इनकी उपासनामें बाधा न हुई। पत्नी भी पतिव्रता एवं भक्ता थी। एक बार आप पुष्कराजको गये। वहाँ आपको श्रीहरिव्यासदेवजीके दर्शन मिले। आपने उनकी शरण ग्रहणकर उनसे मन्त्रोपदेश एवं उपासनाकी विधि प्राप्त की। गुरु-आज्ञासे आप घर आये। आपको एक पुत्र और एक कन्या हुई। यथासमय आपने उसका विवाह कर दिया। कुछ समय बाद पत्नीका स्वर्गवास हो गया। इससे आपका वैराग्य और भी दृढ़ हो गया। साँपला ग्राममें आपकी लड़की ब्याही थी, वहाँके भक्तोंकी प्रार्थना मानकर आपने वहीं आकर पर्णकुटीमें निवास किया और भजन-सत्संगसे लोगोंको सुखी किया। प्रतिमास आप द्वारकापुरीको दर्शनार्थ जाया करते थे। उस समय आपके वियोगसे दुखी भक्तोंने चाहा कि यहीं द्वारकानाथजी आकर विराजें तो अच्छा है। यह बात आपके मनमें भी बैठ गयी। आपने दोनों हाथोंमें तुलसीके गमले लेकर अनशन व्रत धारणकर द्वारकाकी यात्रा की। स्नान दर्शनकर आपने अपनी प्रार्थना सुनायी। योगमायाके द्वारा भगवान्ने इन्हें साँपला भेज दिया। मनोरथ अपूर्ण देखकर आपका चित्त बेचैन हो गया। हरिकी प्रेरणासे श्रीनारदजीने आकर कहा कि—धैर्य धारण करो, कुछ दिन बाद लाखा बंजाराकी बालद आयेगी। बैलकी पीठसे गिरे बोरेसे आपको श्रीविग्रह मिलेगा। आप प्रतीक्षामें रहे। मार्गशीर्ष कृष्ण ९ सं० १४७४ के दिन आयी बालदके पीठसे आपके सामने बोरा गिरा। आपने दौड़कर बोरा पकड़ा और उसमेंसे श्रीयुगलकिशोरजी, श्रीबलरामजीकी प्रतिमाएँ प्राप्त कीं। इस घटनासे ग्रामवासी एवं बंजारे सभी अति प्रभावित हुए। प्रतिमाएँ पर्णशालामें पधरायी गयीं। पश्चात् लाखा बंजारेने एक भव्य मन्दिर बनवाया और सबोंकी ओरसे सेवा-पूजाका विशेष प्रबन्ध हुआ। आपने बड़े लाड़-चावके साथ सेवा की। प्रतिवर्ष भाद्र शुक्ल एकादशीको जलयात्राका उत्सव होता है। श्रीदामोदरजीकी भक्तिके प्रभावसे जीवोंका कल्याण हुआ।

श्रीमयानन्दजी

आनन्दमय श्रीमयानन्दजी गुरु-गोविन्दके समान ही सन्तोंका भी सत्कार किया करते थे। अपनेको भक्तोंका दासानुदास कहते थे। एक बार आपको एक बहुत बढ़िया बारीक चादर ओढ़े देखकर एक साधुने व्यंग्य करते हुए कहा कि—सेवकका यह धर्म नहीं है कि स्वामीको उघारा रहने दे और स्वयं चादर ओढ़े। यह सुनकर आपने कहा कि यह चादर तो भगवान्ने हमें ही ओढ़नेको कहा है। इसपर उसने कहा—यदि ऐसा है तो आपको तो भगवान् दूसरी भी दे देंगे, यह चादर हमें दे दीजिये। श्रीमयानन्दने उसकी आज्ञा मानकर प्रसन्नतासे अपने शरीरपरसे चादर उतारकर उसे ओढ़ा दिया। उसी समय आकाशसे एक चादर आयी और मयानन्दजीके शरीरसे पूर्ववत् लिपट गयी और उस परिहासकारीके शरीरसे चादर उड़ गयी। श्रीमयानन्दने पुनः उसे चादर दी तो फिर वही हुआ। इनके शरीरपर चादरका अभाव नहीं हुआ और उसके शरीरपर चादर रह नहीं सकी। ऐसा चमत्कार देखकर वह इनके चरणोंमें पड़ गया और अपने व्यंग्य—परिहासके लिये क्षमा प्रार्थना करने लगा।

सन्तसेवाको भगवत्सेवासे बढ़कर माननेवाले भक्त

यहै बचन परमान दास गाँवरी जटियाने भाऊ।
बूँदी बनियां राम मँडौते मोहनबारी दाऊ॥

माडौठी जगदीसदास लछिमन चटुथावल भारी।
सुनपथ में भगवान सबै सलखान गुपाल उधारी॥
जोबनेर गोपाल के भक्त इष्टता निरबही।
श्रीमुख पूजा संत की आपुन तें अधिकी कही॥ १०६॥

भगवान्ने अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंकी पूजाको अपनी पूजासे श्रेष्ठ कहा है। इसी वचनको प्रमाण मानकर इन भक्तोंने सन्तोंकी सेवाको भगवान्की सेवासे बढ़कर माना और किया। गाँवरी ग्रामके श्रीदासजी, जटियानेके श्रीभाऊजी, बूँदीके रामदासजी, मण्डौतेके श्रीमोहन बारीजी और श्रीदाऊजी, माडौठीके श्रीजगदीशदासजी, चटुथावलके श्रीलक्ष्मणजी, सुनपथके श्रीभगवान नामक भक्तने सन्तोंकी सेवा की। श्रीगोपालजीने सम्पूर्ण सलखान गाँवका उद्धार सन्त-सेवाके प्रतापसे किया। जोबनेरके श्रीगोपालजी भक्तने भक्तोंमें इष्टभावका सदा निर्वाह किया॥ १०६॥

इनमेंसे कतिपय सन्तसेवी भक्तोंका चरित इस प्रकार है—

श्रीदासजी

आप सन्तोंकी सेवाको भगवान्की सेवासे बढ़कर मानते थे। एक बार आपके यहाँ कई सन्त आये। सन्ध्या-आरती हुई। रात्रि-भोजनके बाद आप सन्तोंकी चरण-सेवामें लग गये। मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको शयन कराना भूल गये। प्रातःकाल मंगलाके समय आप मन्दिरमें जाने लगे तो मन्दिरके किवाड़ भीतरसे बन्द मिले। प्रयत्न करनेपर भी किवाड़ नहीं खुले। तब आप बड़े असमंजसमें पड़ गये। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'अब किवाड़ नहीं खुलेंगे, मेरी सेवा रहने दो, अब सन्तोंकी ही सेवा करो। मैं रातभर सिंहासनपर खड़ा रहा हूँ, तुमने मुझे शयन नहीं कराया।' यह सुनकर दासजीने सरलभावसे निवेदन किया—प्रभो! सन्त-सेवामें लगे रहनेके कारण यदि आपकी सेवामें चूक हुई तो आपके नाराज होनेका भय मुझे बिलकुल नहीं है। आपकी सेवामें लगा रहूँ और सन्त-सेवामें भूल-चूक हो जाय, तब मुझे आपकी नाराजगीका भारी भय है। यह सुनते ही प्रभु प्रसन्न हो गये। किवाड़ खुल गये। 'हम तुमपर बहुत प्रसन्न हैं, इस भावसे सन्त-सेवा करनेवाले मुझे अपने वशमें कर लेते हैं' ऐसा कहकर भगवान्ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया। दासजी चरणोंमें लिपट गये। प्रभुने उठाकर छातीसे लगा लिया।

बूँदी बनिया

श्रीरामदासजी बूँदी नगरके निवासी थे। जातिके बनिया थे। अतः वर्ण-धर्मानुसार व्यापार करते हुए भगवद्भक्तिकी साधना करते थे। अपनी पीठपर नमक-मिर्च-गुड़ आदिकी गठरी लादकर गाँवोंमें फेरी लगाते थे। कुछ नगद पैसे और कुछ अनाज भी मिलता था। एक दिन फेरीमें सामान बिक गया और बदलेमें अनाज ही विशेष मिला। उसकी गठरी सिरपर रखकर घरको चले। वजन अधिक था, अतः भारसे पीड़ित थे, पर ढो रहे थे। एक किसानका रूप रखकर भगवान् आये और बोले—'भगतजी! आपका दुःख मुझसे देखा नहीं जा रहा है। हमें भार वहन करनेका भारी अभ्यास है, हमें भी बूँदी जाना है। आपकी गठरी मैं पहुँचा दूँगा।' ऐसा कहकर भगवान्ने भक्तके सिरका भार अपने ऊपर लिया और तीव्र गतिसे आगे बढ़े। थोड़ी ही देरमें वे इनकी आँखोंसे ओझल हो गये। तब ये सोचने लगे—'मैं इसे पहचानता नहीं हूँ और यह भी शायद मेरा घर न जानता होगा। अच्छा, जाने दो राम करै सो होय।' राम-कीर्तन करते हुए चले। मनमें आया कि आज थका हूँ, घर पहुँचते ही यदि गरम जल मिल जाय, तो झट स्नानकर सेवा-पूजा कर लूँ

और आज कढ़ी-फुलकाका भोग लगे तो अच्छा है। इधर किसान रूपधारी भगवान्ने इनके घर आकर गठरी पटक दी और पुकारकर कह दिया कि—'भगतजी आ रहे हैं। नहानेके लिये पानी गरम कर लो और भोगके लिये कढ़ी-फुलका बना लो। उन्होंने कह दिया है।' कुछ देर बाद श्रीरामदासजी घर आये तो देखा कि अनाजकी गठरी पड़ी है। स्त्रीने कहा—'जल गरम हो चुका है, झट स्नान कर लो। कढ़ी भी तैयार है, सेवा करोगे तबतक फुलके भी तैयार हो जायेंगे।' श्रीरामदासजीने कहा—'तुमने मेरे मनकी बात कैसे जान ली?' उसने कहा—'उस गठरी लानेवालेने कहा था। मुझे क्या पता तुम्हारे मनकी बातका।' अब तो श्रीरामदासजी समझ गये कि आज रामजीने भक्तवात्सल्यवश बड़ा कष्ट सहा। ध्यान किया तो प्रभुने प्रसन्न होकर कहा—'तुम नित्य सन्त-सेवाके लिये इतना श्रम करते हो, मैंने तुम्हारी थोड़ी-सी सहायता कर दी, तो क्या बिगड़ गया।' आपने स्त्रीसे पूछा—'तूने उस गठरी लानेवालेको देखा था क्या?' उसने कहा—'मैं तो भीतर थी, उसके शब्द अवश्य ही अति मधुर थे।' आपने कहा—वे साक्षात् भगवान् ही थे। तभी तो उन्होंने मेरे मनकी बात जान ली। वे सन्त-सेवासे अति सन्तुष्ट होते हैं। अब यदि प्रेमसे सन्त-सेवा करेगी तो प्रभु पुनः दर्शन देंगे। स्त्री पछता रही थी, मैं दर्शन नहीं कर पायी। भक्तजी पछताते थे कि मैंने प्रभुके सिरपर बोझ रखा था। यह अनुचित किया। यह घटना हृदयमें घर कर गयी। तबसे आप सदा भजन-ध्यानमें ही तत्पर रहने लगे।'

श्रीरामदासजी सन्तोंकी सेवा उनकी रुचिके अनुसार ही करते थे। एक दिन आपके यहाँ कई सन्त पधारे। आपने उनसे पूछा—'महाराज! आप लोग मेरे भगवान्का प्रसाद पायेंगे या अलग बनाकर भोग लगाकर पायेंगे?' सन्तोंने कहा—'हम तो आपके भगवान्का ही प्रसाद लेंगे।' भक्तपत्नीने रसोई बनायी, उस दिन ज्वारकी रोटियोंका भोग लगा। दो सन्तोंने देखकर कहा कि—'हम तो ज्वारकी रोटी नहीं खायेंगे।' आपने पत्नीसे पूछा—'तूने ज्वारकी रोटी क्यों बनायी?' उसने कहा—नवीन अन्न प्रभुको प्रिय समझकर मैंने ज्वारकी रोटी बनायी। दूसरे कभी भगवान्ने ज्वारकी रोटी खानेसे इनकार नहीं किया था, अतः मैंने ज्वारकी रोटी बनायी।' इसपर आपने कहा—'भगवान्का भोग अनन्त स्थानोंमें लगता है, केवल यहीं भोग लगता है, ऐसी बात नहीं। वे तो अपनी रुचिका भोग कहीं-न-कहीं लगा ही लेते हैं, किंतु ये सन्त तो कृपा करके यहीं आज प्रसाद लेंगे, कहीं अन्यत्र नहीं जायेंगे। अतः सन्तोंसे पूछकर उनकी रुचिके अनुसार ही उन्हें भोग लगाकर पवाया करो।' ऐसा कहकर आपने तुरंत गेहूँकी रोटियाँ बनवायीं और सन्तोंको भोजन करवाया।

श्रीरामदासजीके यहाँ अनेक साधु-सन्तोंके भोजन नित्य होते। अतः कुछ दुष्टोंने इसे सह न सकनेके कारण राजासे शिकायत की कि 'इस बनियाके पास अपार सम्पत्ति है, व्यर्थ ही उसे लुटाता है, आपको कर भी नहीं देता है। सबको ठगता है। अतः इसकी सम्पत्तिको आप छीनकर राजकोषमें जमा कर लें।' राजाने उनकी बात मानकर सिपाही भेजे। बुलाकर कहा—'तुम हमारा कर दो, अन्यथा तुम्हारी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी।' भगतजीने कहा—'मेरे पास धनका संग्रह नहीं है, जो कुछ कमाता हूँ, उसे सन्त-सेवामें लगा देता हूँ। आप मेरे घरकी तलाशी ले लें। जो भी सोना-चाँदी हो, वह आप ले लें।' किसीने राजाको उकसाते हुए कहा—***'नीबू बनिया आम ये दाबे ते रस देयँ।'*** राजाने इन्हें कारागारमें बन्द कर दिया और घरका सम्पूर्ण अन्न-धन छीननेका विचार किया। श्रीरामदासजीके मनमें चिन्ता हुई। सेवामें बाधा जानकर आपने श्रीलक्ष्मणलालका स्मरण किया। श्रीलक्ष्मणजीने प्रकट होकर इन्हें बन्धनसे मुक्त कर दिया। स्वयं कारागारमें रामदासका रूप धारणकर बँध गये। पुनः इनके घरपर सन्त-सेवाकी धूम देखकर लोगोंने राजासे फिर चुगली की। राजाने कहा—हमने तो उसे कारागारमें बन्द करवा दिया है, फिर वह घरपर कैसे सन्तसेवा

कर रहा है ? राजाने सिपाहियोंसे कारागारमें जाकर देखनेको कहा तो वहाँ रामदास बन्द थे, पुनः शिकायत करनेवालोंके साथ जाकर उनके घरपर देखा, तो दोनों जगहोंपर रामदास है। यह सुनकर राजाने दोनोंको दरबारमें हाजिर करनेका हुक्म दिया। दरबारमें आते-आते श्रीलक्ष्मणजी अन्तर्धान हो गये। रहस्य जानकर राजा आपके चरणोंमें पड़ गया। अपराध क्षमाके लिये विनती करने लगा। आजीवन आपने सन्त-सेवा-व्रत निभाया। आपसे प्रेरणा प्राप्तकर राजा-प्रजा सभीने भक्त-भगवन्त-सेवाका नियम लिया।

भक्तवर श्रीलक्ष्मणजी

आप बड़े सद्भावसे साधुओंकी सेवा करते थे। बिना किसी रोक-टोकके आपके यहाँ सन्तोंका दिन-रात आवागमन रहता था। आपकी इस उदारताको देखकर एक दुष्टने भी सन्तवेष धारण कर लिया और कई दिनतक आपके यहाँ रहा। आप उसकी भी सेवा करते रहे; क्योंकि आप वेषनिष्ठ सन्त थे। एक दिन मौका पाकर वह भगवान्के मन्दिरमें घुस गया। भगवान्के आभूषण-पार्षदोंको लेकर भाग चला। यह देखकर भगवान्ने एक सिपाहीका रूप धारणकर उसे जा पकड़ा और उसे श्रीलक्ष्मण भक्तके पास लाये और बोले—'देखो, यह तुम्हारे मन्दिरका सामान चुराकर ले जा रहा है।' आपने कहा—इन सन्तको सामानकी आवश्यकता होगी। इसलिये ले जा रहे हैं। मेरे पास जो कुछ है, इन्हींका है। इन्हें ले जाने दो। इसमें न तो चोरी है और न इन्हें दण्ड ही दिया जा सकता है। अब वे सिपाही भगवान् क्या करते? वह सामान लेकर चला तो भगवान् भी साथ-साथ चले। फिर उसके आगे-आगे चलने लगे, इसके बाद अन्तर्धान हो गये। इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ानेपर भी नहीं दीखे। इस तरह कभी प्रकट कभी अप्रकट होते देखकर उसे भय हुआ। उसने मनमें अनुमान कर लिया कि भक्तोंके हितकारीकी यह लीला है। मैं भक्तकी चोरी करके दुःख पाऊँगा। श्रीलक्ष्मणजीकी सहज सरलताका स्मरण करता हुआ वापस लौट आया। उसने सब सामान देकर हृदयके दुष्ट भावको खोलकर रख दिया और चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगने लगा। भक्तके प्रतापसे वह सच्चा सन्त बन गया।

श्रीगोपालजी

जोबनेर ग्रामवासी भक्त श्रीगोपालजीने भगवान्से बढ़कर भक्तोंको इष्ट माननेकी, सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की थी और उसका पालन किया। आपके कुलमें एक सज्जन (काकाजी) विरक्त-वैष्णव हो गये थे। उन्होंने सन्तोंके मुखसे इनकी निष्ठाकी प्रशंसा सुनी कि 'भक्तोंको इष्टदेव मानते हैं।' तब काकाजी श्रीगोपाल भक्तकी परीक्षा लेनेके विचारसे उनके द्वारपर आये। इन्हें आया देखकर श्रीगोपाल भक्तजीने झट आकर सप्रेम साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया कि 'भगवन्! अपने निज घरमें पधारिये।' उन्होंने (परीक्षाकी दृष्टिसे) उत्तर दिया कि 'मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं स्त्रीका मुख न देखूँगा।' तुम्हारे घरके भीतर जाकर मैं अपनी इस प्रतिज्ञाको कैसे छोड़ दूँ? तब श्रीगोपालजीने कहा—'आप अपनी प्रतिज्ञा न छोड़िये।' सभी स्त्रियाँ एक ओर अलग छिप जायेंगी। आपके सामने नहीं आयेंगी। ऐसा कहकर घर जाकर उन्होंने सब स्त्रियोंको छिपा दिया। तब इनको घर ले गये। इसी बीच सन्त-दर्शनके भावसे या कौतुकवश एक स्त्रीने झाँककर देखा, स्त्रीके झाँकते ही उन्होंने गोपाल भक्तके गालपर एक तमाचा मारा। श्रीगोपालजीके मनमें जरा-सा भी कष्ट नहीं हुआ।

वे हाथ जोड़कर बोले—'महाराजजी! आपने एक कपोलको तमाचा प्रसाद दिया, वह तो कृतार्थ हो गया। दूसरा आपके कृपाप्रसादसे वंचित रह गया। अतः उसे रोष हो रहा है, कृपा करके इस कपोलपर भी तमाचा मारकर इसे भी कृतार्थ कर दीजिये।' प्रियवाणी सुनकर उस वैष्णवके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह श्रीगोपालजीके चरणोंमें लिपट गया और बोला—'आपकी सन्तनिष्ठा अलौकिक है। मैंने आकर आपकी

परीक्षा ली।' आज मुझे आपसे बहुत बड़ी यह शिक्षा मिली कि 'भक्तको अति सहनशील होना चाहिये तथा वैष्णवोंको भगवान्‌से भी बढ़कर मानना चाहिये।'

श्रीप्रियादासजीने इस सन्तनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

'जोबनेर' बास सो 'गोपाल' भक्त-इष्ट ताकों कियो निर्बाह, बात मोको लागी प्यारियै।
भयौ हौ बिरक्त कोऊ कुलमें, प्रसंग सुन्यौ, आयौ यौ परीक्षा लैन, द्वार पै बिचारियै॥
आय पर्‌यौ पाँय, 'पाँय धारौ निज मन्दिर मैं', 'सुन्दरि न देखौं, मुख पन, कैसे टारियै'।
'चलो' जिन टारौ तिया रहैंगी किनारौ, करि, चले, सब छिपी, नैकु देखी, याकै मारियै॥ ४२०॥
एक पै तमाचो दियौ, दूसरे ने रोस कियौ, 'देवौ या कपोल पै' यों बानी कही प्यारी है।
सुनि, आँसू, भरि आये, जाय लपटाये पाँय, कैसे कही जाय यह रीति कछु न्यारी है॥
'भक्त इष्ट' सुन्यौ, मेरे बड़ौ अचरज भयो, लई मैं परीक्षा, भई सिक्षा मोको भारी है।
बोल्यौ अकुलाय, 'अजू पैयै कहाँ भाय, ऐपै साधू सुख पाय कहैं, यही मेरी ज्यारी हैं'॥ ४२१॥

श्रीलाखाजी

मुरधरखंड निवास भूप सब आग्याकारी।
राम नाम बिस्वास भक्त पद रज ब्रतधारी॥
जगन्नाथ के द्वार डँडौतनि प्रभु पै धायो।
दई दास की दादि हुँडी करि फेरि पठायो॥
सुरधुनी ओघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरो।
परमहंस बंसनि मैं भयो बिभागी बानरो॥ १०७॥

भक्तवर श्रीलाखाजी मारवाड़के अन्तर्गत मुरधरखण्डके निवासी थे। भजनका ऐसा प्रभाव था कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा आपके आज्ञाकारी थे। आपका श्रीरामनाममें अविचल विश्वास था तथा भगवद्भक्तोंकी श्रीचरण-रजको सिरपर धारण करनेका दृढ़ नियम था। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने घरसे दण्डवत्-यात्रा करते हुए आप उनके द्वारपर पहुँचे। भगवान्‌ने अपने दासकी सहायता की तथा इनकी इस भक्तिकी प्रशंसा की और कन्याके विवाहके लिये हुण्डी कराकर भेजा। जैसे गन्दा नाला श्रीगंगाजीकी धारामें मिलकर गंगारूप हो जाता है और उसका नाम बदल जाता है, उसी प्रकार वानरवंश (राजदरबारमें नाच-गाकर आजीविका चलानेवाली एक जाति)-में उत्पन्न होकर भी श्रीलाखाजी परमहंसोंके वंशकी कमनीय कीर्ति, पावन पुण्य ज्ञान, साधन-भजन एवं भक्ति-भावमें हिस्सेदार हुए॥ १०७॥

भक्तश्रेष्ठ श्रीलाखाजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीलाखाजी मारवाड़के वानरवंशी थे, इनकी जातिके लोग राज दरबारमें नृत्य-गानकर आजीविका चलाते हैं। ये नित्य साधुओंकी सेवा करते थे। जब सन्त-सेवा ये कर रहे थे, उसी समय बड़ा भारी अकाल पड़ा, लोग भूखों मरने लगे। तब कण्ठीमाला और तिलक धारण करके बहुतसे (नास्तिक-आस्तिक) लोग आपके यहाँ आने लगे। इन सबका भरण-पोषण कहाँसे, कैसे और कहाँतक करें? अन्ततोगत्वा बहुत सोच-विचारकर इन्होंने यह निश्चय किया कि इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यत्र चलकर रहें। इनके इस निश्चयको जानकर भगवान्‌ने इनसे स्वप्नमें कहा—लाखाजी! ध्यान देकर

सुनो—अन्यत्र जानेका विचार न करो। हमने एक उपाय कर दिया है, तदनुसार तुम्हारे पास एक गाड़ीभर गेहूँ आयेंगे और एक भैंस आयेगी। जब गाड़ीभर गेहूँ आ जाय, तब उन्हें कोठीमें भर देना और उसके ऊपरके मुखको बन्द कर देना। उसमेंसे निकालनेके लिये नीचेका मुँह खोल देना। उससे आवश्यकतानुसार अधिक-से-अधिक गेहूँ निकलेंगे। उन्हें पीसकर रोटियाँ बनवाना और भैंसके दूधको जमा करके मथ लेना। जो घी निकले उससे रोटियोंको चुपड़ देना और छाँछके साथ सबको भोजन कराते रहना। इतना सुननेके बाद श्रीलाखाजीकी आँखें खुल गयीं। उन्होंने स्वप्नमें प्राप्त भगवान्‌की आज्ञा अपनी धर्मपत्नीको सुनायी और कहा कि यह तो हमारे मनकी भावती बात हो गयी। स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह जानेकी आवश्यकता नहीं है। प्रातःकाल होते ही गेहूँभरी गाड़ी और भैंस आ गयी। इन्होंने भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार उसी रीतिसे साधु-सन्तोंकी सेवा की और अनेक प्रकारसे उन्हें प्रसन्न किया।

श्रीप्रियादासजी लाखाजीकी भक्ति और भगवान्‌की इस लीलाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

'लाखा' नाम भक्त, वाकौ 'बानरौ' बखान कियौ, कहै जग डोम जासों मेरो सिरमौर है।
करै साधुसेवा बहु पाक डारि मेवा, सन्त जेंवत अनन्त सुख पावै कौर कौर है॥
ऐसे में अकाल पर्‌यौ, आवै धरि माल जाल, कैसे प्रतिपाल करैं, ताकी और ठौर है।
प्रभूजू स्वपन दियौ 'कियौ मैं जतन एक गाड़ी भरि गेहूँ भैंसि आवै करौ गौर है'॥ ४२२॥
'गेहूँ कोठी डारि मुँह मूँदि नीचे देवो खोलि' निकसै अतोल पीस रोटी लै बनाइयै।
दूध जितौ होय सो जमायकै बिलोय लीजै, दीजै यों चुपरि संग छाँछ दै जिमाइयै॥
खुलि गई आखैं, भाखैं, तिया सों जु आज्ञा दई, भई मन भाई, अजू हरि गुन गाइयै।
भोर भये गाड़ी भैंसि आई, वही रीति करी, करी साधुसेवा नाना भाँतिन रिझाइयै॥ ४२३॥

गेहूँभरी गाड़ी और भैंस श्रीलाखाजीके घर कैसे आयी, उसका वर्णन इस प्रकार है—श्रीलाखाजीके निवास-स्थानसे कुछ दूरपर एक गाँवमें सभा हुई और उसमें यह निश्चय हुआ कि अपने परिवारका अपना जो एक भाई धनहीन हो गया है, उसके लिये चन्दा किया जाय और धनका संग्रह करके उसकी सहायता की जाय। इस प्रस्तावके पास हो जानेके बाद एक सज्जन व्यक्तिने उठकर सभामें कहा कि हमलोगोंने स्वार्थके भारको तो चुका दिया, परंतु इससे पारलौकिक लाभ सम्भव नहीं है। परमार्थके लिये सन्तसेवी श्रीलाखाजीकी कुछ सेवा-सहायता कीजिये, जिससे हमलोग भवसागरको पार कर सकें। यह सुनकर सब लाज-संकोचसे दब गये और उन्होंने उगाही करके पचास मन गेहूँ एकत्र किये। ग्रामसभाके प्रधानने दूध देती हुई अपनी (बीस सेर दूध देनेवाली) एक भैंस गेहूँभरी गाड़ीके साथ भेज दी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आई कौन रीति, वाकी प्रीतिहूँ बखान कीजै, लीजै उर धारि सार भक्ति निराधार है।
रहै ढिग गाँव, तहाँ सभा एक ठाँव भई, टूटि गयो भाई सो उगाही कौ विचार है॥
बोलि उठ्‌यौ कोऊ 'यौं व्यौहारको तौ भार चुक्यौ, लीजियै सँभारि 'लाखा' संत भवपार है।
लाज दबि तिन दिए गेहूँ लै पचास मन, दई निज भैंसि संग सब सरदार है॥ ४२४॥

श्रीलाखाजी अपने निवास-स्थान मारवाड़ देशसे चले। इन्होंने हृदयमें प्रतिज्ञा की कि मैं साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए लगभग सात सौ कोस दूर श्रीजगन्नाथपुरीको जाऊँगा और श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करूँगा। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आप साष्टांग दण्डवत् करते हुए श्रीजगन्नाथधामके समीप पहुँचे।

प्रेम-पारखी प्रभुने इन्हें लिवा लानेके लिये पण्डोंके हाथ पालकी भेजी, पर लाखाजीने हाथ जोड़कर उनसे कहा—महाराज! मैं भला पालकीपर चढ़कर कैसे चल सकता हूँ, यह सेवापराध है। मैं साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता हुआ ही जाकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करूँगा—मेरी यही प्रतिज्ञा है। उसका पालन करूँगा। पण्डे लोग बोले—भगवान्‌ने बड़े प्रेम-भावपूर्वक आज्ञा दी है, अतः उसका पालन कीजिये। जब श्रीलाखाजी नहीं माने, तब पण्डोंने पुनः कहा कि प्रभुने आज्ञा दी है कि आप मेरे लिये जो भक्तोंके नामकी सुमिरनी बनाकर लाये हैं, शीघ्र आकर अब मुझे पहनाइये। यह सुनकर श्रीलाखाजीने पूर्ण विश्वास कर लिया कि सचमुच पालकीपर चढ़कर जानेकी आज्ञा दी है। श्रीलाखाजी भगवान्‌के अनुपम भक्तवात्सल्यको स्मरण करके प्रभुकी प्रसन्नताके लिये पालकीपर चढ़ते हुए बोले—अब मैं जान गया कि श्रीजगन्नाथजी मेरे लिये पालकी भेजकर मेरी महिमा बढ़ाना चाहते हैं। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें पहुँचकर प्रभुकी मनोहर झाँकीका दर्शनकर श्रीलाखाजीने अपने तन-मन और प्राणोंको श्रीचरणोंमें न्यौछावर कर दिया।

भगवान् जगन्नाथजीकी इस भक्तवत्सलता और लाखाजीकी प्रतिज्ञाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

मारवार देस तें चल्यौ ई साष्टांग किये, हिये 'जगन्नाथ देव याही पन जाइयै'।
नेह भरि, भारी देह वारि फेरि डारी, कैसे करै तनधारी, नेकु श्रम मुरझाइयै॥
पहुँच्यौ निकट जाय, पालकी पठाइ दई, कहैं 'लाखा भक्त कौन ? बेगि दै बताइयै'।
काहू कहि दियौ, जाय कर गहि लियौ, 'अजू! चलौ प्रभु पास, इहि छिनही बुलाइयै'॥ ४२५॥
'कैसे चढ़ौं पालकी मैं ? पन प्रतिपाल कीजै दीजै मोकों दान, यही भाँति जा निहारियै'।
बोले प्रभु कही भाय सुमिरनी बनाय ल्याये, अब पहिराय मोहिं सुनि उर धारियै॥
चढ़े 'चढ़ि बढ़ि कियौ चाहै, यह जानी मैं तो, पढ़ि पढ़ि पोथी प्रेम मोपै बिसतारियै'।
जाय कै निहारे, तन मन प्रान वारे, जगन्नाथजू के प्यारे नेकु ढिग तें न टारियै॥ ४२६॥

श्रीलाखाजीकी एक कन्या गंगाबाई थी, वह विवाहके योग्य हो गयी थी, परंतु आप उसका विवाह नहीं करते थे। आप अपने मनमें सोचते थे कि मेरे पास जो भी धन है अथवा आता है, वह सब भगवान् और भक्तोंका है, उन्हींकी सेवाके लिये है। उसे कन्याके विवाहमें कैसे लगाऊँ? श्रीजगन्नाथजीने श्रीलाखाजीसे कहा कि तुम अपनी लड़कीका विवाह करनेके लिये मुझसे धन ले लो और उसका विवाह कर दो। परंतु श्रीलाखाजीके मनमें यह बात ठीक नहीं जँची। पुरीमें कुछ दिन निवास करनेके उपरान्त आप अपने घरके लिये चल दिये। प्रभुसे विदा माँगने इस संकोचसे नहीं गये कि प्रभु कुछ देंगे। चलते समय आपको भगवान्‌का विरह व्याप गया। व्याकुलतावश आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह चलने लगा। उसी क्षण श्रीजगन्नाथजीने अपने एक भक्त राजाको स्वप्नमें धन देनेकी आज्ञा दी। उसने रास्तेमें चौकीदार बैठा दिये और श्रीलाखाजीके आनेपर उनसे प्रार्थना करते हुए कहा कि 'स्वप्नमें मुझे आदेश हुआ है। अतः अब आप अधिक हठ न कीजिये, धन ले लीजिये।' ऐसा कहकर उसने हुण्डी लिख दी। श्रीलाखाजीने उसे ले लिया।

इस प्रकार श्रीलाखाजी एक हजार रुपयेकी हुण्डी लेकर अपने घरको आये, उन्होंने उनमेंसे एक सौ रुपये केवल कन्याके ब्याहमें लगाये और शेष धनसे सन्तोंको निमन्त्रण देकर उन्हें भोजन कराया। उनका अनेक प्रकारसे सत्कार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीलाखाजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बेटी एक क्वांरी ब्याहि देत न विचारी मन धन हरि साधुनि कौ कैसे कै लगाइयै।
'कीजै याकौ काज' कही जगन्नाथ देवजू ने 'लीजै मोपै द्रव्य' उर नेकहूँ न आइयै॥
विदा पै न भये चले दृग भरि लये, गये आगे नृप भक्त मग चौकी अटकाइयै।
दियौ है सुपन प्रभु जिनि हठ करौ अजू हुंडी लिख दई नई बिनै कें जताइयै॥ ४२७॥
हुण्डी सो हजार की, यों लै कै गृहद्वार आये, तामैं तें लगायौ सौक बेटी ब्याह कियौ है।
और सब सन्तनि बुलाय कें खवाय दिये, लिये पग दास सुखरासि पन लियो है॥
ऐसें ही बहुत दाम वाही के निमित्त लै लै सन्त भुगताये अति हरषित हियौ है।
चरित अपार कछु मति अनुसार कह्यौं लह्यौ जिन स्वाद सो तौ पाय निधि जियौ है॥ ४२८॥

श्रीनरसीजी

महा समारत लोग भक्ति लौलेस न जानैं।
माला मुद्रा देखि तासु की निंदा ठानैं॥
ऐसे कुल उतपन्न भयौ भागवत सिरोमनि।
ऊसर तें सर कियो षंड दोषहि खोयो जिनि॥
बहुत ठौर परचो दियो रस रीति भक्ति हिरदै धरी।
जगत बिदित नरसी भगत (जिन) गुज्जर धर पावन करी॥ १०८॥

श्रीनरसीजी सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध भक्त हुए, जिन्होंने गुजरात प्रान्तको पावन किया। उस समय गुजरातके निवासी महास्मार्त थे, भक्ति-भजनको बिलकुल नहीं जानते-मानते थे। छाप और कण्ठी-तिलकधारी किसी वैष्णवको देखकर उसकी बड़ी निन्दा करते थे। ऐसे देश-कुल एवं वायुमण्डलमें उत्पन्न होकर भी श्रीनरसीजी वैष्णवभक्तशिरोमणि हुए। ऊसरके समान उस देशको सुन्दर हरा-भरा, भक्तिरससे परिपूर्ण सरोवर बना दिया। देशके दोषोंको नष्ट कर दिया। आपने अनेक स्थानोंपर भक्तिपूर्ण चमत्कार दिखलाये। जिसमें रसकी रीतियोंका सम्पूर्ण रूपसे संगम होता है, ऐसी माधुर्य-रसमयी भक्तिको आपने हृदयमें धारण किया॥ १०८॥

श्रीनरसीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) नरसीका गृहत्याग

भक्तवर श्रीनरसीजी गुजरात प्रान्तके जूनागढ़ नगरके निवासी थे। पाँच वर्षकी अवस्थामें आपके पिता-माताका स्वर्गवास हो गया था। घरमें एक भाई वंशीधर और भाभी थी, वे अति ही क्रोधी स्वभावकी थीं। किसी दिन आप इधर-उधर घूम-फिरकर आये और भाभीसे पीनेके लिये जल माँगा। वे मन-ही-मन जल भुन गयीं और बोलीं—'तुम बड़ी भारी कमाई करके आये हो न? इसीलिये तुम्हें जल पिलाये बिना कैसे काम बनेगा? अपने-आप जल लाकर पियो।' भाभीने जब इस प्रकारका जवाब दिया तो घोर अपमानका अनुभव करके श्रीनरसीजी बिना जल पिये ही घरसे निकल चले और जंगलमें जाकर एक शिवजीके मन्दिरपर पड़ गये। मानो आपने शिवकी शरणमें जाकर अपना दुःख निवेदन किया और स्थिरचित्तसे आपने शिवका ध्यान किया।

श्रीप्रियादासजीने नरसीजीके गृहत्यागकी घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

'जूनागढ़' वास, पिता माता तन नास भयौ, रहै एक भाई और भौजाई रिसभरी है।
डोलत फिरत आय, बोलत 'पियावौ नीर,' भाभी पैं न जानी पीर, बोली जरीबरी है॥
'आवत कमाए, जल प्याये बिन सरै कैसे ? पियौ,' यों जवाब दियौ देह थरथरी है।
निकसे बिचारि 'कहूँ दीजै तन डारि,' मानौ शिवपै पुकार करी, रहे चित्त धरी है॥ ४२९॥

(ख) भगवान् शंकरद्वारा नरसीको कृष्णभक्तिका वरदान

श्रीशंकरजीके मन्दिरपर बिना कुछ खाये-पीये पड़े-पड़े सात दिन बीत गये। तब श्रीशिवजीने विचार किया कि यदि कोई आदमी किसी क्षुद्र या गरीबके द्वारपर जाकर पड़ जाता है, तो वह भी उसकी खबर लेता है, दुःख-दर्दकी पूछताछ करता है। फिर मैं तो देवाधिदेव महादेव हूँ। मुझे इसकी खबर लेनी चाहिये। ऐसा विचारकर भगवान् शंकरजीने प्रथम तो श्रीनरसीजीकी भूख-प्यासको सर्वथा दूर कर दिया। उसके बाद साक्षात् प्रकट होकर दर्शन देकर बोले—'वत्स! वर माँग लो।' श्रीनरसीजीने कहा—'प्रभो! मैं वर माँगना नहीं जानता हूँ। फिर भी यदि आप देना चाहते हैं तो सोच-समझकर वह वस्तु दीजिये, जो आपको सबसे अधिक प्यारी है।' यह सुनकर श्रीशंकरजी सोच-विचारमें पड़ गये कि जो मेरी प्रिय वस्तु है, उसका रहस्य तो मैं अपनी प्राणप्रिया श्रीपार्वतीजीसे भी कहनेमें डरता हूँ और वेद नेति-नेति कहकर उसका वर्णन करते हैं।

अब यदि कदाचित् इसे अपनी प्रिय वस्तु नहीं देता हूँ तो मेरा 'वर माँगो' यह बोलना झूठा पड़ जायगा। ऐसा विचारकर श्रीशंकरजीने उन्हें अपना-सा श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान किया और श्रीनरसीजीको सुन्दर सखी स्वरूप प्रदानकर स्वयं भी त्रिलोचना सखीरूप धारणकर साथ-साथ नित्य श्रीवृन्दावनधाममें आये। वहाँ दिव्य बहुमूल्यवान् अनेक प्रकारकी मणियोंसे जड़े हुए रासमण्डलपर अगणित व्रजगोपियोंके मध्य श्रीराधाश्यामसुन्दरका दिव्य-दर्शन शिवजीने श्रीनरसीजीको कराया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीनरसीजीपर भगवान् शंकरकी इस कृपाका वर्णन इस प्रकार किया है—

बीते दिन सात, शिवधामतें न जात बार, 'परै काहू तुच्छ द्वार, सोई सुधि लेत है'।
इतनी विचारि, भूख प्यास, दई टारि, लियौ प्रगट सरूप धारि, भयौ हिये हेतु है॥
बोले 'बर माँग,' 'अजू-मांगिबौ न जानत हौं, तुम्हें जोई प्यारौ सोई देवो चितचेत है'।
पर्‍यो सोच भारी, 'मेरी प्रान प्यारी नारी,' तासों कहत डरत, बेद कहैं 'नेति नेति' है॥ ४३०॥
'दियौं मैं वृकासुर को वर, डर भयौ तहाँ, वैसे डर कोटि कोटि यापै वारि डारे हैं'।
बालक न होय यह पालक है लोकनि कौ, मन कौ विचार कहा दीजै प्रान प्यारे हैं॥
जोपै नहीं देत मेरौ बोलिबो अचेत होत, 'दियौ निज हेत तन आलिन के धारे हैं'।
ल्याये वृन्दावन रास मण्डल, जटित मनि, प्रिया अनगन बीच लालजू निहारे हैं॥ ४३१॥

(ग) नरसीका शिवसहचरी बनकर रासमण्डलका दर्शन करना

श्रीनरसीजीने देखा कि स्वर्णमय रासमण्डल रंग-बिरंगे हीरोंसे जड़ा हुआ है, व्रजगोपियोंके मध्य प्रिया-प्रियतम दोनों विचित्र गतियोंमें नृत्य कर रहे हैं। गान-तानकी अद्भुत ध्वनि छायी हुई है। लालजी ताली बजाकर ताल लगा रहे हैं और नृत्य एवं रागकी सुन्दर गति ले रहे हैं। ग्रीवा (गर्दन)-का झुकना और हिलना, अँगुलियोंको मोड़कर मुद्राएँ बनाना अत्यन्त मनमोहक था। श्रीमुखसे निकलता हुआ गायनका मधुर स्वर सुनकर कानोंको तृप्ति होती थी। मृदंग और मुँहचंग आदि बाजे गायनके साथ-साथ बज रहे थे। नृत्य करते हुए प्रिया-प्रियतमके प्रत्येक अंगमें शोभाकी जो लहरें उठ रही थीं, वे मानो परिकर-प्रेमियोंको नवीन प्रेम-जीवन प्रदान कर रही थीं।

श्रीप्रियादासजीने रासमण्डलकी इस शोभाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हीरनि खचित रासमंडल, नचत दोऊ रचित अपार नृत्य गान तान न्यारियै।
रूप उजियारी, चन्द चांदनी न सम, तारी देत कर-तारी, लाल गति लेत प्यारियै॥
ग्रीवा की ढुरनि, कर आंगुरी मुरनि, मुख मधुर सुरनि सुनि श्रवन तपारियै।
बजत मृदंग मुंहचंग संग, अंग अंग उठति तरंग रंग छबि जीकी ज्योरियै॥ ४३२॥

(घ) श्रीकृष्णद्वारा नरसीको भक्तिका उपदेश तथा नरसीका गृहस्थाश्रममें प्रवेश

श्रीशंकरजीने श्रीनरसीअलीको मसाल दिखलानेकी सेवा प्रदान की। यह प्रिया-प्रियतमकी शोभा-सुन्दरताको देखकर निहाल हो गयी। इसी बीच नन्दलालजीकी दृष्टि इनके ऊपर पड़ी तो आपने जान लिया कि यह तो कोई नयी सखी आज रासमें आयी है। श्रीठाकुरजीने अनुमान करके जान लिया कि यह शिवजीकी रंगीली सहचरी है। श्रीशंकरजीने मीठी मुसकान और नेत्रोंके संकेतसे जनाया कि ये मेरे साथ आयी हैं, आप कृपया अपने परिकरोंमें सम्मिलित कर लें। रास-विलासका दर्शन कराकर श्रीशिवजी चाहते थे कि अब मैं यहाँसे इन्हें ले जाऊँ, परंतु श्रीनरसी अलीजी चाहती थीं कि मैं अपने प्राणोंको न्यौछावर कर दूँ। तब श्रीठाकुरजीने कुछ समीप आकर श्रीनरसीजीको समझाया कि तुम यहाँसे जाओ और मेरे इस विहारीरूपका सर्वदा ध्यान करते रहना। जब जहाँ तुम मेरा स्मरण करोगी, तब तहाँ ही प्रकट होकर मैं तुम्हें दर्शन दूँगा। साथ ही भगवान्‌ने कीर्तन करनेके लिये करताल प्रदान किया। श्रीरासविहारीजीकी आज्ञा मानकर आँख बन्द करनेपर श्रीनरसीजी अपने ग्रामको वापस लौट आये और अलग निवास बनाकर भजन करने लगे। परंतु पुनः रास विहार-लीलाके दर्शन करनेकी चटपटी इनके मनमें लगी ही रहती थी।

कुछ दिन बाद एक ब्राह्मणकी पुत्री माणिकगौरीसे आपका व्याह हो गया। उससे दो पुत्रियाँ (कुँवरबाई, रतनबाई) और एक पुत्र (शामलदास) हुआ। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी आपने संसारमें श्रीहरिभक्तिका खूब प्रचार-प्रसार किया। बहुतसे सन्त-महात्मा आपके यहाँ नित्य ही आते-जाते रहते थे। उनकी सद्‌भावपूर्वक सेवा करके आप उन्हें अपार सुख प्रदान करते थे। नित्य हरिनाम-लीलाओंका संकीर्तन करते हुए आप भक्त-भगवन्तको प्रसन्न करते थे। श्रीठाकुरजीको पधराकर उनकी नित्य-नियमसे वैष्णवविधिके अनुसार सेवा करते थे। श्रीनरसीजीके ऐसे पवित्र आचरणोंसे इनकी महिमा बढ़ी, इससे जितने विप्रजातिके लोग थे, उन्होंने अपने मनमें बड़ा द्वेष माना और क्रोधवश अनेक प्रकारके उपद्रव करके श्रीनरसीजीके भजनमें बाधा करने लगे। क्योंकि नरसीका भजन-कीर्तन उन्हें उपद्रव-सा प्रतीत हो रहा था। वे अपने मनमें जरा भी विचार नहीं करते थे कि नरसीजी भक्त हैं। इधर परम विवेकी श्रीनरसीजी श्रीश्यामसुन्दरकी रूपमाधुरीके सागरमें निरन्तर डूबे रहते थे।

श्रीप्रियादासजीने नरसीजीके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

दई लै मसाल हाथ, निरखि निहाल भई, लाल डीठि परी कोऊ नई यह आई है।
शिव सहचरी रँगभरी अटकरी, बात मृदु-मुसकात नैन कोर में जताई है॥
चाहै यहि टारौं वह चाहै प्रान वारौं, तब श्याम ढिग आय कही नीके समुझाई है।
'जावौ यहै ध्यान करौ, करौ सुधि, आऊँ जहाँ,' आए निज ठौर, चटपटी सी लगाई है॥ ४३३॥
कीनी ठौर न्यारी, विप्रसुता भई नारी, एक सुत उभै बारी, जग भक्ति बिसतारी है।
आवै बहु सन्त, सुख देत हैं अनन्त, गुन गावत रिझावत और सेवा बिधि धारी है॥
जिती द्विजजात दुख भयौ अति गात, मान्यौ बड़ौ उतपात, दोष करै न बिचारी है।
एतौ रूप सागर मैं नागर मगन महा, सकैं कहा करि चहूँ ओर गिरधारी है॥ ४३४॥

(ङ) नरसीद्वारा श्रीसाँवलशाहके नाम हुण्डी लिखना

एक बारकी बात है, तीर्थयात्रा करते हुए कुछ साधु-सन्त जूनागढ़ पहुँचे और बाजारमें जाकर पूछने लगे कि यहाँ कोई ऐसा महाजन है क्या? जो हमें हुण्डी लिख दे? क्योंकि मार्गमें लुटेरोंका भय है, हमको द्वारका जाना है। जो लोग श्रीनरसीजीसे द्वेष करते थे, उन्होंने उनसे कहा कि यहाँके सबसे बड़े प्रसिद्ध महाजन नरसीजी हैं, उन्हींकी हुण्डी चलती है। ऐसा कहकर उन दुष्टोंने साथ जाकर नरसीजीका घर बतला दिया। इन साधु-सन्तोंने वैसा ही किया। श्रीनरसीजीने सन्तोंको छातीसे लगा लिया और विनती करते हुए बोले—'मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपलोगोंने आकर दर्शन दिया। आपलोग आज्ञा दें। मेरा सर्वस्व आपपर न्यौछावर है।'

श्रीद्वारकाकी यात्रा करनेवाले साधुओंने गिनकर सात सौ रुपयोंका ढेर श्रीनरसीजीके आगे लगा दिया तथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके बार-बार प्रार्थना करने लगे कि 'हमें सात सौ रुपयोंकी हुण्डी लिख दीजिये, हमें द्वारका जाना है।' आप समझ गये कि इन्हें किसीने बहका दिया है और उसमें प्रेरणा श्रीद्वारकानाथजीकी है। इस बहाने भगवान्‌ने सन्त-सेवाके निमित्त रुपये मेरे पास भेजे हैं। यह विचारकर श्रीनरसीजीने उन सन्तोंकी इच्छाकी पूर्ति की और हुण्डी लिख दी तथा कहा कि 'हमारे महाजन श्रीसाँवलशाहजी बड़े उदार हैं। उन्हींके हाथमें आप हुण्डी दीजियेगा और उनसे हुण्डीके रुपये लेकर निःशंक होकर कार्य कीजियेगा।' हुण्डी लेकर सन्त-महात्मा द्वारकापुरी पहुँचे और वहाँके बाजारमें साँवलशाहकी कोठी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये और भूख-प्याससे अत्यन्त व्याकुल हो गये, परंतु साँवलशाहकी कोठीका पता नहीं चला। तब ये लोग नगरसे बाहर निकल आये। आशा टूट गयी, अतः अपार दुःख-सागरमें डूब गये।

सन्तोंको व्यथित देखकर श्रीनरसीजीकी हुण्डी चुकानेके लिये श्रीद्वारकाधीशभगवान् सेठका रूप धारणकर कन्धेपर रुपयोंसे भरी थैली रखकर सन्तोंके निकट पधारे और बोले—'श्रीनरसीजीकी हुण्डी किसके पास है?

जिसके पास हो वह आकर अपने रुपये गिनकर ले ले।' सन्तोंने कहा—'अजी सेठजी! हमलोग आपको बाजारमें ढूँढ़-ढूँढ़कर हार गये, पर आप नहीं मिले।' साँवलशाह बोले—आपको रुपये देनेमें इतना विलम्ब हुआ। अतः हमें भी लज्जा लग रही है। विलम्बका कारण यह है कि मैं बाजारमें नहीं मिलता हूँ। मेरा निवास एकान्तमें है और इस बातको कोई-कोई भगवान्‌के भक्त ही जानते हैं। ये लीजिये, अपने रुपये और उनसे अपना कार्य कीजिये। यह कहकर भगवान्‌ने हुण्डी लेकर रुपये दे दिये और उसके उत्तरमें चिट्ठी लिखी कि मेरे पास रुपयोंकी कमी नहीं है, आप बार-बार हुण्डी लिखकर भेजा करें। सन्तजन द्वारकापुरीका दर्शन करके लौटे और श्रीनरसीजीको साँवलशाहकी चिट्ठी दी। उसे पाकर श्रीनरसीजी प्रेमानन्दमें डूब गये और उन्होंने सन्तोंको गलेसे लगा दिया।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

तीरथ करत साधु आये पुर, पूछै कोऊ हुंडी लिखि देय हमैं? द्वारिका सिधारिबे।
जे वे रहे दूषि, कही जात ही भगावैं भूषि, नरसी बिदित साह आगे दाम डारिबे॥
चरण पकरि गिरि जावौ जौ लिखावौ अहो कहौ बार बार सुनि बिनती न टारिबे।
दियौ लै बताय घर, जाय वही रीति करी, भरी अँकवार मेरे भाग, कहा वारिबे?॥ ४३५॥
सात सै रुपैया गिनि ढेरी करि दई आगे, लागे पग, देवौ लिखि, कही बार बार है।
जानी बहकाये प्रभु दाम दै पठाये, लिखी किये मन भाये, साह सांवल उदार है॥

वाही हाथ दीजियै, लै कीजिये निशंक काज, गये जदुराजधानी पूछ्यो सों बजार है।
ढूँढ़ फिरि हारे भूख प्यास मीड़ डारे, पुर तजि भये न्यारे दुख सागर अपार है॥ ४३६॥
साहकौ सरूप करि, आये कांधे थैली धरि, 'कौन पास हुण्डी? दाम लीजिये गनाय कै'।
बोलि उठे ढूँढ़ि हारे! भलेजू निहारे आजु, कही 'लाज हमें देत, मैं हूँ पाये आय कै'॥
मेरौ है इकोसौ बास, जानै कोउ हरिदास, लेवो सुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै।
धरे है रुपया ढेर, लिख्यो करौ बेर बेर, फेरि आय पाती दई, लई गरे लाय कै॥ ४३७॥

(च) नरसीके भक्तिभावका विलक्षण प्रभाव

श्रीनरसीजीने सन्त-महात्माओंसे कहा कि आपलोग यह बतलाइये कि साँवलशाहजी आपको मिले या नहीं? उन सन्तोंने कहा—हाँ, मिले और बड़े प्रेमसे मिले। श्रीनरसीजीने साँवलशाहके नाम हुण्डी लिख दी थी और उसके जो रुपये थे, उनसे आपने सन्तोंका भण्डारा कर दिया। सन्तोंके प्रति श्रीनरसीका ऐसा सद्भाव था। अतः श्रीद्वारकाधीशने उनके सभी कार्यों-मनोरथोंको पूरा किया।

श्रीनरसीजीकी लड़की ससुरालमें थी, उसके लड़का हुआ था। लोक-रीतिके अनुसार इन्हें छूछक देना चाहिये, पर इनके पास कुछ न था, अतः न दे सके। लड़कीकी सास नित्य ही गालियाँ बकती। सासके वचन जब असह्य हो गये, तब उस लड़कीने अपने पिताको कहला भेजा कि 'मेरी सास ताने मारती है, गाली देती है, इससे मेरी छाती जलती रहती है। यदि आपके पास कुछ देनेके लिये हो तो आप आकर दे जाइये।'

लड़कीका सन्देशा पाकर श्रीनरसीजी एक टूटी-सी बैलगाड़ीमें दो बूढ़े बैलोंको जोतकर जहाँ पुत्री ब्याही थी, उस नगरके किनारे पहुँच गये। इनके आगमनका समाचार एक ब्राह्मण (कोकल्या पुरोहित)-ने जाकर इनकी कन्यासे कह दिया। पिताजीका आगमन सुनते ही वह आयी, परंतु जब उसने देखा कि गाड़ीमें छूछकका कुछ भी सामान नहीं है, तो उसका मुख उदास हो गया। उसने कहा—'पिताजी! यदि आपके पास देनेके लिये एक पैसा या एक वस्तु न थी तो फिर न आते, वही ठीक था।' श्रीनरसीजीने कहा—बेटी! तुम अपने मनमें चिन्ता न करो। जाकर अपनी साससे कह दो कि जिन-जिन चीजोंकी जितनी-जितनी जरूरत हो, उन सबको एक कागजमें लिख दें। उसने अपनी सासको समझाकर कहा तो वह बहुत रिसमें भरकर बोली—मैं समझ गयी, तेरे पिता यहाँ आकर हँसी कर रहे हैं। अन्तमें खिसियाई सासने गाँवके सभी स्त्री-पुरुषों-बालकोंके नाम लिखवा दिये कि इन सभीको कपड़े एवं गहने चाहिये।

श्रीनरसीजीकी लड़की आवश्यक वस्तुओंका चिट्ठा लेकर आयी तो आपने उसे देखकर लौटा दिया और कहा कि इसे फिरसे दिखा लाओ। इसमें यदि किसीका नाम या कोई वस्तु लिखनेसे रह गयी हो तो उसे फिर लिखवा लाओ। इस बातसे क्रुद्ध होकर उसने दो पत्थर और लिखवा दिये। श्रीनरसीजीको अपमानित करनेके लिये उन्हें टूटी-फूटी पुरानी पौर रहनेके लिये बतला दी। भक्तशिरोमणि श्रीनरसीजी जाकर उसीमें ठहरे और उस निवास-स्थानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सासने खौलता हुआ जल इनके स्नान करनेके लिये भेजा। इसी बीच वर्षा हुई जिससे जल शीतल हो गया और श्रीनरसीजीने सुखपूर्वक स्नान किया। इसके बाद पौरकी कोठरीको झाड़ू-बुहारू देकर उसे साफकर उसके द्वारपर आपने एक परदा लगा दिया। सामानके चिट्ठेको वहीं रखकर तानपूरा बजाकर श्रीहरिनाम-संकीर्तन करने लगे। भगवत्कृपासे अगणित पोशाकें-वस्त्राभूषण आकर कोठरीमें भर गये।

श्रीनरसीजीने गाँवभरके आबाल-वृद्ध सभी नर-नारियोंको सुन्दर मूल्यवान् वस्त्र-आभूषण पहनाये, उससे सब लोग शोभायमान हो रहे थे। श्रीनरसीजीकी उदारता, कीर्तिका यत्र-तत्र-सर्वत्र सभी लोग गान कर रहे थे।

बड़ा भारी आश्चर्य तो यह हुआ कि उस चिट्ठेमें लिखी सोने-चाँदीकी दो शिलाएँ भी आयीं और समधी-समधिनके लिये विशेष भेंटके रूपमें प्रदान की गयीं। संयोगवश एक स्त्रीका नाम (भानीबाई) सूचीमें लिखनेसे रह गया था। उसे पहनावा नहीं मिला। उसने दूसरेसे लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि जिसने सब स्त्री-पुरुषोंको वस्त्राभूषण पहनाये हैं, मैं भी उसीके हाथसे लूँगी। श्रीनरसीजीकी कन्याने अपने पितासे प्रार्थना की कि इसे भी पहनावा दीजिये, जिससे कि मेरी लज्जा रह जाय। श्रीनरसीजीने प्रभुसे प्रार्थना की तो भगवान् फिर आये। वस्त्रादि देकर उसकी कामना पूर्ण की। अपने पिताजीके प्रभावको देखकर उनकी पुत्री अपने अंगमें फूली नहीं समाती थी। अपने पति, सास, ससुर आदिको भुलाकर वह अपने पिताके साथ अपने घरको चली आयी।

नरसीजीकी भक्तिके इस प्रभावका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

'देखि आये साह?' दौरि मिले उत्साह अंग, वेऊ रँग बोरे सन्त, संगकौ प्रभाव है।
हुण्डी लिखि दई, दाम लिये सो खवाय दिये, किये प्रभु पूरे काम, संतनि सों भाव है॥
सुता ससुरारि, भयौ छूछक विचारि, सासु देत बहु गारि, जाको निपट अभाव है।
पिता सों पठाई कहि, छाती लै जराई इन, जोपै कछु दियौ जाय, आवो यह दाव है॥ ४३८॥
चले गाड़ी टूटीसी उभय बूढ़े बैल जोरि, पहुँचे नगर छोर, द्विज कही जाय कै।
सुनत ही आई देखि मुँह पियराई, फिरी 'दाम नहीं एक तुम कियौ कहा आय कै?'॥
'चिन्ता जिनि करौ, जाय सासु ढिग ढरौ, लिखि कागद में धरौ अति उत्तम अघाय कै'।
कही समुझाय, सुनि निपट रिसाय उठी, कियौ परिहास, लिख्यौ गाँव खुनसाय कै॥ ४३९॥
कागद लै आई देखि दूसरें फिराई पुनि भूलै पै न पाई जात 'पाथर' लिखाये हैं।
रहिबे कौं दई ठौर, फूटी ढही पौरि जाके बैठे सिरमौर आय बहु सुख पाये हैं॥
जल दै पठायौ भली भाँति कै औटायौ, भई बरषा, सिरायो, यों समोयकै अन्हाये हैं।
कोठरी सँवारि, आगे परदा सो दियो डारि, लै बजाई तार बेस अगनित आये हैं॥ ४४०॥
गाँव पहिरायो, छवि छायौ, जस गायो, अहो हाटक रजत, उभै पाथर हू आये हैं।
रहि गई एक भूले लिखत अनेक जहाँ, 'लेंहौं ताही पास जापै सब मिलि पाये हैं'॥
बिनती करत बेटी दीजियै जू लाज रहै, दियौ मँगवाय, हरि फेरिकै बुलाये हैं।
अंग न समात सुता तात कौ निरखि रंग संग चली आई पति आदि बिसराये हैं॥ ४४१॥

(छ) नरसीद्वारा दो गायिकाओंको भगवत्प्रेमकी महिमा बताना

श्रीनरसीजीके कुँवरसेना और रतनसेना नामकी दो पुत्रियाँ थीं। वे दोनों भगवद्भक्तिमें मग्न होकर अपने घरमें ही रहीं। एक तो विवाहके बाद छूछकका प्रभाव देखकर पति आदिको त्यागकर घर चली आयी और दूसरीने तो विवाह ही नहीं किया। किसी दिन गा-बजाकर जीविका चलानेवाली दो स्त्रियाँ जूनागढ़ शहरमें आयीं और यत्र-तत्र उन्होंने लोगोंको अपना कलात्मक गान सुनाया। वे सारे नगरमें घूमीं, परंतु उन्हें धनकी प्राप्ति नहीं हुई। उन्हें निराश देखकर किसीने श्रीनरसीजीका नाम-पता बतला दिया। वे दोनों श्रीनरसीजीके द्वारपर आकर गाने लगीं। तब आपने उन्हें समझाकर कहा कि यहाँ तुम्हें थोड़ा भी धन नहीं मिलेगा। इससे तुम्हारा मन दुःखित होगा। यदि कदाचित् तुम्हें भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सिर मुड़वाकर विरक्त-शिक्षा-दीक्षा लेकर भगवदाराधन करो, इनकी शिक्षा मानकर दोनों नरसीजीके यहाँ ही रहने लगीं और भजन-कीर्तन-सत्संगके प्रभावसे उन्हें भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो गयी, दोनों उसका रसास्वादन करने लगीं।

श्रीप्रियादासजीने नरसी भक्तके इस भगवत्प्रेमदानरूपी कृत्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

सुता हुती दोय, भोय भक्ति, रही घरही में एक पति त्याग, एक पतिहू न कियौ है।
पुर मैं फिरत उभै गाइन सुचाइन सौं, धन सौ न भेंट, काहू नाम कहि दियौ है॥
आईं लगीं गायबे कों, कही समझाय, 'अहो पायबे को नाहीं कछु पावै, दुःख हियौ है'।
चाहौ हरि भक्ति, तौ मुंडायकै लड़ाय लीजै, कीजै बार दूर, रहीं, प्रेमरस पियौ है॥ ४४२॥

(ज) नरसीके भगवन्नाम-संकीर्तनका प्रभाव

श्रीनरसीजीकी दोनों पुत्रियाँ और दोनों गायिकाएँ मिलकर एक साथ रहने लगीं। प्रेमभक्तिके रंगमें रँगकर चारों साथ-साथ हरिनाम-गुण-संकीर्तन करतीं और भावोंको बता-बताकर नृत्य करतीं। इससे सबको बड़ा आनन्द आता। परंतु इस नृत्य-गानको देखकर 'सालंग' नामके राजमन्त्री, जो श्रीनरसीजीके मामा भी लगते थे, उन्होंने राजासे इनकी निन्दा करते हुए कहा कि 'बड़ा अनुचित, धर्मके विपरीत काम हो रहा है, मेरा भानजा नरसी स्त्रियोंको एकत्रकर उनके साथ नाचता है।' राजासे उचित कार्यवाहीका आदेश लेकर सालंगने बड़े-बड़े पण्डितों और दण्डधारी संन्यासियोंकी सभा बुलायी और लोभ देकर उनसे कहा कि आपलोग नरसीजीसे शास्त्रार्थ करके उसका भण्डाफोड़ कीजिये, शास्त्रविरुद्ध अधर्मी सिद्ध करके हम उसे अपने राज्यसे बाहर निकाल देंगे। राजाकी आज्ञासे चार सिपाही आये और नरसीजीसे बोले—आप राजदरबारमें चलिये, राजा साहबने आपको बुलाया है, वहाँ पण्डितोंकी सभामें आपसे कुछ शास्त्र-विचार करना है।

यह सुनकर श्रीनरसीजी उन चारों लड़कियोंको साथ ले भगवत्प्रेममें मग्न हो श्रीहरिनाम-संकीर्तन करते नाचते-गाते हुए राजदरबारमें पहुँचे। राजसभामें उपस्थित पण्डितोंने आपसे पूछा कि 'आप इन तरुणी स्त्रियोंके साथ नाचते-गाते हैं, उन्हें साथ लिये फिरते हैं। यह भजन-साधनकी कौन-सी रीति है?' श्रीनरसीजीने कहा—आपलोगोंने वेदशास्त्र पढ़े हैं, परंतु पढ़-लिखकर भी आप भगवद्भक्तिकी गन्धसे दूर हैं। आपलोगोंको मालूम होना चाहिये कि भजन-सत्संगमें स्त्री-पुरुषोंका एकत्र होना कदापि निन्दनीय नहीं है।

श्रीनरसीजीके सच्चे उत्तरसे विरोधी पण्डित मौन हो गये। इसी बीच सभामें उपस्थित एक भक्त ब्राह्मणने कहा—राजन्! जब ये अपनी बेटीके यहाँ छूछक देने गये थे। उस समय मैंने अपनी आँखोंसे इनका प्रभाव देखा था। ऐसा कहकर उसने उमंगमें भरकर छूछककी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन की। इसे सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ और नरसीजीके चरणोंमें गिर पड़ा और प्रार्थना करता हुआ बोला—'आप अपने घरको जाइये और सुखपूर्वक रहिये। आपने सर्वेश्वर प्रभुको अपने वशमें कर रखा है, उन्हींके भक्ति-भावमें सर्वदा निमग्न रहिये।'

भक्तश्रेष्ठ श्रीनरसीजी भगवान्के मन्दिरमें श्रीविग्रहके समक्ष जब सुन्दर 'केदारा' राग बड़े उत्साहके साथ गाते थे तो उस समय भगवान्के कण्ठकी फूल-माला अपने-आप टूटकर रसिकशेखरके वक्षस्थलपर आ जाती थी। आशीर्वाद-प्रसादरूप मालाको अपने हृदयमें धारणकर श्रीनरसीजी कृतार्थ होते थे और उनसे द्वेष करनेवाले भगवद्विमुख अपने स्वभाववश दुःख पाते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मिलीं उभै सुता, रंग झिली संग गायन वै चायनि सौं नृत्य करै, भायनि बताय कै।
'सालंग' है नाम मामा मंडलीक मन्त्री रहै कहै 'बिपरीत बड़ी' राजा सों सुनाय कै॥
बड़े बड़े दंडी और पंडित समाज कियौ, करो वाकी भंडौ, देश दीजिए छुटाय कै।
आये चार चोबदार चलौ जू बिचार कीजै, भयौ दरबार हमैं दिये हैं पठाय कै॥ ४४३॥

चारौं तुम जावो टरि, भयौ हमैं राजा डर, सकै कहा करि? अजू चलैं संग संगहीं।
नाचत बजावत ये चलीं ढिग गावत सुभावत मगन जानी भीजि गई रंगहीं॥
आये वाही भाँति, सभा प्रभा हत भई, तऊ बोले कहा रीति यह जुवती प्रसंगहीं।
कही 'भक्ति गंध दूरि, पढ़ें पोथी, परी धूरि श्रीशुक सराही तिया माथुरनि भंगहीं'॥ ४४४॥
बोलि उठ्यो बिप्र एक 'छूछक प्रसंग देख्यौ', कह्यौ रसरंग भर्‌यौ ढर्‌यौ नृप पाँय में।
कही 'जू बिराजौ, गाजौ नित सुख साजौ जाय, किये हरि राय बस, भीजे रहौ भाय में'॥
धारौ उर और सिरमौर प्रभु मन्दिर में सुन्दर केदारौ राग गावैं भरे चाय में।
स्याम कंठ माल टूटि आवत रसाल हियें देखि दुख पावैं परे बिमुख सुभाय में॥ ४४५॥

(झ) नरसीद्वारा भगवान्‌को केदारा राग सुनानेकी कथा

द्वेषी दुष्टोंने जाकर राजाको सिखाया-पढ़ाया कि नरसीकी भक्तिका जो प्रभाव चारों ओर फैला है, उसमें सच्चाई कुछ भी नहीं है। नरसी कच्चे डोरेमें फूलोंकी माला पुहवाकर भगवान्‌को पहनाता है, वह अपने-आप फूलोंके भारसे टूट जाती है और प्रचार यह किया जाता है कि केदारा रागपर रीझकर भगवान् देते हैं। राजाकी माता भगवद्भक्ता थीं, उन्हें भगवद्भक्तोंमें विश्वास था। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र राजासे कहा—'तुम इन विमुखोंकी बातोंको बिलकुल न सुनो और न ध्यान दो।' परंतु अहंकारी राजाने माताजीकी बात नहीं मानी; एक दिन राजा उस मन्दिरमें गया, जहाँ श्रीनरसीजी केदारा राग गाकर माला-प्रसाद प्राप्त करते थे। उसने बहुत मजबूत रेशम मँगवायी और बटवाकर उसका डोरा बनवाया। फिर उसमें फूलोंको गुँथवाकर माला बनवायी। उसे भगवान्‌को धारण करवाकर कहा कि अब केदारा राग गाइये, सब मालूम पड़ जायगा। श्रीनरसीजीने नित्य-नियमके अनुसार स्वरोंको साधा केदारा रागको छोड़कर दूसरे-दूसरे राग गाये, परंतु माला टूटकर नहीं गिरी।

श्रीनरसीजीके लगातार गानेपर भी माला नहीं टूटी, तब शिकायत करनेवाले विमुख लोग मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। इधर श्रीनरसीजी नयी-नयी भावभरी उक्तियोंके द्वारा उलाहना देते हुए श्रीप्रभुके सामने कहने लगे—आप निश्चिन्त होकर अपने गलेमें माला धारण किये रहिये और भक्तको मार खाने दीजिये, मरता है तो मरने दीजिये।

वस्तुतः बात यह भी थी कि श्रीनरसीजी जिस नगरमें रहते थे, उसमें धरणीधर नामक एक साहूकार था। नरसीजी उसके पास केदारा राग गिरवी रख आये थे। उसने दो ब्याह किये थे। उन दो स्त्रियोंमें बड़ीवाली भगवद्भक्ता थी। उसने आपसे बार-बार प्रार्थना की कि मुझे भी श्यामसुन्दरके दर्शन करा दीजिये। श्रीनरसीजीने कहा—'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा।' श्रीनरसीजीकी इस बातको सत्य करनेके लिये भगवान् स्वयं श्रीनरसीजीका रूप धारणकर उस साहूकारके घर गिरवी रखे हुए केदारा रागको छुड़ानेके लिये गये। उसके द्वारपर जाकर आपने पुकारा—'किवाड़ खोलो।' साहूकारकी भक्ता स्त्रीने उठकर किवाड़ खोले और उसने श्रीनरसीरूपी भगवान्‌का दर्शन किया। साहूकार चद्दरसे मुँह ढककर सो रहा था। उसकी स्त्रीने कहा—'श्रीनरसीजी पधारे हैं, रुपये ले लो और कागज दे दो।' उसने कहा—तुम्हीं रुपये लेकर उस कागजको वापस कर दो। उस भक्ता स्त्रीने रुपये ले लिये और कागज लौटा दिया।

इस प्रकार भगवान्‌ने गिरवी रखे हुए 'केदारा' रागको रुपये देकर छुड़ाया और रुपयोंकी रसीद तथा गिरवी-पत्र लाकर श्रीनरसीजीकी गोदीमें डाल दिया। उसे देखकर ये अत्यन्त प्रसन्न होकर उमंगपूर्वक केदारा राग गा उठे। उसे सुनकर श्रीश्यामसुन्दर अपने सिंहासनसे उठे। नूपुरोंकी झन्न-झन्न ध्वनि करते हुए श्रीप्रभुने

श्रीनरसीजीको पुष्पहार पहना दिया। उपस्थित सभी भक्तलोग भक्त और भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे। इस प्रत्यक्ष चमत्कारको देखकर राजा इनके श्रीचरणोंमें लिपट गया और उसने अपने हृदयमें भगवद्भक्तिके भावको दृढ़तासे धारण किया। इससे द्वेषी दुष्ट बहुत लज्जित हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नृपति सिखायौ जाय, वृथा जस छायौ, काचे सूत में पुहायौ हार, टूटै ख्याति करी है।
माता हरिभक्त भूप कही जिनि करौ कान, तऊ बानि राजस की माया मति हरी है॥
गयै ढिग मन्दिर के सुन्दर मँगाय पाट ताकौ बटवाय करि माला गुहि धरी है।
प्रभु पहिराय कहौ 'गाय अब जानि परै' भरैं सुर, राग और गायौ पै न परी है॥ ४४६॥
विमुख प्रसन्न भये, तब तौ उराहने दै नये-नये चोज हरि सनसुख भाखिये।
'जानै ग्वाल बाल एक माल गहि रहे हिये, जिये लाग्यौ यही रूप, कहौ लाख लाखिये'॥
नारायण बड़े महा, अहा मेरे भाग लिख्यौ, करै कौन दूर छबि पूर अभिलाखिये।
म्हारौ कहा जाय आय परसै कलंक तुम्है, राखिये निसंक हार, भक्त मारि नाखिये॥ ४४७॥
रहै तहाँ साह, किये उभै लै विवाह जामें तिया एक भक्त कहै 'हरिकौ दिखाइयै'।
नरसी कही ही 'भलै', सोई प्रभु बानी लई, सांच करि दई, गए राग छुटवाइयै॥
बोले, पट खोलि दिये, किये दरसन तानैं, ताने पट सोवै वह कही 'देवौ भाजिये'।
लिये दाम, काम कियौ, कागद गहाय दियौ दियौ कछु खाइबेको पायौ लै भिजाइयै॥ ४४८॥
गहने धर्‌यौ हो राग केदारौ, सो साह घर, धरि रूप नरसी कौ, जाय कै छुटायौ है।
कागद लै डारयौ गोद मोद भरि गाय उठे, आय झन्न झन्न स्याम हार पहिरायौ है॥
भयौ 'जै जैकार', नृप पाय लपटाय गयौ, गह्यौ हिये भाव सो प्रभाव दरसायौ है।
बिमुख खिसाने भये गये उठि नये नाहिं, बिन हरिकृपा भक्तिपंथ जात पायौ है॥ ४४९॥

(ञ) भगवान् श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीद्वारा नरसीके पुत्रका विवाह सम्पन्न कराना

एक ब्राह्मणने अपनी कन्याकी सगाई करनेके लिये अपने पुरोहितको भेजा। उसने बहुत-से ब्राह्मण बालक देखे, परंतु उसे कोई पसन्द नहीं आया। इसी बीच किसीने उसे बताया कि नरसीजीके भी एक सुन्दर बालक है, उसे भी देख लो। उसे देखते ही पुरोहितजी उसपर रीझ गये। तुरंत ही उन्होंने झोलीसे अक्षत निकालकर तिलक कर दिया। श्रीनरसीजीने कहा—लड़कीके पिताजी तो धनी-मानी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। इसलिये मैं उनसे विवाह करनेयोग्य नहीं हूँ। उस पुरोहितने कहा—अजी श्रीभक्तजी! आप कैसी बात करते हैं, आप तो सब प्रकारसे योग्य हैं और श्रेष्ठ हैं। मैंने समझ-बूझकर तिलक करके मदनमेहताजीकी कन्यासे सम्बन्ध पक्का कर दिया। परंतु जब ब्राह्मणने अपने यजमान (कन्याके पिता)-से यह बात बतायी तो सुनते ही उसने माथा ठोककर कहा—अरे! वह तो तालकूटा निर्धन ब्राह्मण है, तुमने मेरी पुत्रीको कुएँमें डुबा दिया। शीघ्र जाओ और तिलकको लौटा लाओ। मुझे उस लड़केके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं करना है। यह सुनकर पुरोहितको महान् कष्ट हुआ।

पुरोहितजीने अपने यजमानसे कहा—पहले आप मेरे इस दाहिने हाथके अँगूठेको काटकर फेंक दीजिये, उसके पश्चात् आप यह कहिये कि 'तिलकको लौटा लाओ।' आप जरा सोचिये तो जब मैंने सोच-विचारकर तिलक कर दिया, फिर अब कैसे कहूँगा कि वापस कर दो। लड़कीके माता-पिता आदि सभी अत्यन्त दुःखमें भरकर बोले—हम समझ गये, इस लड़कीके भाग्य ही ऐसे हैं। अब तो लड़कीको सुखी करनेका यही एक

उपाय है कि जब वे बारात लेकर विवाह करने आयेंगे, तब हम उन्हें बहुत-सा धन दहेजमें दे देंगे। कुछ दिन बाद जब लगन-पत्रिका भेजनेका समय आया, तब पुरोहितजीने लिखकर उसे लाकर श्रीनरसीजीको दे दिया। आपने उसे देखा भी नहीं और उसे एक ओर डाल दिया। दैनिक नियमानुसार करताल बजाकर कीर्तन करने लगे। विवाह (माघ शुक्ल पंचमी)-के केवल चार दिन शेष रह गये। तब भी श्रीनरसीजीको उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीरुक्मिणीजीके समेत पधारे। प्रेमसे विभोर होकर आप दौड़कर श्रीभगवान्से मिले और श्रीचरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया।

श्रीप्रियादासजी नरसीजीके प्रति भगवान्के इस भक्तवात्सल्यका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

करन सगाई आयो, पायौ बर भायो नहीं, घर-घर फिर्यो, द्विज नरसी बतायौ है।
आय, सुख पाय, पूछ्यौ, सुत सो दिखाय दियौ कियौ लै तिलक मन देखत चुरायौ है॥
अजू हम लायक न, तुम सब लायक हौ सायक सो छूट्यौ जाय नाम लै सुनायौ है।
सुनत ही, माथो फोरि, कहै तालकूटा वह, बाल बोरि आये, जावो फेरि, दुख छायौ है॥ ४५०॥
काटिकै अँगूठा डारौं, तब सो उचारौ बात, मन मैं बिचारौ, कियौ तिलक बनाय कै।
जाने सुता भाग ऐसे रहे सोच पागि सब आवैं जब व्याहिबे कौ धन दै अघाय कै॥
लगन हूँ लिखि दियौ, दियौ, द्विज आनि लियौ, डारि राख्यौ कहूँ, गावैं ताल ए बजाय कै।
रहे दिन चार, पै बिचार नहीं नेकु मन, आये कृष्ण रुक्मिनी जू झूमि मिले धाय कै॥ ४५१॥

श्रीरुक्मिणीजीके समेत भगवान् श्रीकृष्णके आते ही विवाहोत्सवकी चहल-पहल आरम्भ हो गयी। जहाँ-तहाँ विविध प्रकारके व्यंजन बनने लगे। महिलाएँ मंगल गान करने लगीं। घोड़ीपर वरको चढ़ाकर नगरमें भ्रमण कराया गया। उसके बाद ज्यौनार हुई, जिसमें असंख्य मनुष्योंने आकर खूब अच्छी तरहसे भोजन किया। 'सामान घट जाय, नरसीकी हँसी हो जाय'—इस विचारसे ब्राह्मण लोग भोजन करके पारसके नामपर गठरियोंको बाँधकर ले जाने लगे। परंतु सभी वस्तुएँ भण्डारमें इतनी भरी थीं कि उनमें समाती नहीं थीं। इसके बाद मुक्तामणि-रत्नजटित हाथी, घोड़ा, ऊँट, रथ और पालकी आदि वाहनोंसे युक्त श्रीनरसीजीकी बारातने सज-धजकर प्रस्थान किया।

जब बारात चल पड़ी, तब श्रीठाकुरजीने श्रीनरसीका हाथ पकड़कर कहा कि 'आप बारातके साथ चलो, मैं गुप्त रूपसे सब प्रकारसे देखभाल करता हुआ चलूँगा।' श्रीनरसीजीने कहा—'प्रभो! तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, जो चाहो, सो करो। मुझे तो आनन्द इसमें है कि आपके इस सुन्दर स्वरूपको हृदयमें धारण कर लूँ और कमर कसकर हाथमें करताल लेकर आपके गुणानुवाद गाऊँ।' तब भगवान्ने विचारा कि इनसे कुछ होनेवाला नहीं है। अतः सम्पूर्ण कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। बारात चढ़कर समधीके गाँव पहुँच गयी। चारों ओर यत्र-तत्र-सर्वत्र बाराती लोग शिविर लगाकर ठहर गये।

इसी बीच जिसने सगाई की थी, वह पुरोहित बारात देखकर आ गया। वह अपने मनमें फूला नहीं समा रहा था। प्रेमविह्वल होकर वह यजमानसे बोला—आपके पास जितनी राशि है, उससे बारातके घोड़ोंकी घासका भी पूरा नहीं पड़नेका है। जा करके देखिये, नगरके चारों ओर बारात-ही-बारात भरी हुई है।

बारातका विचित्र विवरण पाकर बेटीका बाप भी बारात देखने गया। देखकर उसका सब अभिमान दूर हो गया। उसने पुरोहितका आश्रय लिया और बार-बार प्रार्थना की कि आप कृपा करके मेरी लज्जा रख लीजिये, मैं आपकी शरणमें हूँ। पुरोहितने उससे कहा—'आप सद्भावपूर्वक श्रीनरसीजीके श्रीचरणोंको पकड़ लीजिये' और 'मुझ पर दया कीजिये'—ऐसी उनसे प्रार्थना कीजिये तो सब काम बन जायगा। दूसरा

कोई मार्ग नहीं है। यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरकर श्रीनरसीजीके चरण-कमलोंमें पड़कर कन्याके पिताने प्रार्थना की—'प्रभो! मुझपर कृपा कीजिये।' श्रीनरसीजी छाती-से-छाती लगाकर मिले और श्रीश्यामसुन्दरके मुखचन्द्रका दर्शन कराया और कहा—'आप अपना भार इन्हें सौंपकर निश्चिन्त हो जाइये।' (भगवान् श्रीकृष्णने कन्यापक्षका सारा कार्यभार श्रीबलरामजीको सौंप दिया।) बड़े समारोहके साथ श्रीनरसीजीके पुत्रका विवाह हुआ। घराती-बाराती सभी भक्तिभावमें विभोर हो गये।

प्रियादासजीने नरसीजीकी भक्ति और भगवान्के भक्तवात्सल्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

ठौर ठौर पकवान होत, तिया गान करैं, घुरत निसान, कान सुनिये न बात है।
चित्र मुख किये लै विचित्र पट्टरानी आय, घोरी रंग बोरी पे चढ़ायौ सुत, रात है॥
करी सो ज्योंनार, तामें मानस अपार आये द्विजनि विचारि पोट बाँधी, पै न मात है।
मणिमय ही साज बाज गज रथ ऊँट कोर झमकैं किशोर आज सजी यों बरात है॥ ४५२॥
नरसी सों कहैं गहैं हाथ 'तुम साथ चलौ, अन्तरिक्ष मैं हूँ चलौं, इती बात मानियै'।
कही अजू? 'जानौ तुम, मैं तो हिये आनौं यहै लहै सुख मन मेरौ फेंट ताल आनियै'॥
आपही विचारि सब भार सों उठाय लियौ, दियो डेरा पुरी समधी की पहिचानिये।
मानस पठायौ 'दिन आयौ पै न आये', अहो? देखैं छबि छाये नर पूछें जू बखानियै॥ ४५३॥
'नरसी बरात, मत जानौ यह नरसी की, नरसी न पावै ऐसी समझ अपार है'।
आय कै सुनाई, सुधि बुधि बिसराई, कहौं 'करत हँसाई, बात भाखौ निरधार है'॥
गयौ जो सगाई करि दर बर आयौ द्विज निज अङ्ग मात कैसे रंग विसतार है।
कही 'एक घास धनरासि सों न पूजै किहूँ, चहूँ दिसि पूरि रही देखौ भक्ति सार है'॥ ४५४॥
चले अचरज मानि, देखि अभिमान गयौ, लयौ पाछौ ब्राह्मण को 'हमैं राखि लीजिये'।
जाइ गहि पाँय रहौ भाय भरि 'दया करौ', गए दृग भरै पाँव परै 'कृपा कीजिये'॥
मिले भरि अंक, लै दिखायौ सो मयंक मुख, 'हूजिये निसंक इन्हैं भार सुता दीजिये'।
व्याह करि आये, भक्तिभाव लपटाये सब गाये गुण जाने जेते, सुनि सुनि जीजिये॥ ४५५॥

श्रीयशोधरजी

सुत कलत्र संमत्त सबै गोबिंद परायन।
सेवत हरि हरिदास द्रवत मुख राम रसायन॥
सीतापति को सुजस प्रथम ही गवन बखान्यो।
द्वै सुत दीजै मोहि कबित सबही जग जान्यो॥
गिरा गदित लीला मधुर संतनि आनँद दायनी।
दिवदास बंस जसुधर सदन भई भक्ति अनपायनी॥ १०९॥

श्रीदिवदासजीके वंशमें उत्पन्न श्रीयशोधरजीके घरमें अनपायनी भक्ति प्रकट हुई। आपके स्त्री-पुत्र आदि सभी लोग आपके मतसे सहमत थे। सभी भगवत्परायण थे। आप भगवान्की एवं उनके भक्तोंकी सद्भावसे सेवा करते थे। आपके श्रीमुखसे निरन्तर श्रीरामनामरसामृतकी धारा बहा करती थी। श्रीविश्वामित्रजीने अयोध्यापुरीमें आकर श्रीदशरथजीसे कहा—हे राजन्! यज्ञरक्षाके लिये आप अपने दोनों पुत्र श्रीराम और

श्रीलक्ष्मणको दे दीजिये। श्रीदशरथजीने दे दिया, तब श्रीरामलक्ष्मणने श्रीविश्वामित्रजीके साथ गमन किया। सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रथम वनगमनका आपने अति सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। [गान करते हुए आप प्रेमावेशमें विभोर हो गये। वियोग सहन नहीं हुआ। 'मैं भी साथ चलूँगा'—ऐसा कहकर रोने-पुकारने लगे। प्रभुने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा कि—'तुम यहीं रहो, मुनिके यज्ञको सम्पन्न कराकर हम अभी आते हैं।' परंतु वियोग न सह सकनेके कारण आपने अपने प्राणोंको प्रभुपर निछावर कर दिया।] इस आशयके आपके पद लोकमें अति प्रसिद्ध हुए। आपकी वाणीसे गायी गयी श्रीरामजीकी मधुर लीलाएँ सन्तोंको परमानन्द देनेवाली हुईं॥ १०९॥

श्रीयशोधरजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीयशोधरजी दिवोदासके वंशमें उत्पन्न हुए थे। आप श्रीरामके प्रथम वन-गमनका अति प्रेमसे गान करते थे, वह सुखद एवं सर्वप्रसिद्ध था। भक्त-भगवन्तकी सेवामें आपकी दृढ़ निष्ठा थी। आप साधुओंको अपना सर्वस्व समर्पण करनेके लिये तैयार रहते थे। इनकी दृढ़ प्रतिज्ञाको देखकर एक दिन भगवान्‌ने परीक्षा लेनेका विचार किया और एक साधुका वेष धारणकर पधारे। आपने यथोचित सेवा की। उसके बाद साधुवेषधारी भगवान् बोले—'यशोधरजी! मेरे मनमें एक अभिलाषा है, परंतु कहनेमें संकोच होता है।' आपने कहा—'प्रभो! बिना किसी भय और संकोचके आप मुझ दासपर कृपा करके अपने मनकी बात कहिये।' इस प्रकार बहुत अनुनय करनेपर बोले—'मेरा मन विवाह करनेका है।' आपने कहा—'प्रभो! बहुत अच्छी बात है, मेरे यहाँ चार दिन ठहरिये। मैं आपके स्वरूपानुरूप कन्यासे आपका विवाह कर दूँगा।' यह सुन वे बोले—'मैं दूसरी कन्यासे नहीं, आपकी कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ।' इसपर प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—'भगवन्! तब तो आपकी महती कृपा है, इससे मुझे अत्यन्त ही सुख-सन्तोष होगा।' यशोधरजीने उसी क्षण अपनी स्त्री और पुत्रीको बुलाकर पूछा। दोनोंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इनके परिवारमें वैमत्य था ही नहीं। विवाहकी सभी विधियोंको सम्पन्न करनेकी तैयारियाँ होने लगी। शुभ कार्यमें बिलम्ब नहीं करना चाहिये। कल ही शुभलग्न है। इन्हें पूर्ण रूपमें तैयार देखकर वे सन्त भगवान् बोले—'मैं ऐसे विवाह नहीं करूँगा। दहेजमें एक लाख रुपये लूँगा।' श्रीयशोधरजीने कहा—'महाराज! मेरे परिवारके सभी सदस्योंका मूल्यांकन कीजिये। जो कई लाखका है। वह आपको अर्पित होकर आपकी सदा सेवा करेगा।' उन्होंने कहा—तो सारे परिवारको बुलाकर पूछो। सभीको बुलाकर पूछा गया। सभीने स्वीकार कर लिया। इन सबकी ऐसी दृढ़ निष्ठा देखकर प्रभुने अपनेको प्रकट कर दिया। दर्शन करके सभी कृतार्थ हो गये।

एक बार भक्तवर श्रीयशोधरजी एक गाँवसे सन्त-सेवा निमित्त कुछ अन्न-धन लेकर अपने घरको आ रहे थे। रास्तेमें इन्हें देखकर डाकुओंने लूटना चाहा। पीछा करते हुए जब एकान्त जंगलमें पहुँचे। तब उन्होंने घात लगायी। इतनेमें उन्हें साँवरे-गोरे दो किशोर धनुष-बाण लेकर संधान किये हुए श्रीयशोधरजीके साथ दिखायी पड़े, अतः लूट न सके। ये कौन हैं—यह जाननेकी इच्छासे वे इनके घरपर आये और पूछने लगे कि वे दोनों किशोर कहाँ हैं, कौन हैं, उन्हें देखनेकी इच्छा है। उनके द्वारा कहे गये लक्षणोंसे आप समझ गये कि, स्वयं श्रीराम-लक्ष्मणजीने आकर मेरी रक्षा की। उन्हें भी समझाया कि वे कोई साधारण सिपाही या राजकुमार न थे। अब उन डाकुओंके मनमें युगल स्वरूपकी स्मृति सुदृढ़ हो गयी। उन्होंने श्रीयशोधरजीसे उपदेश लेकर चोरी-डाका छोड़ दिया। सन्मार्गको अपनाया भगवद्भक्त हो गये।

श्रीनन्ददासजी

लीलापद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी॥
चंद्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ मैं पगे।
(श्री) नंददास आनंदनिधि रसिक सु प्रभु हित रगमगे॥ ११०॥

भक्त महाकवि श्रीनन्ददासजी आनन्दसिन्धु-रसिकशेखर सुन्दर अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके प्रेममें पगे एवं रँगे थे। श्रीराधाकृष्णकी लीलाके पदोंकी रचनामें तथा प्रेमरसकी रीतियुक्त जो ग्रन्थ, उनकी रचनामें बड़े ही (नागर) चतुर थे। आपकी उक्तियाँ अत्यन्त सरस एवं युक्तियुक्त अर्थात् तर्कसंगत हैं। भगवद्भक्तिके सभी रसोंका गान करनेमें आप परम उजागर (प्रसिद्ध) थे। आप रामपुर ग्रामके निवासी थे, परंतु आपका पावन सुयश समुद्रपर्यन्त फैला हुआ था। उत्तम कुलीन ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर उनके साथ रहते हुए, उनके समेत भगवद्भक्तोंकी श्रीचरण-रजके उपासक थे। आपके बड़े भ्राता श्रीचन्द्रहासजी भी बड़े सरल-सरस हृदयवाले थे और अनन्य प्रेमके रसमें पगे हुए थे॥ ११०॥

श्रीनन्ददासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनन्ददास भक्तिरसके पूर्ण मर्मज्ञ और ज्ञानी थे। उनका जन्म वि० संवत् १५७० में हुआ था। गोसाईं विट्ठलनाथजीने उन्हें अष्टछापमें गौरवपूर्ण स्थान दिया था। उनके पिताका नाम जीवाराम और चाचाका आत्माराम था; वे शुक्ल ब्राह्मण थे, रामपुर ग्रामके निवासी थे। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी उनके गुरुभाई थे; नन्ददास उनको बड़ी प्रतिष्ठा, सम्मान और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। वे युवक होनेपर उन्हींके साथ काशीमें रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार काशीसे एक वैष्णव-समाज भगवान् रणछोरके दर्शनके लिये द्वारका जा रहा था, नन्ददासने तुलसीदासजीसे आज्ञा माँगी; उन्होंने पहले तो जानेकी मनाही कर दी, पर बादमें नन्ददासने उनको पर्याप्त अनुनय-विनयसे प्रसन्न कर लिया। मथुरामें उन्होंने वैष्णव-समाजका साथ छोड़ दिया। वे वहाँसे द्वारकाके लिये स्वयं आगे बढ़े। दैवयोगसे वे रास्ता भूल गये। कुरुक्षेत्रके सन्निकट सीहनन्द नामक गाँवमें आ पहुँचे और वहाँसे किसी कारणवश पुनः श्रीवृन्दावनको लौट पड़े। नन्ददास भगवती कालिन्दीके तटपर पहुँच गये। यमुनादर्शनसे उनका लौकिक माया-मोहका बन्धन टूट गया। उन्होंने उस पार वृन्दावनके बड़े-बड़े मन्दिर देखे, अपने जन्म-जन्मके सखाका प्रेम-निकुंज देखा। प्रियतमकी मुसकान यमुनातटकी धवल और परमोज्ज्वल बालुकामें बिखर रही थी, उन्हें व्रजदेवता प्रेमालिंगनके लिये बुला रहे थे। उधर वैष्णव-समाजसे गोसाईं विट्ठलनाथने पूछा कि 'ब्राह्मण देवता कहाँ रह गये?' लोग आश्चर्यचकित हो उठे। नन्ददासको अपने शिष्य भेजकर उन्होंने बुलाया, वे गोसाईंजीके परम पवित्र दर्शनसे धन्य हो उठे। गोसाईंजीने उनको नवनीत-प्रियका दर्शन कराया, नन्ददासजीको दीक्षित किया; उन्हें देहानुसन्धान नहीं रह गया। चेत होनेपर नन्ददासकी काव्य-वाणीने भगवान्की लीलारसानुभूतिका मांगलिक गान गाया। वे भागवत हो उठे, उनके हृदयमें शुद्ध भगवत्प्रेमकी भागीरथी बहने लगी। श्रीगोसाईं विट्ठलनाथने उन्हें गले लगाया। नन्ददासने गुरु-चरणकी वन्दना की, स्तुति की। उनकी भारतीके स्वरमय सरस कण्ठने

गुरुकृपाके माधुर्यसे उपस्थित वैष्णव-मण्डलीको कृतार्थ कर दिया, वे गाने लगे—

श्रीबिट्ठल मंगल रूप निधान।
कोटि अमृत सम हँस मृदु बोलन, सब के जीवन प्रान॥
करुनासिंधु उदार कल्पतरु देत अभय पद दान।
सरन आये की लाज चहूँ दिसि बाजे प्रकट निसान॥
तुमरे चरन कमल के मकरँद मन मधुकर लपटान।
'नंददास' प्रभु द्वारे रटत है, रुचत नहीं कछु आन॥

उन्होंने गोसाईंजीके चरणकमलके स्थायी आश्रयके लिये उत्कट इच्छा प्रकट की। श्रीवल्लभनन्दनका दास कहलानेमें उन्होंने परम गौरव अनुभव किया। नन्ददासने उनके चरणकमलोंपर सर्वस्व निछावर कर दिया। उनका मन भगवान् श्रीकृष्णमें पूर्ण आसक्त हो गया। उन्होंने गोवर्धनमें श्रीनाथजीका दर्शन किया। वे भगवान्‌की किशोर-लीलाके सम्बन्धमें पद-रचना करने लगे। श्रीकृष्णलीलाका प्राणधन रासरस ही उनकी काव्य-साधनाका मुख्य विषय हो गया। वे कभी गोवर्धन और कभी गोकुलमें रहते थे।

नन्ददास उच्च कोटिके कवि थे। उन्होंने सम्पूर्ण भागवतको भाषाका रूप दिया। कथावाचकों और ब्राह्मणोंने गोसाईं विट्ठलनाथसे कहा कि 'हमलोगोंकी जीविका चली जायगी।' गुरुके आदेशसे महाकवि नन्ददासने केवल व्रजलीला-सम्बन्धी पदोंके और प्रधान रूपसे रास-रसके वर्णनको बचा रखा, शेष भाषाभागवतको यमुनाजीमें बहा दिया। नन्ददास ऐसे निःस्पृह और रसिक श्रीकृष्णभक्तका गौरव इस घटनासे बढ़ गया।

नन्ददासकी सूरदाससे बड़ी घनिष्ठता थी। महाकवि सूरने उनके बोधके लिये अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य-लहरी' की रचना की थी। एक दिन महात्मा सूरने उनसे स्पष्ट कह दिया था कि 'अभी तुममें वैराग्यका अभाव है।' अतः महाकवि सूरकी आज्ञासे वे घर चले आये। कमला नामक कन्यासे उन्होंने विवाह कर लिया। अपने ग्रामका नाम श्यामपुर रखा, श्यामसर नामक एक तालाब बनवाया। वे आनन्दसे घरपर रहकर भगवान्‌की रसमयी लीलापर काव्य लिखने लगे। पर उनका मन तो श्रीनाथजीके चरणोंपर न्योछावर हो चुका था, कुछ दिनोंके बाद वे गोवर्धन चले आये। वे स्थायीरूपसे मानसी गंगापर रहने लगे तथा शेष जीवन श्रीनाथजीकी सेवामें समर्पित कर दिया।

भगवान् श्रीकृष्णका यश-चिन्तन ही उनके काव्यका प्राण था। वे कहा करते थे कि 'जिस कवितामें हरिके यशका रस न मिले, उसे सुनना ही नहीं चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीके वर्णनमें उन्होंने जिस योग्यताका परिचय दिया, वह अपने ढंगकी एक ही वस्तु है। नन्ददासने गोपी-प्रेमका अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श अपने काव्यमें निरूपित किया है। व्रज-काव्य-साहित्यमें रासरसका पारावार ही उनकी लेखनीसे उमड़ उठा। नित्य नवीन रासरस, नित्य गोपी और नित्य श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यमें ही वे रात-दिन सराबोर रहते थे। रसिकोंके संगमें रहकर हरि-लीला गाते रहनेको ही वे जीवनका परमानन्द समझते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी—

रूप प्रेम आनंद रस जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनौं ताहि॥

नन्ददासजीने संवत् १६४० वि० में गोलोक प्राप्त किया। वे उस समय मानसी गंगापर रहते थे। एक बार अकबरकी राजसभामें तानसेन नन्ददासका प्रसिद्ध पद ***'देखो देखौ री नागर नट निरतत कालिन्दी तट'*** गा रहे थे। उसका अन्तिम चरण था— ***'नन्ददास तहँ गावै निपट निकट।'*** बादशाह आश्चर्यमें पड़

गये कि नन्ददास किस तरह *'निपट निकट'* थे। वे बीरबलके साथ उनसे मिलनेके लिये मानसी गंगापर गये। अकबरने नन्ददाससे अपनी शंकाका समाधान चाहा, नन्ददासके प्राण प्रेमविह्वल हो गये, उनकी कामनाने उनको अनुप्राणित किया।

मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोरमुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की॥

उनके नेत्र सदाके लिये बन्द हो गये। गोसाईं विट्ठलनाथने उनके सौभाग्यपूर्ण लीला-प्रवेशकी सराहना की। नन्ददास महारसिक प्रेमी भक्त थे। बीरबलने बादशाहको समझाया कि प्रेम गोप्य है, अनधिकारीके सामने उसका वर्णन नहीं किया जा सकता—यही सोचकर नन्ददासजीने अपने प्राण त्याग दिये।

श्रीजनगोपालजी

भक्ति तेज अति भाल संत मंडल को मंडन।
बुधि प्रबेस भागवत ग्रंथ संसय को खंडन॥
नरहड़ ग्राम निवास देस बागड़ निस्तार्‍यो।
नवधा भजन प्रबोध अननि दासन ब्रत धार्‍यो॥
भक्त कृपा बांछी सदा पद रज राधालाल की।
संसार सकल ब्यापक भई जकरी जन गोपाल की॥ १११॥

भक्तश्रेष्ठ श्रीजनगोपालजीके जकरी (पन्द्रह मात्राके) छन्द सारे संसारमें व्यापक हुए। भगवद्भक्तिके प्रतापसे आपका ललाट अत्यन्त देदीप्यमान था। आप सन्तोंकी सभाके भूषण थे। आपकी प्रखर बुद्धिमें श्रीभागवतजीका प्रवेश था एवं श्रीभागवतजीमें आपकी बुद्धि प्रविष्ट हो गयी थी। सर्वदा आप उसका अनुशीलन करते रहते थे। श्रीभागवतके एवं अन्य भक्तिग्रन्थोंके सम्बन्धमें किये गये सभी सन्देहोंका, कुतर्कोंका खण्डन कर देते थे। आप नरहड़ ग्रामके निवासी थे। आपने सम्पूर्ण बागड़ प्रान्तका उद्धार किया। आप श्रीभागवतमें कही गयी नवधा भक्तिके अनुसार भजन करते थे। इसका सम्यक् प्रकारसे आपको अनुभव था। अनन्य भावसे भगवान् एवं भक्तोंके दास्यव्रतको आप दृढ़तापूर्वक निभाते थे। भगवद्भक्तोंकी एवं श्रीराधानन्दलालकी श्रीचरण-रजको प्राप्त करनेकी आपने सदा इच्छा की [आप श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजके शिष्य थे]॥ १११॥

श्रीजनगोपालजीके विषयमें विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

श्रीभक्तमाल सर्वेश्वरके अनुसार श्रीजनगोपालजी श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप वनमें निवास न कर नरहड़ नामक ग्राममें निवास करते थे, जिससे संसारी लोगोंको भक्तिमार्गपर लगाया जा सके। आप सन्तोंकी जमात लेकर भक्ति-प्रचारार्थ प्रायः भ्रमण करते रहते थे। एक बार जमातके साथ आप एक गाँवमें पहुँचे। सन्त-भगवन्तकी इच्छा हुई कि खीर-भोग आरोगेंगे। आपने एक भक्तको आज्ञा दी—'दूध लाओ।' उसने कहा—'महाराज! दूध तो आपकी कृपासे घरमें बहुत है, पर मैया थोड़ा भी नहीं देगी। यदि मौका लग गया तो मैं अवश्य ही लाऊँगा।' वह घर आया, माँ कहीं अन्यत्र गयी थी। उसने सब दूध लाकर सन्तोंकी सेवामें अर्पण कर दिया। उसकी माँने जब देखा तो अपने लड़केकी करतूत समझ गयी और जहाँ सन्तोंकी जमात टिकी थी, वहाँ पहुँचकर उससे लड़ने लगी कि—'सारे दूधको तू कैसे ले आया?'

श्रीजनगोपालजीने बड़ी शान्तिसे उसे समझाया और कहा—'घर जाकर देखो, फिर आकर यहाँ कुछ कहो।' वह अपने घरको गयी। जाकर देखा तो उसे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। दूध ज्योंका त्यों भरा रखा है। जो पात्र अभी खाली थे, वे भरे रखे हैं। उसे सन्त-सेवामें विश्वास हो गया। गाँवके लोगोंने इस घटनासे प्रभावित होकर भक्तिपथका अनुसरण किया। जमातको रोककर कई दिनतक लोगोंने खीर-भोगकी सेवा की। इस प्रकार श्रीजनगोपालजी सन्त-सेवा और भक्ति-प्रचार करते रहते थे।

श्रीमाधवदासजी

प्रसिध प्रेम की बात गढ़ागढ़ परचो दीयो।
ऊँचे तें भयो पात स्याम साँचौ पन कीयो॥
सुत नाती पुनि सदृस चलत ऊही परिपाटी।
भक्तनि सों अति प्रेम नेम नहिं किहुँ अँग घाटी॥
नृत्य करत नहिं तन सँभार सम सर जनकन की सकति।
माधव दृढ़ महि ऊपरै प्रचुर करी लोटा भगति॥ ११२॥

दृढ़व्रती श्रीमाधवदासजीने पृथ्वीपर लोटनेकी भक्तिका सुदृढ़ एवं प्रचुर प्रचार-प्रसार किया। आपके प्रेमकी बात अतिप्रसिद्ध है। आपने गढ़ागढ़में अपने प्रभुप्रेमका परिचय दिया। नृत्य-कीर्तन करते हुए प्रेमावेशमें आकर आप तिमंजिलेकी ऊँची छतसे गिर पड़े। भगवान् श्रीश्यामसुन्दरने अपने प्रणको सत्य करते हुए आपके प्राणोंकी और शरीरकी रक्षा की। आपके परिवारी—बेटा-नाती भी आपके समान भगवद्भक्त हुए और आपके द्वारा चलायी हुई भक्तिकी परिपाटीपर ही चलते रहे। आपका भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम-नेम था। भक्तिके सभी अंगोंका आप पालन करते। कहीं भी कभी भी कमी नहीं आने देते थे। कीर्तन और नृत्य करते समय आपको अपने शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रहती थी। आपकी तुलना केवल विदेहवंशी जनकोंसे ही हो सकती है॥ ११२॥

श्रीमाधवदासजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रेमी भक्त श्रीमाधवदासजी 'गढ़ागढ़' निवासी थे और बड़े भारी भगवदनुरागी थे। हरिनाम-संकीर्तनके समय नृत्य करते-करते इन्हें अपने शरीरकी सुधि नहीं रहती थी और भूमिपर लोटने लगते थे। गढ़ागढ़का राजा अभक्त था, वह ऐसे आचरणों (सच्ची भक्ति)-को ढोंग समझता था। इसलिये उसने श्रीमाधवदासजीकी भक्तिकी परीक्षा लेनेकी सोची। श्रीहरिनाम-संकीर्तनका आयोजन कराकर इन्हें आमन्त्रित किया और तीसरी मंजिलकी छतपर मण्डप बनवाया। आप पैरोंमें नूपुर बाँधकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। लोगोंने विलक्षण प्रेमके प्रभावको देखा। कुछ देर बाद प्रेमका ऐसा आवेश आया कि आप पृथ्वीपर लोटने लगे। आपने अपने भक्ति-भावको सत्य करके दिखलाया। छतपर मुड़गेली नहीं थी। अतः आप लोटते-लोटते तिमंजिलेसे नीचे गिर गये। वहाँ कड़ाहमें घी खौल रहा था। उसमें गिरनेपर भी आप जीवित रहे। तापका किंचित् अनुभव भी नहीं हुआ। यह देखकर राजाको बड़ा भारी डर लगा और उसे हरिभक्तोंमें विश्वास हो गया तथा हृदयमें भक्तिभाव व्याप्त हो गया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

गढ़ागढ़ पुर नाम 'माधौ' बढ़ि प्रेम, भूमि लौटैं, जब नृत्य करैं भूलैं सुधि अंग की।
भूपति बिमुख, झूठ जानिकै परीक्षा लई, आनि तीन छाति पर देखी गति रंग की॥

नूपुरनि बाँधि, नाचि, साँच सो दिखाय दियौ गिर्‌यौ हू कराह मध्य, जियौ, मति पंग की।
बड़ौ त्रास भयौ नृप, दास बिसवास बढ़्यौ, बढ़्यौ उर भाव रीति न्यारी या प्रसंग की॥ ४५६॥

श्रीअंगदजी

नग अमोल इक ताहि सबै भूपति मिलि जाचैं।
साम दाम बहु करैं दास नाहिन मत काचैं॥
एक समै संकट में ले वै पानी महि डार्‌यो।
प्रभू तिहारी वस्तु बदन ते बचन उचार्‌यो॥
पाँच दोय सत कोस ते हरि हीरा लै उर धर्‌यो।
अभिलाष भक्त अंगद्द को पुरुषोत्तम पूरन कर्‌यो॥ ११३॥

भक्तवर श्रीअंगदजीकी अभिलाषाको भगवान् श्रीजगन्नाथजीने पूर्ण किया। आपके पास अमूल्य हीरा था, उसे सभी राजाओंने मिलकर माँगा और हीरा हड़पनेके सभी हथकण्डे साम, दाम, भय और भेद आदि उपाय किये, परंतु भक्त अंगद अपने विचारके कच्चे नहीं पक्के थे। उन्होंने हीरा नहीं दिया। एक बार राजाने उन्हें संकटमें डालकर उनसे हीरा लेना चाहा, तब उन्होंने हीरेको यह कहकर जलमें डाल दिया कि 'हे प्रभो! यह हीरा आपकी वस्तु है, इसे स्वीकार कीजिये।' पुरुषोत्तम प्रभुने सात सौ कोससे अपना लम्बा हाथ फैलाकर उसे ले लिया और श्रीअंगमें धारण कर लिया। इस प्रकार भक्तके मनोरथको प्रभुने पूर्ण किया॥ ११३॥

भक्तवर अंगदजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

(क) अंगदजीका अपनी स्त्रीकी भक्तिसे प्रभावित हो भक्त बनना तथा उन्हें अमूल्य नग (हीरे)-की प्राप्ति

रायसेनगढ़के राजा सिलाहदीसिंह थे। उनके चाचा अंगदसिंहजी पहले भगवद्‌विमुख थे, पर उनकी स्त्री भगवद्भक्ता थी। एक बार उनके श्रीगुरुदेव घरपर आये और भक्ता शिष्याकी प्रार्थनापर वे सुखपूर्वक सुखस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कहने लगे। इसी बीच अंगदजी आ गये और फटकारते हुए श्रीगुरुजीसे बोले—'स्त्री जातिके साथ यहाँ क्या कर रहे हो?' इतना सुनते ही श्रीगुरुदेव वहाँसे उठकर चले गये। श्रीअंगदजीकी स्त्रीने अपने गुरुदेवके अपमानसे दुःखित होकर अन्न-जलका परित्याग कर दिया। श्रीअंगदसिंहजी तो संसारी सुखोंके वशीभूत थे। अतः स्त्रीको मनाते-मनाते इन्होंने उसके पाँव पकड़ लिये और कहा—'अब जो कुछ भी तुम कहो, मैं वही करूँगा। उस समय मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। अतः अनुचित शब्द मुँहसे निकल गये।' पतिदेवके दैन्यको देखकर उस भक्ताका हृदय दयासे भर गया। उसने कहा—'अब आप मेरे चरणोंको छोड़कर मेरे गुरुदेवके चरणोंमें जाकर पड़िये और उन्हें प्रसन्नकर उनको अपना गुरु बनाइये।'

स्त्रीकी यह बात सुनकर अंगदजी श्रीगुरुजीके पास गये और बड़े प्रेमके साथ उन्हें घर लिवा लाये। दीनभावसे विनतीकर उनके शिष्य बन गये। उन्हें सादर भोजन कराकर उनका उच्छिष्ट प्रसाद लिया। अब श्रीअंगदजीके हृदयमें भक्त-भगवान् और श्रीगुरुदेवमें एक नवीन प्रीति प्रकट हो गयी। अपने भतीजे राजा सिलाहदीसिंहजीके आदेशानुसार एक बार आपने एक शत्रु राजाके ऊपर चढ़ायी की और विजय प्राप्त कर ली। राजभवनकी लूटमें

आपको राजाकी टोपी मिल गयी, जिसमें सौ नग जड़े हुए थे, उनमेंसे एक नग सबसे मूल्यवान् था। टोपीके निन्यानबे नगोंको बेंच-बेंचकर आपने सन्त-भगवन्तकी सेवा कर दी और एक नग जो सबसे बड़ा और कीमती था, उसे आपने अपनी पगड़ीकी लपेटमें रख लिया और मनमें निश्चय किया कि इसे मैं श्रीजगन्नाथजीको अर्पण करूँगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीअंगदसिंहजीकी इस सेवाका वर्णन इस प्रकार किया है—

'रायसेन' गढ़ वास नृप सो 'सिलाहदी' जू, ताको यह काका रहे, 'अंगद' बिमुख है।
ताकी नारी प्यारी, प्रभु साधु सेवा धारी उर, आये गुरु घर, कहैं कृष्ण कथा सुख है॥
बैठे भौन कौन? देखि कैसे मौन रह्यौ जात? बोल्यो तिया जात, कहा करौ नर रुख है?।
सुनि उठि गये, वधू अन्न जल त्यागि दये, लये पाँय जाय विषैबस भयौ दुख है॥ ४५७॥
मुख न दिखावै याहि देख्यौ ही सुहावै, कही 'भावै सोई करौ, नेकु बदन दिखाइयै'।
मैं हूं जल त्यागि दियौ, अन्न जात कापै लियौ, 'जीवौ जब नीकौ तब आपु कछु खाइयै'॥
बोली 'मोसों बोलौ जिन, छांड़ौ तन याही छिन, पन सांचौ होतौ जौ पै सुनत समाइयै'।
'कहौ अब कीजै जोई, मेरी मति गई खोई', भोई उर दया बात कहि समझाइयै॥ ४५८॥
'वेई गुरु करौ जाय, पांयन मैं परौ,' गयौ, चायनि लिवाय ल्यायौ, भयौ शिष्य, दीन है।
धारौ उर माल, भाल तिलक बनाय कियौ लियो सीत, प्रीति कोऊ उपजी नवीन है॥
चढ़ी फौज संग, चढ़्यौ बैरी पुर, मारि बढ़्यौ, कढ़्यौ, टोपी लैकै हीरा सत, एक पीन है।
डारे सब बेचि, पागपेच मध्य राख्यौ मुख्य, भाष्यौ 'सों अमोल करौ जगन्नाथ लीन है'॥ ४५९॥

(ख) हीरेकी प्राप्तिके लिये भक्त अंगदको विष देना, किंतु विषका निष्प्रभावी होना

फौजी सिपाहियोंमें कानाफूसी होते-होते सौ नगोंसे जड़ी हुई उस टोपीकी बात राजा सिलाहदीसिंहने सुन ली। राजाने लोगोंसे कहा कि 'चाचाजी! आप यदि उस हीरेको दे दें तो निन्यानबे हीरे हम माफ कर देंगे।' लोगोंने आकर इन्हें खूब समझाया-बुझाया। अनेक युक्तियाँ कीं, परंतु इन्होंने किसीकी भी नहीं मानी। तब श्रीअंगदसिंहजीकी एक बहन, जो इनके यहाँ रसोई बनाया करती थी, राजाने उसके पैर छूकर एवं लोभ-लालच देकर भेद नीतिसे उससे कहा कि तुम अंगदसिंहको विष देकर मार डालो, फिर मैं तुम्हें बहुत-सा धन-धरती दूँगा। उसने राजाकी बात मान ली, विष घोलकर भोजनमें मिला दिया और भगवान्का भोग भी लगा दिया। फिर बुलाकर कहा कि आओ, भोजन कर लो। थाली परोसकर उनके सामने रख दी।

श्रीअंगदसिंहकी बहनकी एक लड़की थी। ये जब भोजन करते थे तो श्रीराधाजीकी सखी मानकर उसे भी साथ बैठा लेते थे। अपनी लड़कीको बचानेके लिये उसने उसे कहीं किसीके घर छिपा दिया था। ये उसके बिना भोजन नहीं कर रहे थे, अपनी लड़कीमें अपने भाईका ऐसा अपार प्रेम देखकर उसके मनमें भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया। भाईकी मृत्युसे डरकर रोने लगी। गलेसे लगकर रोते-रोते उसने सब बात कह दी। अब तुम इसे मत खाओ—ऐसा कहकर वह विषमिले भोजनकी थालीको लेकर जाने लगी। यह देखकर श्रीअंगदजीने कहा—'तूने विषमिले सामानका भगवान्को भोग लगा दिया और अब हमें खानेसे रोकती है।' ऐसा कहकर उन्होंने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया और भगवदिच्छा बलवती मानकर पुनः किवाड़ बन्दकर सब प्रसाद पाकर लेट गये। आपके ऊपर विषका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। प्रसाद-प्रेमसे आपके मुखपर नयी चमक आ गयी, परंतु आपके मनमें इस बातका असह्य कष्ट बना हुआ था कि विषमिश्रित पदार्थ भगवान्को भोग लगाया गया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

काना कानी भई नृप बात सुनि लई, 'कही हीरा वह देव, तौ पै और माफ किये हैं'।
आय समुझावैं, बहु जुगति बनावै, याके मन मैं न आवैं, जाय, सबैं कहि दिये हैं॥
अंगद बहिन लागै वाकी भूवा पागै, तासौं 'देवौ विष, मारौ' फिर तू ही, पग छिये हैं।
करत रसोई घोरि गरल मिलायो, पाक, भोगहूँ लगायौ, 'अजू आवो' बोलि लिये हैं॥ ४६०॥
वाकी एक सुता, संग लैकै बैठें जेंवन कों, आई सो छिपाय कही जेंवौ कहूँ गई है।
जेंवत न, बोधि हारी तब सो बिचारी प्रीति, भीति, रोय मिली गरें, रीति कहि दई है॥
प्रभु लै जिंवाये राँड़ भाँड़ कै निकासि द्वार, दै करि किवार, सब पायौ ओप नई है।
वह दुख हियें रह्यौ कह्यौ कैसे जात काहू? बात सुनी नृपहूँ नै, जैसी भाँति भई है॥ ४६१॥

(ग) जगन्नाथजीद्वारा प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाकर हीरेको प्राप्त करना

श्रीअंगदसिंहजीने सोच-विचारकर हीरा भगवान्‌को धारण करानेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथपुरीकी ओर प्रस्थान किया। समाचार पाते ही खीझकर राजाने सिपाहियोंको भेजा, उन्होंने आकर इन्हें सब ओरसे घेर लिया। राजपुरुषोंने कहा—'आप हीरा यहीं मेरे सामने रख दीजिये, अन्यथा युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाइये।' यह सुनकर श्रीअंगदजीने कहा—'आपलोग थोड़ा ठहरिये, मैं इस कुण्डमें स्नान करके अभी हीरा दिये देता हूँ।' आपके मनमें तो भगवत्प्रेम ओत-प्रोत था। अतः उन्हें न देकर यह कहते हुए हीरा जलमें डाल दिया कि 'प्रभो! यह आपकी वस्तु है, कृपया आप इसे स्वीकार कीजिये।' प्रेमभरी भक्तकी यह वाणी श्रीजगन्नाथजीको अति प्यारी लगी। आजानुबाहु प्रभुने सात सौ कोस लम्बा हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया और अत्यन्त सुख पाकर उसे अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लिया।

श्रीप्रियादासजीने अंगदसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार किया है—
चले नीलाचल, हीरा जाय पहिराय आवैं, आय घेरि लीने नृप नरनि, खिसाय कै।
कही डारि देवौ, कै लराई सनमुख लेवौ बस न हमारौ, भूप आज्ञा आये धाय कै॥
बोले 'नेकु रहौ, मैं अन्हाय पकराय देत, हेत मन और जल डार्‌यौ लै, दिखाय कै'।
बस्तु है तिहारी प्रभु, लीजियै, उचारी यह, बानी लागी प्यारी, उर धारी सुख पाय कै॥ ४६२॥

(घ) अंगदजीके भक्तिभावसे राजाका भी भक्त बन जाना

श्रीअंगदजी उस हीरेको कुण्डमें फेंककर (दुःखित मन) अपने घर आ गये। उधर राजपुरुष लोग जलमें कूद पड़े और हीरेको ढूँढ़ने लगे। महान् प्रयत्न करनेपर भी जब वह हीरा उन्हें न मिला तो वे लोग व्याकुल हो गये। समाचार पाकर राजा भी वहीं आ गया। उसने कुण्डका सब पानी बाहर निकलवाया। फिर भी जब हीरा न मिला तो कीचमें ढुँढ़वाया। कीचमें भी न मिलनेपर राजा दुःखसागरमें डूब गया। इधर श्रीजगन्नाथजीने अपने पण्डोंको आज्ञा दी कि तुम जाकर अंगदसिंहजीसे कह दो कि तुम्हारा हीरा प्रभुको मिल गया है और उन्होंने धारण कर लिया है। इस मंगलमय समाचारको पण्डोंने आकर सुनाया तो इन्हें इतना आनन्द हुआ कि अपने शरीरकी सुधि-बुधि न रही। श्रीअंगदसिंहजीने पुरीमें जाकर देखा तो वही हीरा भगवान्‌के हृदयपर जगमगा रहा है।

श्रीअंगदजीके इस भक्तिके चमत्कारको देख-सुनकर राजाके हृदयमें महान् दुःख था। उसने अन्न खाना छोड़ दिया तथा ब्राह्मणोंको उन्हें लिवा लानेके लिये श्रीजगन्नाथपुरीको भेजा और उनसे कहा कि जैसे भी हो, किसी-न-किसी प्रकारसे उन्हें आपलोग लिवा लाओ। यदि वे मेरे नगरमें आयें तो मैं अपने बड़े भाग्य मानूँगा। ब्राह्मणोंने राजाके कथनानुसार पुरीमें जाकर श्रीअंगदजीसे राजाके दुःखको सुनाया और प्रार्थना की

कि 'अब आप वहीं पधारो।' ये किसी भी तरहसे जब आनेको तैयार न हुए, तब ब्राह्मण लोग धरना देकर पड़ गये। तब श्रीअंगदजीको दया आ गयी और राजाके दु:खको दूर करनेके लिये आप चल दिये। जब आप नगरके समीप आये तो राजाने सुना। तत्काल दौड़कर आया और इनके चरणोंमें लिपट गया। आपने उसे छातीसे लगा लिया। आँखोंसे आँसू बहने लगे। राजाने अपना सर्वस्व आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया। इस प्रकार नव-जीवन प्राप्तकर जीवनपर्यन्त राजाने हरिभक्तिमय आचरण किया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ऐतौ घर आये, वे तो जलमधि कूदि छाये, अति अकुलाये, नेक खोज हूँ न पायौ है।
राजा चलि आयौ, सब नीर कढ़वायौ, कीच देखि मुरझायौ, दु:ख सागर अन्हायौ है॥
जगन्नाथ देव आज्ञा दई, 'वाहि सुधि देवौ' आयकै सुनाई नर तन बिसरायौ है।
गयौ, जाय देख्यौ उर पर जगमग रह्यौ लह्यौ सुख नैनन कौ, कापै जात गायौ है॥ ४६३॥
राजा हिय ताप भयौ, दयौ अन्न त्यागि, कह्यौ आवै जोपै भाग मेरे ब्राह्मन पठाये हैं।
धरनौ दै रहे कहे नृप के वचन सब, तब ह्वै दयाल आप पुर ढिग आये हैं॥
भूप सुनि आगे आय पाँय लपटाय गयौ लयौ उर लाय दृग नीर लै भिजाये हैं।
राजा सरबसु दियौ जियौ हरिभक्ति कियौ हियौ सरसायौ गुन जाने जिते गाये हैं॥ ४६४॥

श्रीचतुर्भुजजी

भक्तागमन सुनत सनमुख जोजन इक जाई।
सदन आनि सतकार सदृस गोबिंद बड़ाई॥
पाद प्रछालन सुहथ राय रानी मन सांचैं।
धूप दीप नैबेद्य बहुरि तिन आगें नाचैं॥
यह रीति करौलीधीस की तन मन धन आगें धरै।
चत्रभुज्ज नृपति की भगति कौं कौन भूप सरवरि करै॥ ११४॥

कौन ऐसा राजा है, जो करौलीनरेश श्रीचतुर्भुजजीकी सन्त-सेवाकी बराबरी कर सके। आप ऐसे निष्ठावान् सन्तसेवी थे कि भगवद्भक्तका आगमन सुनकर उसकी अगवानी करनेके लिये चार कोसतक जाते थे और अति आदरके साथ उन्हें अपने महलमें लाकर भगवान्‌के समान भक्तका आदर-सत्कार करते थे। अपनी रानीके समेत राजा अपने हाथोंसे भक्तोंके श्रीचरणोंका प्रक्षालन करके चरणामृत लेते। चन्दन, फूलमाला, धूप, दीप एवं नैवेद्य आदि सभी उपचारोंसे पूजन करते। उसके बाद उन्हें सिंहासनपर बैठाकर उनके सामने नृत्य-कीर्तन करते। राजाकी रीति थी कि अपना तन-मन और धन सर्वस्व उन्हें समर्पित करते। सन्तोंका आदर करनेवाला ऐसा कोई भक्त-राजा नहीं, जिससे इनकी तुलना की जाय॥ ११४॥

श्रीचतुर्भुजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीचतुर्भुजजी करौलीके राजा थे, अपने-अपने नगरके चारों ओर चार-चार कोसपर चौकियाँ बना दी थीं, वहाँ राजपुरुषोंको नियुक्तकर आज्ञा दी कि जब कोई भगवद्भक्त आयें तो उनको वहीं ठहराकर उनका स्वागत-सत्कार करो, फिर शीघ्र मुझे सूचित करो। सूचना पाकर राजा स्वयं जाते और बड़े आदर-सत्कारके साथ उन्हें अपने महलमें लिवाकर ले आते। माला-तिलकधारीमात्र कोई भी भक्त द्वारपर आ जाते तो उनको

भी सच्चा भक्त मानकर उनकी सेवा-पूजा करते थे। एक राजाने करौलीधीशकी यह अद्भुत भक्ति एवं भक्तोंकी सेवाकी सुन्दर कथा सुनी तो उसने अपनी सभामें कहा कि यदि पात्र और अपात्रका विचार ही नहीं है तो ऐसा दान-सत्कार प्रशंसनीय नहीं है। उस राजाने इस प्रकार बात-ही-बातमें श्रीचतुर्भुजजीकी महिमाको उड़ा दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुर्भुजजीकी सन्तनिष्ठा और इस घटनाको इस प्रकार वर्णित किया है—

पुर ढिग चारौ ओर चौकी राखी जोजन पै जो जन ही आवै तिन्है ल्यावत लिवायकै।
मालाधारीदास मानि, आवै कोऊ द्वार जो पै, करै वही रीति सो सुनाई छप्पय गायकै॥
सुनी एक भूप भक्त निपट अनूप कथा, सबकों भंडार खोलि देत, बोल्यौ धायकै।
पात्र औ अपात्र यों विचारही जौ नाहीं, तौ पै कहा ऐसी बात? दई नेकु मैं उड़ायकै॥ ४६५॥

(क) चतुर्भुजजीकी भक्तनिष्ठाकी परीक्षा

राजा श्रीचतुर्भुजजीके आलोचक राजाके दरबारमें एक भक्तराज ब्राह्मणदेव थे। वे श्रीमद्भागवतजीकी कथा कहा करते थे। उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! करौलीधीशके सम्बन्धमें आप ऐसा न सोचिये कि वे पात्र-अपात्रका विवेक नहीं रखते। भक्तके हृदयमें प्रवेश करके उसके आशयको समझनेमें कौन समर्थ हो सकता है।' जब ब्राह्मणदेवने यह बात कही, तो उस राजाने श्रीचतुर्भुज राजाकी परीक्षा लेनेके लिये भक्ति-भावसे हीन एक भाटको भेजा। उसको माला-तिलक वस्त्र आदि देकर कहा कि करौलीधीशके द्वारपर जाकर अपनेको भगवान्‌का भक्त बतलाना। राजाज्ञासे भाट श्रीचतुर्भुजजीके यहाँ गया, परंतु वहाँ भक्तवेष-भूषा धारण करना, अपनेको भक्त कहना भूल गया और राजवंशकी महिमाका वर्णन करने लगा। सब लोगोंने उसे भाट समझकर यथोचित व्यवहार किया। अब वह भीतर कैसे जाने पाता?

एक मास बाद उसे स्मरण हुआ कि मुझे साधुवेष धारणकर राजा चतुर्भुजजीकी परीक्षा लेनेको कहा गया है। फिर क्या था उसने माला-तिलक धारणकर राजद्वारपर जाकर कहा कि—'राजासे कह दो कि एक कोई भगवद्भक्त आये हैं।' द्वारपालोंने कहा—'महात्मन्! आप निःशंक-निस्संकोच भीतर राजमहलमें जाइये, आपके लिये रोक नहीं है। यह सुनकर वह भाट भीतर चला गया। श्रीचतुर्भुजजीने भक्तवेष देखकर उसका अपनी रीतिके अनुसार खूब स्वागत-सत्कार किया। राजाने भक्तिचर्चा छेड़कर अच्छी प्रकारसे समझ लिया कि इनमें भक्तिकी किंचित् गन्ध भी नहीं है और किसीने मेरी परीक्षा लेने भेजा है। फिर राजाने अपनी वेषनिष्ठासे उस भाटके लिये भण्डार खोल दिया और प्रार्थना की कि आप इच्छानुसार धन ले लीजिये, सर्वस्व आपका ही है। उस भाटने मनमाना सोना-चाँदी आदि बहुत-सा धन बाँध लिया। तब चलते समय राजाने उसे कीमती गोटेसे जड़ी हुई तथा सुन्दर जड़तारी वस्त्रमें लिपटी हुई एक कौड़ी डिब्बेमें रखकर उसे भेंट करके प्रणाम किया'।

वह भाट करौलीसे लौटकर अपने राजाके पास आया और उसने भरी राजसभामें सब समाचार सुनाकर जो धन लाया था, उसे दिखाया। बादमें डिब्बा भी दिया। राजाने डिब्बा खोला और जड़ाऊ कपड़ेमें लिपटी एक कानी कौड़ी देखी। रातमें पण्डितजीके पास आकर सब बात बताकर कौड़ी देनेका रहस्य पूछा। पण्डितजीने झट अनुमान करके बताया कि 'भक्त राजा चतुर्भुजजीके मनका भाव यह है कि इस भाटका ऊपरी साधुवेष जरीके समान अति मूल्यवान् और आदरणीय है, परंतु भीतर कानी कौड़ीके समान तुच्छ परीक्षाका भाव है।'

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भागवत गावै, भक्त भूप एक बिप्र तहाँ बोलिकैं सुनावै 'ऐसी मन जिन ल्याइयै'।
पावै आसै कौन हृदय भौन में प्रवेस करि? भरि अनुराग कहा उर मधि आइयै?॥
करी लै परीक्षा भाट बिमुख पठाय दियौ, 'दियौ भाल तिलक द्वार दास यों सुनाइयै'।
गयौ, गयौ भूलि, फूलि कुल विस्तार कियौ लियौ पहिचानि अब जान कैसे पाइयै॥ ४६६॥
बीते दिन बीस तीस, आई वह सीख सुधि, कही 'हरिदास' कोऊ आयौ, यों सुनाइयै।
बोले जू निसंक जावौ, गावौ गुन गोबिन्दके, आये घर मध्य, भूप करी जैसी भाइयै॥
भक्तिके प्रसंग कौ न रंग कहूँ नेकु जान्यौ, जान्यौ उनमान सों परीक्षा मँगवाइयै।
दियौ लै भंडार खोलि, लियौ मन मान्यौ, दई संपुटमें कौड़ी डारि, जरी लपटाइयै॥ ४६७॥
आयौ वही राजा पास, सभामें प्रकाश कियौ, लियौ धन दियौ, पाछे सोई लै दिखायौ है।
खोलि कै लपेटा मध्य सम्पुट निहारि कौड़ी, समुझि बिचारै हारै मन में न आयौ है॥
बड़ौ भागवत विप्र पंडित प्रबीन महा, निसि रस लीन जानि आयके बतायौ है।
कर्‍यौ उनमान, भक्त मानिबौ प्रमान जरी मूँदिकैं पठाई, ताहि गुण समझायौ है॥ ४६८॥

(ख) राजाका मैना पक्षीद्वारा चतुर्भुजजीकी भक्तिके प्रभावको जानना

भक्त पण्डितजीके श्रीमुखसे जरीलिपटी कौड़ीके रहस्यको जानकर राजाने कहा—'महाराजजी! आपने अति उत्तम बात कही, परंतु मेरी इच्छा है कि आप स्वयं करौली जायँ और श्रीचतुर्भुजजीकी भक्तिका वास्तविक तत्त्व लेकर आयें।' पण्डितजी करौली गये। उनका शुभागमन सुनते ही दौड़कर राजा चतुर्भुजजी उनके पैरोंमें लिपट गये। महलोंमें ले जाकर प्रेमभावमें भरकर नित्य उनकी सेवा-पूजा करने लगे। कथा-वार्ता होती तो दोनों ही प्रेमानन्द-सागरमें डूब जाते। पण्डितजी वहाँसे चलना चाहते, परंतु राजा अनुनय-विनय करके रोक लेता और नित्य नये प्रेम-प्रसंग उपस्थितकर उन्हें सुख प्रदान करता। अन्तमें जब पण्डितजी विदा होने लगे तो दोनोंको वियोगका असह्य दुःख हुआ। राजाने अपना खजाना खोलकर यथेच्छ धन लेनेकी प्रार्थना की, परंतु पण्डितजीने कुछ भी नहीं लिया और कहा कि मुझे तो आपकी प्रीति-प्रतीतिने रिझा लिया है। उसके सामने धन क्या चीज है? राजाने कहा—'महाराजजी! कुछ तो स्वीकारकर हमें कृतार्थ कीजिये।' राजाके विशेष आग्रहपर पण्डितजीने कहा कि 'आपके राजभवनमें जो तोता और मैना हैं, इनमेंसे एक मुझे दे दीजिये।' ये दोनों पक्षी राजाको अत्यन्त प्रिय थे। अतः उनके वियोग भयसे राजा व्यथित हुए। अन्तमें उन्होंने मैनाको पण्डितजीके साथ भेज दिया।

करौलीसे चलकर पण्डितजी उस मैनाको लिये हुए उस राजाके दरबारमें आये। वह तो राजदरबार था। वहाँ सभी प्रकारके संसारी लोग आते-जाते थे। लोग बहस करनेमें व्यस्त थे। उन बातोंको सुनकर फटकारती हुई मैना बोल उठी—'अरे माटीके धोधाओ! कृष्ण कहो, कृष्ण कहो।' तब राजाने पण्डितजीसे पूछा कि 'बताइये महाराज! राजा चतुर्भुजजीका भक्ति-भाव कैसा है?' पण्डितजीने कहा—'राजन्! इस मैनासे आप ही वहाँका रहस्य समझ लें। उस समाजमें रहनेवाले इस पक्षीको भी भगवान् प्राणोंसे प्रिय हैं। मैं करोड़ों जीभोंको पाकर उनसे श्रीचतुर्भुजजीकी महिमाका वर्णन करूँ तो भी उसका पार नहीं पा सकता हूँ।' करौलीनरेशकी भक्तिका रहस्य पाकर वह राजा श्रीचतुर्भुजजीके पास आया और उनके श्रीचरणोंमें सिर रखकर उसने उन्हें प्रणाम किया, फिर उस मैनाको वापस करते हुए बोला—भक्तराज! इस भक्त मैनाको आप ही अपने महलोंमें रखिये, इसके तन-मनमें भगवान् श्यामसुन्दर रमे हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

राजा रीझि पाँव गहे, कहे 'जू बचन नीके ऐपै नेकु आप जाय तत्त्व याकौ ल्याइयै'।
आये, दौरि पाँव लपटाय भूप भाय भरे, परे प्रेमसागर में, चरचा चलाइयै॥
चलिबे न देत, सुख देत चले लोलमन, खोलिकै भंडार दियौ लियौ न रिझाइयै।
उभै सुवा सारौ कही एक कर धारौ मेरे दई अकुलाय लई मानौ निधि पाइयै॥ ४६९॥
आयौ राजसभा, बहुबातनि अखारौ जहाँ, बोलि उठी सारौ 'कृष्ण कहौ' झारि डारे हैं।
पूछैं नृप 'कहौ,' 'अहौ! लहौ सब याही सों जू, पच्छी वा समाज रहै हरि प्रानप्यारे हैं'॥
कोटि कोटि रसना बखानौं पै न पाऊँ पार, सार सुनि भक्ति, आय सीस पाँव धारे हैं।
'राखौ यह खग पगि रह्यौ तन मन श्याम,' अति अभिराम रीति मिले औ पधारे हैं॥ ४७०॥

श्रीचतुर्भुजजीकी भक्ति-भावनाका अनुचित लाभ उठानेके उद्देश्यसे एक डाकू साधु-वेष धारणकर उनके पास आया। उन्होंने उसे भी महलमें निवास दिया। एक दिन राजाकी अनुपस्थितिमें उस डाकूने रानीके गलेमें एक कीमती हार देखकर उसे लेना चाहा। फिर तो जब रानी शयन कर रही थीं तब उसने उनके गलेपर अपनी कटार चलायी, परंतु आश्चर्य! उसे ऐसा लगा, मानो रानीका गला वज्र हो गया हो और उसकी कटार मोम हो गयी हो। उसने बहुत प्रयत्न किया गला काटनेका, परंतु असफल रहा। तबतक रानी जग गयी। काँपते हुए, वह ठग रानीके चरणोंमें गिर पड़ा। किंतु रानीके मनमें किंचित् भी क्रोधका भाव नहीं हुआ। वे बड़ी शान्तिपूर्वक बोलीं—'महाराज! इसमें डरनेकी क्या बात है? अरे, कभी-कभी बड़ोंसे भी भूल हो जाया करती है।' रानीके इस सद्भावसे डाकूका हृदय एकदम परिवर्तित हो गया और उसी दिनसे वह अपने अकृत्यकर्मका परित्यागकर सच्चा साधु हो गया।

भक्तिमती श्रीमीराजी

सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो॥
भक्ति निसान बजाय कै काहू ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल सृंखला तजि मीराँ गिरिधर भजी॥ ११५॥

भक्तिमती श्रीमीराबाईने इस कराल कलिकालमें गोपियोंके समान श्रीकृष्णप्रेमको अपनेमें प्रकट करके उसका दूसरोंको भी दर्शन करा दिया। स्वच्छन्द और निडर होकर रसिकशेखर श्रीराधाश्यामसुन्दरके सुयशको गाया। दुष्टों (राणा)-ने इस प्रकारकी भक्तिको अनुचित माना और सोच-विचारकर इनकी मृत्युका उपाय किया। इन्हें पीनेके लिये विष दिया, उसे ये अमृतकी तरह पी गयीं। भगवान्‌की कृपासे आपका बाल भी बाँका नहीं हुआ। भक्तिका डंका बजाकर आपने बिना किसी लोक-लज्जा और संकोचके कुल-मर्यादाके बेड़ी-बन्धनोंको त्यागकर श्रीगिरिधर गोपालजीका भजन किया॥ ११५॥

भक्तिमती श्रीमीराबाईके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) कृष्णप्रेमकी अनन्यता

भक्तिमती श्रीमीराबाईकी जन्मभूमि मेड़ता नगर (जोधपुर)-में थी। बाल्यकालसे आप श्रीगिरिधारी-

लालजीकी भक्त हो गयी थीं। उसके बाद चित्तौड़के राणा साँगाके सुपुत्र श्रीभोजराजजीसे आपकी सगाई हुई। विवाहके समय आपके पिताजीने नयी-नयी सुन्दर मूल्यवान् वस्तुएँ एकत्र कीं। परंतु श्रीमीराबाईका मन तो प्रेमरंगरँगीले श्यामसुन्दरमें डूब चुका था। जिस समय श्रीभोजराजजीके साथ भाँवरें पड़ रही थीं, उस समय भी आपका मन साँवरे श्रीकृष्णके सुन्दर स्वरूपमें फँसा हुआ था। विवाहके पश्चात् जब विदा होकर ससुराल जानेका समय आया तो उस समय इन्हें प्रेमके आवेशमें मूर्च्छा-सी आ गयी। इनकी ऐसी विह्वल दशाको देखकर पिताजी कहने लगे कि 'बेटी! मनमें किसी प्रकारका दुःख न मानो, जो वस्त्र एवं आभूषण तुम्हें प्रिय हों, ले लो।' उस समय आपके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे, आपने पिताजीको उत्तर दिया कि 'इस धन-दौलतसे मुझे क्या काम? आपलोग यदि हमें इच्छित वस्तु देकर सब प्रकारसे सन्तुष्ट करना चाहते हैं तो श्रीगिरिधारीलालजीको मुझे दे दीजिये। इसके अतिरिक्त और सब धन-माल-सामान उठाकर रख लीजिये।' पिता-माताको बेटी मीरा बहुत प्यारी थी। अतः मीराजीकी माताने रोते-रोते श्रीमीराजीको अपने गलेसे लगा लिया और कहा कि 'श्रीगिरिधारीलालजीको तुम अपने साथ ले जाओ, खूब प्रेमसे इनकी सेवा-पूजा करो।' श्रीमीराजीने अपनी पालकीमें अपने सामने श्रीगिरिधरलालको पधरा लिया और उनके नेत्रोंसे नेत्र मिलाती हुई चलीं। अपने प्राणपति श्रीठाकुरको पाकर आनन्दमग्न श्रीमीराजी अपने मनमें फूली नहीं समाती थीं। इस प्रकार वे राणा भोजराजके भवनोंमें पहुँच गयीं। सासने इन्हें पालकीसे उतारा। रुचिपूर्वक वर-दुलहिनकी गाँठ जोड़ी गयी और उन्हें देवीके मन्दिरमें लाया गया।

देवीजीके मन्दिरमें पहुँचकर सासने देवी-पूजाकी तैयारी की। पहले उसने वरसे देवीका पूजन करवाया। उसके बाद मीराजीसे कहा—'वधू! अब देवीकी पूजा करो।' श्रीमीराजीने कहा—'हमारा यह मस्तक तो श्रीगिरिधारीलालजीके हाथ बिक चुका है, अब यह किसी दूसरे देवी-देवताके लिये नहीं झुक सकता है। मेरे मनमें एक उन्हींको देखनेकी—प्रणाम करनेकी अभिलाषा है।' यह सुनकर सासने कहा—'कुलपूज्या देवीजी हैं, इनकी पूजा करनेसे नारियोंका सौभाग्य बढ़ता है। इसलिये तुम हठ न करो, श्रीदेवीजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करो।' श्रीमीराजीने सासके हठ करनेपर बार-बार यही कहा कि आप इसे निश्चय करके मान लो कि 'मैंने सुकुमार भगवान् श्यामसुन्दरके श्रीचरणोंमें अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। अब अन्यका पूजन या प्रणाम मुझसे नहीं होगा।'

श्रीप्रियादासजीने मीराके श्रीकृष्णप्रेमकी इस अनन्यताका वर्णन इस प्रकार किया है—

'मेरतौ' जनम भूमि, झूमि हित नैन लगे, पगे गिरिधारी लाल, पिता ही के धाम में।
राना कै सगाई भई, करी व्याह सामा नई, गई मति बूड़ि, वा रँगीले घनश्याम में॥
भाँवैं परत मन साँवरे सरूप माँझ, ताँवैं सी आवैं, चलिबे कौ पति ग्राम में।
पूछैं पिता माता 'पट आभरन लीजियै जू' लोचन भरत नीर कहा काम दाम में॥ ४७१॥
'देवौ गिरिधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ, और धन माल सब राखियै उठाय कै'।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़्यौ भारी, रोय मिली महतारी, कही 'लीजियै लड़ाय कै'॥
डोला पधराय, दृग दृग सो लगाय चलीं, सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
पहुँचीं भवन सासु देवी पै गवन कियौ तिया अरु बर गँठजोरौ कर्यौ भाय कै॥ ४७२॥
देवी के पुजायबे कौं, कियौ लै उपाय सासु, वर पै पुजाइ, पुनि बधू पूजि भाखियै।
बोली 'जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ और को न नवै, एक वही अभिलाखियै'॥

'बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ करौ जिन हठ सीस पायनि पै राखियै'।
कही बार बार 'तुम यही निरधार जानौ वही सुकुमार जापै वारि फेरि नाखियै'॥ ४७३॥

(ख) मीराद्वारा विषपान

श्रीमीराजीका दो टूक उत्तर सुनकर उनकी सास मन-ही-मन जल-भुन गयी। अपने पतिके पास जाकर उसने कहा—'यह बहू तो मेरे किसी कामकी नहीं है। अभी मेरा कहा न मानकर, उलटा जवाब देकर मेरा अपमान किया तो आगे चलकर मुझे क्या मानेगी?' यह कहकर वह लोहारकी धौंकनीकी तरह जोर-जोरसे लम्बी साँसें लेकर सिसकने लगी। उसकी बातोंको सुनकर राणाजीको भारी क्रोध आया और उसने अपने मनमें बहूको मार डालनेका निश्चय किया। श्रीमीराको रहनेके लिये अब उसने अलग एक कोठरी दे दी। एकान्त स्थान देखकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ वे अपने श्रीगिरिधरलालको दिन-रात लाड़-लड़ाती रहतीं तथा सेवा-पूजा करते हुए उन्हींके गुणोंका गान करती रहतीं। जिन्हें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है, उन्हें सन्तोंका सत्संग ही अच्छा लगता है। श्रीमीराजी भी सदा साधुओंका संग करतीं।

श्रीमीराजीको सन्तोंका संग करते देखकर किसी दिन उनकी ननद, जिसका नाम ऊदाबाई था, उसने आकर कहा—'भाभी! तुम समझती क्यों नहीं हो, साधुओंसे प्रेम करनेमें कुलको बड़ा भारी कलंक लगता है। राणाजी देशके राजा हैं, तुम्हारे इस स्वच्छन्द आचरणसे उन्हें लज्जित होना पड़ रहा है और तुम्हारे पितृकुलकी जो रीति है, वह भी नष्ट हो रही है, इसलिये मेरी बात मान लो। साधुओंका संग करना शीघ्र ही छोड़ दो।' श्रीमीराजीने उत्तरमें कहा—'मेरे प्राण सदा साधुओंके साथ लगे रहते हैं। इसलिये उनके संगमें मुझे अपार सुख प्राप्त होता है। मेरे आचरणोंसे जिसे दुःख होता हो, उसे मुझसे बिलकुल अलग रखो।' इनकी यह बात सुनकर राणाने (दयाराम पण्डाके हाथ) एक कटोरा विष भगवच्चरणामृत कहकर भेज दिया। श्रीमीराजीने प्रसन्नतापूर्वक पी लिया। पी लेनेके बाद इनके अंगमें एक विशेष प्रकारकी कान्ति दिखलायी पड़ने लगी।

श्रीप्रियादासजीने मीराजीकी भगवच्चरणामृतनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई, गई पति पास 'यह बधू नहीं काम की'।
अबही जबाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ, आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की॥
राना सुनि कोप कर्यौ, धर्यौ हिये मारिबोई, दई ठौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै, साधु संगही सुहावै, जिन्हैं लागी चाह स्याम की॥ ४७४॥
आय कै ननँद कहै 'गहै किन चेत भाभी! साधुनि सों हेत में कलंक लागै भारियै'।
राना देसपति लाजै, बाप कुल रीति, जात, मानि लीजै बात बेगि सङ्ग निरवारियै॥
'लागे प्रान साथ संत, पावत अनन्त सुख, जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै'।
सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ, लियौ करि पान रंग चढ़्यो यों निहारियै॥ ४७५॥

(ग) मीराजीका कृष्णप्रेम

श्रीमीराजी जब विष पीकर भी नहीं मरीं और उन्होंने साधु-संगको नहीं छोड़ा, तब राणाने अपने गुप्तचर लगा दिये। उनसे कह दिया कि 'जब मीराके पास कोई साधु आकर बैठा हो, तभी तुमलोग मुझे सूचना देना। मैं उसी समय उसे मार डालूँगा। यह मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है।' श्रीमीराजीके भवनमें तो श्रीगिरिधरलालजी नित्य ही विराजते थे। ये उन्हींके साथ हँसती-बोलती और खेलती रहती थीं। एक दिन हँसने-बोलनेकी प्रिय ध्वनि गुप्तचरोंके कानोंमें पड़ी। उन्होंने झट राणाको खबर कर

दी। सुनते ही राणा अत्यन्त अधीर हो गये। तलवार लेकर जल्दी-जल्दी दौड़े आये और द्वारपर उन्होंने पुकारकर कहा—'किवाड़ खोलो।' श्रीमीराजीने किवाड़ खोल दिये। राणाको कोई साधु नहीं दिखलायी पड़ा। वहाँ अकेली वे ही थीं।

राणाने फटकारते हुए उनसे पूछा—जिसके प्रेमरंगमें तू रँगी है, जिसके साथ हँस-बोलकर अनेक प्रकारसे रमण कर रही थी, वह मनुष्य कहाँ गया, मुझे जल्दी बता? श्रीमीराने श्रीठाकुरजीकी ओर संकेत करके कहा—वह मेरे प्राणनाथ पुरुषोत्तम तुम्हारे सामने ही तो विराज रहे हैं। वे तुमसे लज्जा नहीं करते हैं, अब तुम भी आँखें खोलकर देख लो। क्या ही सुन्दर साज-श्रृंगारसे सजे हैं। राणा खिसिया गये, किंकर्तव्यविमूढ होकर ऐसे स्तब्ध हो गये, मानो दीवालपर कोई चित्र बना हो। थोड़ी देर बाद वहाँसे वापस लौट आये। क्षणभरके लिये उनके मनमें आया कि 'मीराके साथ ठाकुरजी ही लीला कर रहे थे।' फिर भी राणाके मनमें सद्भाव उत्पन्न नहीं हुआ।

श्रीप्रियादासजीने मीराके इस श्रीकृष्णप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ, संग त्याग विष भारी ताकी झार न सँभारी है।
राना ने लगायौ चर, बैठे साधु ढिग ढर, तबही खबर कर, मारौं यहै धारी है॥
राजैं गिरिधारीलाल, तिनहीं सों रङ्ग जाल, बोलत हँसत ख्याल, कानपरी प्यारी है।
जायकै सुनाई, भई अति चपलाई आयौ लिये तरवार, दै किवार, खोल न्यारी है॥ ४७६॥
'जाके संग रंग भींजि, करत प्रसंग नाना, कहा वह नर गयौ, बेगि दै बताइयै'।
'आगे ही बिराजै, कछू तोसो कही लाजै, अभूं देखि सुख साजै, आँखैं खोलि दरसाइयै'॥
भयोई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो, उलटि पयानौ कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूँ प्रभाव ऐपै भाव में न भिद्यौ जाइ, बिना हरिकृपा कहौ कैसे करि पाइयै॥ ४७७॥

(घ) मीराजीके सतीत्वकी परीक्षा

एक बार एक कामी नीच मनुष्य साधुका-सा वेष धारणकर श्रीमीराजीके पास आया और बोला—'तुम्हारे ठाकुर श्रीगिरिधारीलालजीने स्वयं मुझे आज्ञा दी है कि मीराके साथ अंग-संग करो। इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मेरे साथ अंग-संग करो।' ऐसी बात जब उसने कही तो श्रीमीराजीने उत्तर दिया कि 'आज्ञा स्वीकार है, परंतु प्रथम आप भोजन कीजिये। फिर आपकी यथोचित सेवा होगी।' उसने भोजन किया। पश्चात् श्रीमीराजीने सन्तोंके बीचमें शय्या बिछाकर उस विषयी पुरुषको बुलाकर कहा—'मेरे ठाकुरजीने जैसी आज्ञा आपको दी है, वैसा ही कीजिये।' वह बड़े भारी संकोचमें पड़ गया और उसका मुख सफेद हो गया। श्रीमीराजीकी भक्तिके प्रतापसे उसकी विषय-वासना सर्वथा दूर हो गयी। वह तत्काल पैरोंमें गिर गया और रोता हुआ बोला—'अब आप मुझे भक्तिका दान दीजिये।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ, कियौ यों प्रसंग 'मोसो अंग संग कीजियै'।
आज्ञा मोंको दई आप लाल गिरिधारी, 'अहौ सीस धरि, लई, करि भोजन हूँ लीजियै'॥
संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ, 'संक अब कौन की निसंक रस भीजियै'।
सेत मुख भयौ, विषैभाव सब गयौ, नयौ पाँयन पै आय, 'मोकौ भक्तिदान दीजियै'॥ ४७८॥

(ङ) मीराजीका रणछोड़में विलीन होना

श्रीमीराजीके विलक्षण रूप-सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाहका हृदय आकृष्ट हो गया। इनका

दर्शन करनेकी इच्छासे वह तानसेनको साथ लेकर आया। श्रीगिरिधरगोपालजीकी छवि एवं मीराजीके भक्ति-भूषित सहज-सरस सौन्दर्यको देखकर बादशाह निहाल हो गया। तानसेनने एक सुन्दर पद गाया और बादशाहने एक मणिमाला श्रीठाकुरजीके चरणोंमें अर्पण की।

एक बार श्रीमीराबाईजी श्रीवृन्दावनधाम आयीं उस समय वृन्दावनमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अन्तरंग लीला सहचर श्रीजीवगोस्वामीजी नामक एक महान् सन्त रहते थे। मीराजी जब उनके दर्शनहेतु गयीं तो उन्होंने कहलवाया कि वे स्त्रीका मुख नहीं देखते। इसपर मीराबाईने कहा कि हम तो अभीतक यही समझते थे कि वृन्दावनमें एक ही पुरुष है—वृन्दावनविहारी हमारे गिरिधर गोपाल परंतु आज नयी बात सुनते हैं। जब श्रीजीवगोस्वामीने इनका कथन सुना तो उन्हें इनकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति समझते देर न लगी। तब उन्होंने इनके साथ सादर भगवच्चर्चा की। श्रीजीवगोस्वामीजीसे मिलकर उनसे सत्संगकर मीराजी बहुत सन्तुष्ट हुईं। उनके स्त्री-मुख न देखनेके प्रणको आपने छुड़ा दिया। श्रीवृन्दावनकी सभी कुंजें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके विहारसुख-समूहसे निरन्तर भरी हुई हैं। श्रीमीराजीने उनका दर्शन किया। फिर उन्हें अपने हृदयमें स्थापित करके अपने देशको लौट आयीं। वहाँ रहते हुए आपने श्रीवृन्दावनकी अनुभूत निकुंज-लीलाका अपने पदोंद्वारा गान किया।

राणाकी द्वेष-बुद्धि देखकर श्रीमीराजी द्वारकामें जाकर बस गयीं। वहाँ रहते हुए श्रीगिरिधर-गोपालजीकी भक्ति करतीं। उधर राणाजीको श्रीमीराजीकी भक्तिके स्वरूपका ज्ञान हुआ तो उन्हें बड़ा भारी मानसिक पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंको द्वारका भेजा और उनसे कहा कि 'जैसे भी बने आपलोग श्रीमीराबाईको ले आइये। वे आकर मुझे प्राणदान देकर जीवित करें।' ब्राह्मणोंने द्वारका जाकर राणाजीकी विनती सुनायी। परंतु वे द्वारकासे वापस लौटनेको तैयार न हुईं। तब ब्राह्मण अन्न-जल त्यागकर श्रीमीराजीके द्वारपर धरना देकर पड़ गये। ब्राह्मणोंके हठको देखकर इन्होंने कहा—'अच्छा तो मैं श्रीरणछोड़लालजीसे विदा हो आऊँ।' ऐसा कहकर वे मन्दिरमें गयीं। भगवान्के सन्मुख विनती करते हुए इन्होंने निम्न पद गाया—

साजन सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ लीजे।
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे॥
दिवस न भूख रैण नहीं निंदरा यूँ तन पल पल छीजे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुरन मत दीजे॥

पद-कीर्तन एवं नृत्य करते-करते श्रीमीराजी श्रीरणछोड़जीमें लीन हो गयीं। इसके बाद फिर किसीने उनका दर्शन नहीं पाया।

श्रीप्रियादासजीने मीराके श्रीरणछोड़जीमें विलीन हो जानेकी इस घटनाको इस प्रकार वर्णित किया है—

रूप की निकाई भूप 'अकबर भाई हिये लिये संग तानसेन देखिबेको आयो है'।
निरखि निहाल भयो छवि गिरिधारीलाल पद सुखजाल एक, तब ही चढ़ायो है॥
वृन्दावन आइ, जीव गुसाँई जूसों मिलि झिली, तिया मुख देखिबेको पन लै छुटायो है।
देख कुंज कुंज लाल प्यारी सुखपुंज भरी धरी उर माँझ, आय देस, बन गायो है॥ ४७९॥
राना की मलीन मति, देखि, बसीं द्वारावति, रति गिरिधारीलाल नित ही लड़ाइयै।
लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि, अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै॥
वेगि लै कै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो गये द्वार धरनौ दै बिनती सुनाइयै।
सुनि विदा होन गई राय रणछोर जू पै छाँड़ो राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै॥ ४८०॥

श्रीपृथ्वीराजजी

(श्री) कृष्णदास उपदेस परम तत्त्व परचो पायो।
निरगुन सगुन निरूप तिमिर अग्यान नसायो॥
काछ बाच निकलंक मनौ गांगेय जुधिष्ठिर।
हरि पूजा प्रहलाद धर्मध्वज धारी जग पर॥
पृथीराज परचो प्रगट (तन) संख चक्र मंडित कियो।
आँबेर अछित कूरम्म को द्वारकानाथ दरसन दियो॥ ११६॥

पयोहारी श्रीकृष्णदासजीके उपदेशोंसे आमेरके कूर्मवंशी (कछवाहा क्षत्रिय) राजा पृथ्वीराजको परम तत्त्वका बोध प्राप्त हुआ। उन्होंने निर्गुण-सगुण ब्रह्मका निरूपणकर राजाके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर दिया। वे राजा गंगाजीके पुत्र भीष्म पितामहकी तरह जितेन्द्रिय एवं धर्मराज युधिष्ठिरकी तरह सत्यवादी थे। भगवत्पूजा-निष्ठामें प्रह्लादके समान थे। वैष्णवधर्मकी पताकाको ऊँची करके फहरानेवाले एवं संसारसे परे अर्थात् जगत्के प्रपंचोंसे दूर थे। सर्वश्रेष्ठ थे। आपकी भगवद्भक्ति और गुरुभक्तिका यह परिचय सभीको प्राप्त हुआ कि आमेरमें ही रहते हुए आपका शरीर द्वारकाकी शंख, चक्रकी छापसे सुशोभित हो गया और श्रीद्वारकाधीशके दर्शनोंका परम लाभ प्राप्त हुआ॥ ११६॥

श्रीपृथ्वीराजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपृथ्वीराजजी सूर्यवंशमें श्रीरामजीके वंशधर हैं। आप कूरम-कछवाहा क्षत्रिय कहलाते हैं। आप आमेरनरेश श्रीचन्द्रसेनके सुपुत्र थे। इनकी माता भागवती देवी चौहान वंशकी कन्या थीं। पृथ्वीराज सबसे बड़े पुत्र थे, अतः पिताके बाद फाल्गुन बदी ५ संवत् १५५९ को आमेरकी गद्दीपर बैठे। ये पहले नाथ सम्प्रदायके चतुरनाथजीके शिष्य थे। इनकी बड़ी रानी बीकानेरके राव लूणकरणजीकी पुत्री थीं। इनका नाम अपूर्वदेवी था। फिर यही बालाबाईके नामसे प्रसिद्ध हुईं। आपके दिव्य प्रभावसे ही आमेर राज्यमें वैष्णवताका प्रचार हुआ। श्रीपृथ्वीराजके भक्तिभावसे प्रभावित होकर मेवाड़ चित्तौड़गढ़के महाराणा मोकलने अपनी कन्याका विवाह इनके साथ कर दिया। भक्तसे सम्बन्ध स्थापितकर बार-बार दर्शन-सत्संगकर महाराणा कृतकृत्य हुए। श्रीपृथ्वीराजजी भावुक भक्त होनेके साथ-साथ महान् पराक्रमी वीर योद्धा थे। मेवाड़के महाराणा सांगाका जब बाबरसे खानवा (भरतपुर)-का प्रसिद्ध युद्ध हुआ, उसमें ये अपनी सेनाके साथ सांगाके सहायक थे। वहाँ आपने बड़ा पराक्रम दिखाया। सांगाके मूर्च्छित होनेपर आप उन्हें बसवा ले लाये और वहाँ उनकी चिकित्सा करायी। श्रीबालाबाईके साथ आपका विवाह वि० संवत् १५६४ में हुआ। इनके ९ रानियाँ और १९ पुत्र थे। श्रीपृथ्वीराजजीके एक पुत्रका नाम भारमल था। ये आशकरणके बाद गद्दीपर बैठे। श्रीभारमलके पुत्रोंमें भगवन्तदासजी बड़े थे, जो भारमलजीके बाद राजगद्दीपर बैठे। श्रीभगवानदासजी भारमलजीके छोटे पुत्र थे। इन्हें ससम्मान अकबरने मनसबदारी दी थी। ये लवाणके जागीरदार थे। अकबरसे श्रीभगवानदासको बाँके राजाका खिताब मिला था। इसकी कथा इस प्रकार है—

एक बार जब आगरेका किला बन रहा था, तब वहीं आपका शिविर लगा था। राजमन्त्रियोंने आपसे कहा कि आप अपना शिविर हटा लीजिये। किलेकी नींव खुदेगी। आपने उनके आग्रह करनेपर भी शिविर नहीं हटाया और कहा कि किला बाँका रहे—यही ठीक है। इस वीरोचित स्वभावका अकबरने आदर किया।

किलेकी दीवार सीधी नहीं बन सकी। बादशाहने इन्हें बाँके राजाका खिताब दिया। तभीसे श्रीभगवानदासजीके वंशज बाँकावत कहे जाते हैं। श्रीपृथ्वीराजका एक पद द्रष्टव्य—

ऐसे ही व्यौहार लागौ जग रहावैं। प्रगट पुरुष ताको कोई ध्यावैं॥
अलख अभेद गति काहु नहीं जानी। कूकस करम लगि रीझ्यौं है प्रानी॥
संसार असार तेरी दुसह माया। यही डर पृथ्वीराज राम शरण आया॥

(जयपुरका इतिहास)

आमेरनरेश महाराज श्रीपृथ्वीराजजीकी पत्नी बालाबाई जब अपने पिताके घर थीं, तभीसे इन्होंने श्रीकृष्णदासजी पयहारीसे वैष्णव मन्त्रकी दीक्षा ले रखी थी। कालान्तरमें इनका विवाह श्रीपृथ्वीराजजीसे हुआ। रानी बालाबाईके अनुरोधसे ही श्रीकृष्णदासजीने वहाँ आकर अपने प्रभावसे पृथ्वीराजको शिष्य बनाया। वर्णन आया है कि जब श्रीकृष्णदासजी राजा-रानीको भक्तिमें खूब दृढ़ करके वहाँसे जाने लगे, तो रानी बालाबाईने अनुनय-विनय करके महाराजको रोक लिया और राजमहलमें उनकी धूनी लगवायी। मन-वचन-कर्मसे अत्यन्त सेवा करके उन्हें सन्तुष्टकर रानीने यह वचन भरवा लिया कि जबतक मैं न कहूँ तबतक आप मेरे यहाँसे न जायँ। भक्तप्रेम-परवश श्रीपयहारीजी बहुत दिनोंतक वहाँ बने रहे। एक दिन संसारके अन्य प्राणियोंको भी अपने दर्शन-स्पर्श एवं समागमादिसे कृतार्थ करनेका विचारकर श्रीपयहारीजीने एक लीला की। एक दिन नित्यकी भाँति आप नृसिंहभगवान्‌के जगमोहनमें बैठकर भगवद् गुणगान कर रहे थे। राजा-रानी श्रवण कर रहे थे। सत्संगकी समाप्तिपर आपने सहज भावसे कहा कि—'अब मैं जा रहा हूँ।' रानीने समझा कि धूनीपर जानेको कह रहे हैं। अतः कह दिया—'पधारो, महाराज!' बस इतना सुनना था कि आप तुरंत वहाँसे चले और द्वारसे निकलकर अन्तर्धान हो गये। रानी सशंकित हुई कि महाराज चले तो नहीं गये। धूनीपर न मिले, तब इधर-उधर बहुत खोज करायी, कहीं कुछ पता न चला, तब राजा-रानीको बड़ा दुःख हुआ। श्रीगुरुजीके वियोगमें दोनोंने अन्न-जलका परित्याग कर दिया तब इनके दुःखकी निवृत्तिके लिये श्रीपयहारीजीने इन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर आदेश दिया कि—'मेरे चरणके चिह्न जो जगमोहनकी सीढ़ी आदिपर बन गये हैं, इनका दर्शन करो, उन्हींका पादोदक लो और उन्हींके अर्चन-वन्दनमें सुख-सन्तोष मानकर अन्न-जल ग्रहणकर भगवद्भजन करो।' राजा-रानीने ऐसा ही किया। आमेरके पुराने राजमहलोंमें अब भी श्रीपयहारीजीकी धूनीके तथा चरण-चिह्नोंके दर्शन होते हैं। श्रीनृसिंहभगवान्, शालग्राम, धूनी और श्रीचरणचिह्नोंसे आमेरमें तीर्थत्व है। इनके दर्शन-पूजनसे लोगोंके मनोरथ पूर्ण होते हैं।

एक बार राजा पृथ्वीराजजी रानी बालाबाईको घरपर ही छोड़कर अपने दल-बलसहित श्रीनरनारायण भगवान्‌का दर्शन करने बदरिकाश्रम गये। इधर रानीको भी भगवान्‌के दर्शनोंकी प्रबल उत्कण्ठा हुई। गुरुदेवकी कृपासे उन्हें सिद्धि प्राप्त थी, उसीके बलसे संकल्प करते ही ये राजासे कुछ पहले ही पहुँचकर श्रीनरनारायणका दर्शन कर रही थीं। इतनेमें राजा भी वहाँ पहुँचे। आगे रानी खड़ी थीं, अतः राजाको दर्शनमें अवरोध हो रहा था। तब राजाने कई बार कहा कि —'बाईजी! तनिक सामनेसे हट जाओ, मुझे भी दर्शन कर लेने दो।' जब रानी कुछ बगल हटीं, तो राजाकी किंचित् दृष्टि रानीकी ओर गयी, तो उन्हें देखकर सन्देह हुआ कि यह तो रानी साहिबा मालूम पड़ती हैं। असम्भव जानकर ध्यानपूर्वक देखे बिना ही भगवद्दर्शन-प्रार्थनामें मग्न हो गये। कुछ दिनोंके बाद जब घरको आये, तो रानीने राजाको प्रणामकर निवेदन किया कि 'आप श्रीनरनारायणके समक्ष मुझे 'बाई' (जिसका अर्थ पुत्री या बहन होता है, उस) शब्दसे सम्बोधित कर चुके हैं, अतः अब मैं आपकी बाई ही हूँ और भविष्यमें सदा इसी भावका दृढ़तापूर्वक निर्वाह

हो। अब आप मुझे 'बाई' शब्दसे ही सम्बोधित किया करें। भक्तराज राजाने रानीकी दिव्य गमनशक्तिका परिचय पाया और हार्दिक सद्भावकी प्रशंसाकर सहर्ष उसे स्वीकार किया। अब इन दोनोंको भगवद्भजनमें पहलेकी अपेक्षा अधिक आनन्दकी अनुभूति होने लगी।'

आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजजी स्वामी श्रीकृष्णदासजी महाराज पयोहारीजीके शिष्य थे। एक बार उनकी आज्ञासे वे उनके साथ द्वारकाजीकी यात्राके लिये तैयार हुए। राजाके दीवानने जब यह बात सुनी तो उसे दुःख हुआ। वह रातको एकान्तमें श्रीपयोहारीजी महाराजके पास गया और उसने चुपकेसे कानमें कहा—'महाराजजी! इस समय राजा तन-मन और धनसे साधुओंकी सेवामें लगे हुए हैं, आमेर नगरकी जनतामें भक्तिकी सुन्दर भावना व्याप्त है। राजाके चले जानेसे साधुसेवामें तथा भक्ति-प्रचारमें बाधा होगी। अतः मेरे विचारसे तो आप राजाको साथ न ले जायँ, सो ही ठीक है।' श्रीपयोहारीजीने कहा—'तुम जाओ, मैं राजाको साथ नहीं ले जाऊँगा।' मन्त्रीकी बातको स्वामीजीने राजासे नहीं बताया। प्रातःकाल राजा पृथ्वीराज हाथ जोड़कर श्रीस्वामीजीके सामने खड़े हो गये। तब आपने आज्ञा दी कि 'तुम मेरे साथ न चलकर यहीं आमेरमें ही रहो और साधुसेवा करो।'

राजाने श्रीपयोहारीजीसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मैं श्रीद्वारकानाथजीके दर्शन, श्रीगोमती-संगममें स्नान एवं भुजाओंमें शंख-चक्रकी छाप धारण करूँ, इसीलिये आप अपने मनमें मुझे भी साथ ले चलनेकी इच्छा कीजिये।' श्रीस्वामीजीने कहा—राजन्! तुम अपने मनमें तनिक भी चिन्ता न करो। दर्शन, स्नान और छाप—ये तीनों लाभ तुम्हें घर बैठे ही मिलेंगे। राजाने कहा—आपने जो आज्ञा दी, उसे मैंने सिरपर धारण कर लिया। इसके बाद श्रीपयोहारीजीने प्रस्थान किया। कहते हैं कि राजाकी भक्तिको देखकर आपने अपनी योगसिद्धिसे आधी रातके समय राजमहलमें प्रकट हो राजाको वहीं श्रीद्वारकाधीशजीके दर्शन करा दिये। राजाने प्रदक्षिणा करके साष्टांग दण्डवत् की। भगवान्ने कहा—मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो—'यह गोमती-संगम है, तुम इसमें स्नान कर लो।' प्रभुकी बात सुनकर राजाने बड़े प्रेमसे स्नान किया, परंतु गोता लगाकर जब बाहर आये तो वहाँ भगवान् नहीं दिखलायी पड़े। शंख-चक्रकी छाप राजाके शरीरमें लगी थी। इधर सोकर उठनेमें राजाको विलम्ब हुआ जानकर रानी उन्हें जगाने आयी। उन्होंने देखा कि राजाका शरीर भीगा हुआ है। कैसे भीगा है, पूछनेपर राजाने कहा—'अभी मैंने श्रीगोमतीजीमें स्नान किया है, तुम भी मेरे शरीर एवं वस्त्रोंमें लगे जलका स्पर्श कर लो और श्रीद्वारकानाथजीको हृदयमें धारण कर लो।' रानीने ऐसा ही करके अपनेको बड़भागिनी माना।

श्रीप्रियादासजीने इस अलौकिक घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथ्वीराज राजा चल्यौ द्वारिका श्रीस्वामी संग, अति रस रंग भर्‌यौ आज्ञा प्रभु पाई है।
सुनिकै दीवान दुख मानि, निसि कान लग्यौ, कही पग्यो साधुसेवा भक्ति घर छाई है॥
देखियै निहारि कै विचार कीजै, इच्छा जोई 'लीजै नहीं साथ जावो, बात लै दुराई है'।
आयौ भोर भूप हाथ जोरि करि ठाढ़ौ रह्यौ कह्यौ, 'रहौ देश' सो निदेस न सुहाई है॥ ४८१॥
'द्वारावतीनाथ देखि गोमती स्नान करौं, धरौं भुज छाप,' आप मन अभिलाखियै।
'चिन्ता जिनि कीजै तीनौं बात इहाँ लीजे अजू, दीजै जोई आज्ञा सोई सिर धरि राखियै'॥
आये पहुँचाय दूर, नैन जल पूरि बहै, दहै उर भारी 'कहा संग रस चाखियै?'।
बीते दिन दोय, निसि रहे हुते सोइ, भोइ गई भक्ति गिरा आय बानी मधु भाखियै॥ ४८२॥

'अहो पृथ्वीराज' कही, स्वामी ही सी बानी लही, आयौ उठि दौरि वाही ठौर प्रभु देखे हैं।
घूम्यौ कह्यौ कान धरौ, गोमती स्नान करौ, सुनि कै अन्हायौ, पुनि वे न कहुँ पेखे हैं॥
शंख चक्र आदि छाप तन सब व्याप गयी, भई यों अबार रानी आय अवरेखे हैं।
बोले 'रह्यौ नीरमें सरीर, लै सनाथ कीजै, लीजै नाथ हियै', निज भाग करि लेखे हैं॥ ४८३॥

सबेरा होते ही आमेर नगरमें, उसके बाद सम्पूर्ण राज्यमें भक्तिके चमत्कारका शोर मच गया। बहुतसे लोगोंने आकर राजाका दर्शन किया, समाचार पाकर दूर-दूरतकके अनेक बड़े-बड़े सन्त और महन्त दौड़-दौड़कर आये और उन सभीने राजाके शरीरपर शंख-चक्रकी छापके दर्शन करके अत्यन्त सुख पाया। नाना प्रकारकी बहुत-सी वस्तुएँ भेंटमें आने लगीं। सभी लोग राजाके प्रेमकी महिमाको गाते तो उसे सुनकर राजा लज्जित होते। वे अपने मनमें यही सोचते कि 'यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा है।' लोगोंने भी समझ लिया कि राजापर गुरुगोविन्दकी महती कृपा है। इसके बाद राजाने जहाँपर दर्शन हुआ था, वहीं एक सुन्दर एवं विशाल मन्दिरका निर्माण कराया। वे सदा-सर्वदा सेवा-पूजा, भजनमें ही लगे रहते।

श्रीप्रियादासजीने राजा पृथ्वीराजपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपाका इस प्रकार वर्णन किया है—

भयौ जब भोर, 'पुर बड़ौ भक्ति सोर पर्‍यौ, कर्‍यौ आनि दरसन भई भीर भारी है'।
आये बहु सन्त, औ महन्त बड़े-बड़े धाये, अति सुख पाये देह रचना निहारी है॥
नाना भेंट आवै, हित महिमा सुनावै, राजा सुनत लजावै, जानी कृपा बनवारी है।
मंदिर करायौ, प्रभु रूप पधरायौ, सब जग जस गायौ, कथा मोकौ लागी प्यारी है॥ ४८४॥

नेत्रोंसे हीन एक ब्राह्मण श्रीवैद्यनाथजीके द्वारपर नष्ट हुई नेत्र-ज्योतिको प्राप्त करनेके लिये धरना देकर पड़ गया। पड़े-पड़े उसको कई महीने व्यतीत हो गये। श्रीशंकरजीने उसे दो-चार बार स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'हठ छोड़ दो, घरको जाओ, ये नेत्र अब फिरसे तुम्हें नहीं मिलेंगे।' परंतु उस ब्राह्मणने अपना हठ नहीं छोड़ा, द्वारपर पड़ा ही रहा। उसके इस सच्चे हठयोगको देखकर भगवान् शिवने दयासे द्रवित होकर आज्ञा दी कि 'तुम आमेरनरेश पृथ्वीराजके अँगोछेसे अपने नेत्रोंको पोंछो तो तुम्हें नेत्र-ज्योति प्राप्त हो जायगी।' उस अन्धे ब्राह्मणने आकर राजा पृथ्वीराजसे यह बात कही, तो वे ब्राह्मणकी महिमाको विचारकर डर गये कि 'ऐसा करना अनुचित है।' परंतु ब्राह्मणके आग्रह एवं लोगोंके समझानेपर राजाने एक नवीन वस्त्र मँगवाकर उसे अपने शरीरसे छुवाकर ब्राह्मणको दे दिया। आँखोंमें लगाते ही उसे नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गयी।

श्रीपृथ्वीराजजीकी भक्तिके प्रभावको व्यक्त करनेवाली इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

विप्र दृगहीन सो अनाथ, बैजनाथ द्वार पर्‍यौ, चख चाहै मास केतिक बिहाने हैं।
आज्ञा बार दोय चार भई 'ये न फेरि होहिं' याको हठसार देखि, शिव पिघलाने हैं॥
'पृथ्वीराज' अंग के अँगोछा सों अँगोछौ जाय, आयकै सुनाई द्विज गौरव डेराने हैं।
नयौ मँगवाय तन छ्वाय दियौ छ्वायौ नैन खुले चैन भयो जन लखि सरसाने हैं॥ ४८५॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजने कृपा करके इन्हें स्वपूजित श्रीनृसिंहरूप शालग्रामभगवान्‌को दिया और साथ ही यह आशीर्वाद दिया कि—*'जबतक नृसिंह देहरी में। तबतक राज हथेरी में॥'* अर्थात् जबतक भगवान् तुम्हारे इस महलमें स्थित मन्दिरकी देहरीके भीतर विराजेंगे, तबतक राज्य तुम्हारे वंशकी परम्परामें ही रहेगा। तबसे पूजा-आरती भीतर ही होती। उन्हें बाहर नहीं लाया जाता। आरतीके बाद

सिंहासनसे सम्पुट उठाकर देहरीके भीतरसे ही पुजारी लोग उपस्थित भक्तोंको दर्शन करा देते। जबतक श्रीठाकुरजी देहरीके भीतर रहे। तबतक यद्यपि देशमें मुसलमानों एवं अँगरेजोंका बड़ा भारी आतंक रहा, लेकिन इनके राज्यपर आँच नहीं आयी। परंतु दैव-दुर्योगसे एक बार किसीका लोभ आया। उसने स्वर्णसम्पुटसहित श्रीठाकुरजीको चुरा लिया। यद्यपि खोज होनेपर श्रीठाकुरजी मिल गये और पुनः अपने महल-मन्दिरमें विराजे। परंतु देहरीसे बाहर तो हो ही गये। फलस्वरूप देशके स्वतन्त्र होनेके बाद नयी शासन-व्यवस्थामें जब सभी राज्योंका विलय भारतमें हुआ, तब इसका भी अलग अस्तित्व समाप्त हो गया। पृथ्वीराजके वंशजोंके हाथसे राज्य निकल गया। श्रीपयहारीजीका वाक्य सत्य हो गया।

श्रीपृथ्वीराजजी ऐसे क्षमाशील थे कि एक बार एक मन्त्रीने छल करके इनके राजकोषसे बहुत-सा धन चुरा लिया। परंतु इन्होंने उसे क्षमा ही कर दिया। यद्यपि अन्य सभी लोगोंने बहुत प्रयत्न किया कि इस मन्त्रीको दण्डित किया जाय; क्योंकि इसने धनकी हानि की है। आपने यह कहकर सबका समाधान किया कि इन मन्त्री महोदयके द्वारा राज्यको लाभ भी बहुत हुआ। अतः यह सामान्य हानि हर हालतमें क्षम्य ही है। राजाकी इस क्षमाशीलताका मन्त्रीके ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उसने अपना अपराध स्वीकारकर सब धन लौटा दिया और वह अपने समस्त दुर्गुणोंका परित्यागकर भक्तिपंथमें आरूढ़ हो गया, ऐसे आपके अनेक उदार चरित्र हैं, जिनके द्वारा प्राणियोंको सत्प्रेरणाएँ मिलती हैं।

भक्त राजागण

लघु मथुरा मेड़ता भक्त अति जैमल पोषे।
टोड़े भजन निधान रामचँद हरिजन तोषे॥
अभैराम एक रसहिं नेम नीवां के भारी।
करमसि सुरतान भगवान बीर भूपति ब्रतधारी॥
ईस्वर अखैराज रायमल्ल (कन्हर) मधुकर नृप सरबसु दियो।
भक्तनि को आदर अधिक राजबंस में इन कियो॥ ११७॥

राजाओंके वंशमें इन राजाओंने भगवान्‌के भक्तोंकी बहुत अधिक सेवा की। श्रीजयमलजीकी साधुसेवा एवं सन्त-सम्मेलनोंके विशाल आयोजनोंसे उनकी राजधानी मेड़ता दूसरी मथुराके समान जान पड़ने लगी। टोंडे ग्राममें भजनपरायण भक्त श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंकी उत्तम सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। श्रीअभयरामजीने जीवनभर एक समान महती सन्तसेवा की। श्रीनीवांजीका सन्तसेवाका सुदृढ़ व्रत था। श्रीकरमसीलजी, श्रीसुरतानजी, श्रीभगवानजी और श्रीवीरमजी—इन चारों राजाओंने सन्तसेवाके अटल नियमको निभाया। श्रीईश्वरजी, श्रीअक्षयराजजी, श्रीरायमलजी, श्रीकन्हरजी एवं श्रीमधुकरजी—इन सभी राजाओंने भक्तोंकी सेवामें अपना सर्वस्व समर्पित किया॥ ११७॥

इनमेंसे कतिपय भगवद्भक्त राजाओंका चरित इस प्रकार है—

श्रीजयमलजी

मारवाड़नरेश राव दूदाजीके तीन पुत्र थे—रायमलजी, वीरमजी और रत्नसिंहजी। रायमलजीके पुत्र थे राजा जयमल और रत्नसिंहजीकी पुत्री थीं मीराँबाई। इस प्रकार जयमलजी और मीराँजी भाई-बहन थे। श्रीजयमलजीकी उदारता तथा सन्तसेवा-निष्ठाका एक प्रसंग भक्तदाम-गुणचित्रणीमें इस प्रकार

वर्णित है—एक बार सन्तोंकी जमात इनके यहाँ टिकी थी। उन्हीं दिनों उन सन्तोंमेंसे एक सन्तके श्रीगुरुदेव वहीं पासके गाँवमें आये हुए थे। सन्तके मनमें अपने श्रीगुरुदेवजीके दर्शनकी प्रबल इच्छा हुई। परंतु दैवयोगसे पाँवमें अत्यन्त पीड़ा होनेसे वे चलनेमें सर्वथा असमर्थ थे। इधर गुरुदर्शनकी इच्छा भी अत्यन्त बलवती थी, अतः सन्तने श्रीजयमलजीसे कहा कि मेरे गुरुदेव अमुक गाँवमें ठहरे हुए हैं, मेरे पाँवमें पीड़ा हो रही है, अतः आप यदि अपना घोड़ा दे दें, तो उसपर सवार होकर मैं श्रीगुरुदेवजीका दर्शन कर आऊँ। श्रीजयमलजीने तुरंत अपना घोड़ा सन्तको दे दिया। वे बड़े ही प्रसन्न मनसे अश्वारूढ़ होकर श्रीगुरुदेवका दर्शन करने गये। दर्शन करके जब लौटने लगे, तब श्रीगुरुदेवकी दृष्टि उस घोड़ेपर पड़ी। घोड़ेका रंग-रूप, चाल-ढाल देखकर उनका मन ललचाया। घोड़ेको लेनेके लिये सुजान शिष्यने गुरुदेवजीके मनकी बात जानकर सहर्ष उन्हें वह घोड़ा समर्पित कर दिया। यहाँ श्रीजयमलजीसे आकर सब बात सच-सच कह दी। सन्तकी गुरुनिष्ठा देखकर ये बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'आपको अथवा आपके गुरुजीको यदि और घोड़े चाहिये तो और ले जाइये। हमारा तो सर्वस्व सन्तोंका ही है, श्रीजयमलजीकी सन्तसेवा-निष्ठाको देखकर वे सन्त बहुत प्रसन्न हुए। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने इनके भक्ति-भावकी प्रशंसा की।'

राजा श्रीजयमलजी मेंड़ता (जोधपुर)-में रहते थे। श्रीभक्तिदेवीके सुन्दर स्वरूपको वे जानते थे। आपका अपने ठाकुरजीके प्रति बड़ा अनुराग था। श्रीठाकुरजीका मन्दिर नीचे मंजिलमें है, ऐसा मानकर आपने गर्मीके लिये छतके ऊपर हवादार सुन्दर कमरा बनवाया।

श्रीठाकुरजीके उस शयनागारमें जानेके लिये राजा श्रीजयमलजीने एक लकड़ीकी सीढ़ी बनवायी। उसके द्वारा उसमें जाकर आप स्वयं पुष्पादिकोंसे शय्याकी रचना करते एवं शयन भोग, जल आदि सभी वस्तुएँ यथास्थान रखकर नीचे उतर आते और सीढ़ीको वहाँसे हटाकर अलग रख देते, जिससे कोई दूसरा वहाँ जा न सके। कमरेसे थोड़ी दूर अलग बैठकर मन-ही-मन आप ध्यान करते कि लालजी शय्यापर सुखपूर्वक शयन कर रहे हैं। भगवत्सेवाके इस रहस्यको आपकी रानी भी नहीं जानती थी। एक बार रातमें उसने सीढ़ी लगायी और थोड़ा-सा परदा हटाकर झाँककर देखा तो उसे एक सुन्दर सुकुमार किशोर बालक शयन करता हुआ दिखलायी पड़ा। रानी पुनः चुप-चाप उतर आयीं और निसेनीको यथास्थान रखकर महलमें चली गयीं। प्रातःकाल आकर रानीने अपने पतिदेवको सब बात सुनायी और कहा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। राजा श्रीजयमलजीने उसे डाँट-फटकारकर डरा दिया कि फिर कभी ऐसा नहीं करना और मन-ही-मन यह जानकर प्रसन्न हुए कि इसके बड़े भाग्य हैं, जो इसे श्रीलालजीके दर्शन हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मेरतें बसत भूप, भक्ति को सरूप जानै, जैमल अनूप जाकी कथा कहि आये हैं।
करी साधुसेवा रीति प्रीति की प्रतीति भई नई एक सुनौ हरि कैसे कै लड़ाये हैं॥
नीचे मानि मन्दिर सो सुन्दर बिचारी बात, छात पर बँगलाके चित्र लै बनाये हैं।
बिबिध बिछौना सेज राजत उढ़ौना पानदान धरि सोना जरी परदा सिवाये हैं॥ ४८६॥
ताकी दारु सीढ़ी, करि रचना, उतारि धरें, भरैं दूरि चौकी, आप भाव स्वच्छताई है।
मानसी बिचारें 'लाल सेज पग धारें, पान खात लै, उगार डारें, पौढ़े सुखदाई है'॥
तिया हू न भेद जानें, सो निसेनी धरी वानै, देखे को किशोर सोयौ फिरी भोर आई है।
पति को सुनाई, भई अति मन भाई वाकौ खीझि डरपाई जानी भाग अधिकाई है॥ ४८७॥

श्रीरामचन्द्रजी

टोंड़े राजवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही सन्तसेवी थे। इन्होंने सन्तसेवामें अपना सर्वस्व लगा दिया। घरमें अन्नके नामपर एक दाना और द्रव्यके नामपर एक आना भी नहीं रहा। तब कुछ दिनोंतक आपने इधर-उधरसे कर्ज लेकर सन्तसेवा की। लेकिन इस तरह कबतक सेवा होती? कुछ दिनोंके बाद बाजारके हजारों रुपये कर्ज हो गये। अब लोगोंने उधार देना बन्द कर दिया। तब इन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि अब कैसे सन्तसेवा होगी और कर्जेको कैसे चुकाया जायगा? आप इसी चिन्तामें निमग्न थे कि रात्रिमें भगवान्ने स्वप्न दिया कि तुम्हारे पुराने मकानमें अमुक स्थलपर बहुत बड़ी धनराशि गड़ी है, उसे निकालकर बाजारका ऋण चुकाओ और सन्तोंकी सेवा करो। श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा ही किया।

श्रीरायमलजी

श्रीरायमलजी जोधपुरनरेश श्रीराव मालदेवके पुत्र हैं। ये सिवाणाके जागीरदार थे। इनका भगवत्प्रेम अनुपम था। श्रीकल्याणदासजी आपके पुत्र थे, जो बड़े ही वीर और बड़े भक्त थे। परम सन्तसेवी राजा रायमलसे एक दिन इनकी भोली-भाली पत्नीने पूछा—'आप सन्तोंकी सेवा क्यों करते हैं?' इसपर रायमलजीने बताया कि—'सन्तोंकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान्का दर्शन करना हो तो सबसे सुगम उपाय सन्तसेवा ही है।' सरलहृदया पत्नी पतिकी बात मानकर भगवद्दर्शनकी अभिलाषासे सन्तसेवा करने लगी। इसके प्रभावसे आकृष्ट होकर भगवान्ने उस महाभागवतीको चतुर्भुजरूप धारणकर दर्शन दिया। श्रीप्रभुका दर्शन पाकर रानी कृत-कृत्य हो गयी। जब दर्शन देकर प्रभु जाने लगे तो रानीने दौड़कर भगवान्का हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त दीन होकर बोलीं—'प्रभो! मैंने तो पतिदेवके उपदेशसे आपका दर्शन पाया है, अतः आपने जैसे कृपाकर मुझे दर्शन दिया है, उसी प्रकार मेरे पतिदेवको भी दर्शन दीजिये।' भगवान् हँस पड़े और बोले—'अच्छा शीघ्र जाकर अपने पतिको भी लिवा लाओ।' परम साध्वी पत्नीने शीघ्र अपने पतिको बुलाकर भगवान्का दर्शन कराया।

श्रीमधुकरशाहजी

ओरछानरेश महाराज श्रीमधुकरशाहजी बड़े ही शूरवीर तथा धर्मनिष्ठ राजा हुए। इन्होंने अपनी वीरतासे युद्ध करके अकबर बादशाहके कई किलोंपर विजय प्राप्त कर ली थी। तब अकबरने इनसे सम्मानपूर्वक सन्धि कर ली। एक बार अकबरने इनको आगरे बुलाया। उस अवसरपर सभी देशोंके राजा-महाराजा भी बुलाये गये। उस समय दरबारमें कई क्षत्रिय महाराज, जो वैष्णव थे, तिलक लगाकर जाते थे। श्रीमधुकरशाहजी तो परम वैष्णव थे। ये तो द्वादशतिलक लगाकर दरबारमें आते थे। एक दिन अकबरने कहा—'कलसे हमारे दरबारमें कोई तिलक लगाकर न आये; क्योंकि तिलक हमें अच्छा नहीं लगता है। अगर कल कोई तिलक लगाकर आयेगा तो उसके मस्तकको गर्म लोहेसे दाग दिया जायगा।'

बादशाहके आदेशपर दूसरे दिन कोई भी राजा दरबारमें तिलक लगाकर नहीं आया परंतु श्रीमधुकरशाहजी उस दिन रोजकी अपेक्षा और भी बड़ा एवं अधिक चमकीला तिलक लगाकर दरबारमें उपस्थित हुए।

अकबर बादशाहने देखा कि आज सभी राजा लोग बिना तिलक लगाये ही आये हैं। केवल एक मधुकरशाहजी ही तिलक लगाकर आये हैं। आज्ञा भंग हुई देखकर अकबरको क्रोध आ गया। उसने कड़ककर कहा—'मधुकरशाह! आप मुझे नहीं जानते हैं कि मैं कौन हूँ? मैंने आप सभीको कल आज्ञा दी थी कि कोई तिलक लगाकर मत आना। फिर आप तिलक लगाकर क्यों आये? तुमने मेरा हुक्म तोड़ा

है, इसलिये तुम बागी हो। अब तुमको इसका दण्ड भोगना पड़ेगा।' यह सुनकर श्रीमधुकरशाहजीने बड़ी निर्भीकतासे वीरतापूर्वक उत्तर दिया कि—'मैं जानता हूँ, आप बादशाह हैं। कल आपका हुक्म भी मैंने सुना था। लेकिन आपकी बादशाहीसे बढ़कर मैं अपने इष्टदेव परमात्माकी बादशाहीको मानता हूँ। उस परमात्माका चरणचिह्न स्वरूप यह तिलक है। नित्य मस्तकपर धारण करनेके लिये मुझे गुरुदेवकी आज्ञा है। उस आज्ञासे बढ़कर मैं आपकी आज्ञाको नहीं मानता। मैं प्राणोंसे बढ़कर धर्मको मानता हूँ।'

श्रीमधुकरशाहने निर्भीकतापूर्वक ललकारा—'आये, देखूँ, कौन मेरे सामने तिलक मिटाने और मस्तक दागने आता है। मैं आज दिखा दूँगा कि आज भी श्रीरामके वंशज क्षत्रियोंमें क्या ताकत है।' इस वीरवाणीको सुनकर क्षत्रियोंका खून खौलने लगा। सभीके दिलमें हिन्दूधर्मका जोश जाग उठा। धन्य-धन्यकी आवाजें आने लगीं। कोई-कोई कहने लगे—एक ओर मधुकरशाह, एक ओर बादशाह। देखो, दोनोंमें आज क्या निर्णय होता है।

अकबर बादशाह बड़ा ही बुद्धिमान् था। जब उसने देखा कि सभी क्षत्रिय राजा भड़क उठे हैं। यदि ये सभी बागी बन गये, तो मेरी बादशाहतको नष्ट करनेपर तुल जायँगे। मैंने तिलक न लगानेकी बात कहकर सभीके दिलोंपर ठेस पहुँचायी है—यह सोचकर लज्जित होकर बादशाहने पैंतरा बदलते हुए 'वाह-वाह' कहा—

सन्नाटा सभाका तोड़, गूँजा शब्द वाह वाह। बोला बादशाह वाह, मधुकर शाह वाह॥
आपने ही नित्यनेम अपना निभाया है। जानपर खेल आज, तिलक लगाया है॥
मुझको नहीं है चिढ़ तिलक लगाने से। परीक्षा ली थी, हुक्मके बहाने से॥
तिलक विहीन सभी, राजा महाराज हैं। निकले टिकैत सच्चे, एक आप आज हैं॥
बलिहारी आपकी, अनोखी आन बानपर। खुश हो गया हूँ मैं, सचाई और शानपर॥
मनमें जरा भी मेरे, नहीं छल छन्द है। सच कहता हूँ, मुझे तिलक पसन्द है॥
आपके ही नामसे, लगाया अब जायगा। मधुकरशाही यह, टीका कहलायगा॥

इस प्रकार अकबरके दरबारमें महाराजा मधुकरशाहकी जयध्वनिसे आकाश गूँज उठा। दूसरे दिनसे सभी राजा तिलक लगाकर दरबारमें आने लगे। वैष्णवोंके ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकका दरबारमें दबदबा हो गया।

आपकी भक्तिके चमत्कारसे भगवान्‌के मन्दिरका द्वार फिर गया। वह प्रसंग इस प्रकार है—

ओरछेमें एक व्यासोंका मुहल्ला है, उसमें एक प्राचीन मन्दिर है, जो आज भी विद्यमान है। उस मन्दिरमें आप स्वयं कीर्तन करने जाते थे। भगवान्‌के आगे भक्तोंके बीचमें पैरोंमें नूपुर बाँधकर नृत्य करते थे। पदगान करते हुए आप बेसुध हो जाया करते थे। एक दिन भक्तराज राजाके सामने ऐसा आवश्यक राज्य-कार्य आ गया, जिसके सुलझानेमें लग जानेसे अवकाश न मिला, अतः समयपर मन्दिरमें न पहुँच सके। भगवान्‌की शयन आरती हो गयी। रात अधिक बीत गयी थी, फिर भी श्रीमधुकरशाहजी अपना नित्य नियम पूर्ण करनेके लिये गये और मन्दिरके पीछे जाकर कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। अत्यधिक बिलम्ब हो जानेके कारण सभी दर्शनार्थी अपने-अपने घर जा चुके थे। गिने-चुने कुछ लोग रह गये थे, जिनका महाराजके प्रेमपूर्ण नृत्य-कीर्तनके दर्शन-श्रवणका नियम था। रात्रिके सन्नाटेमें प्रमुख प्रेमी भक्तोंके बीच ऐसा कीर्तन जमा कि सभी प्रेमविभोर हो गये। सभीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह चले। उसी समय प्रेमविवश भगवान् भी सहसा प्रकट होकर राजा साहबके साथ नृत्य करने लगे। उस आनन्दका वर्णन कौन कर सकता है? देवताओंने स्वर्णपुष्प तथा दिव्य सुगन्धित पुष्प बरसाये एवं अपने वाद्य बजाये। राजाको दर्शन देकर प्रभुने कृतार्थ किया। उसी समय मन्दिरका द्वार घूम गया। कहते हैं कि उनमेंसे कुछ स्वर्णपुष्प आज भी सुरक्षित हैं, जब नया राजा